साहित्य अमृत

मासिक

वर्ष-२१ अंक-१२ ❖ पृष्ठ ८८ | आषाढ-श्रावण, संवत्-२०७३ | जुलाई २०१६

संस्थापक संपादक

स्व. पं. विद्यानिवास मिश्र

❖

पूर्व संपादक

स्व. डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

❖

संपादक

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

❖

प्रबंध संपादक

श्यामसुंदर

❖

संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

❖

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२
फोन : २३२८९७७७ • फैक्स : २३२५३२३३
इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

❖

शुल्क

एक अंक —₹ ३०
वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००
वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००
विदेश में
एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)
वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

❖

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी श्यामसुंदर द्वारा
४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२
से प्रकाशित एवं ग्राफिक वर्ल्ड, १६८६,
कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-२ द्वारा मुद्रित।

❖

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

इस अंक में

संपादकीय

गजेटियरों का पुनर्लेखन··· ४

प्रतिस्मृति

शिष्टाचार/ *भीष्म साहनी* ८

कहानी

मोगरा महकता रहा/ *रजनी मोरवाल* १४
वृद्धाश्रम/ *शालिनी गोयल* २४
नाम में क्या रखा है/ *कविता विकास* ३०
शिद्दत-ए-एहसास/ *रीता गुप्ता* ३९
चिराग जो बुझ गए/ *रघुराज सिंह कर्मयोगी* ५८
क्षितिज के उस पार/ *क्षमा चतुर्वेदी* ६९

आलेख

मेस आयनाक : भारत को पुकारते बौद्ध अवशेष/ *कादंबरी मेहरा* ११
स्वातंत्र्य समर के अमर सेनानी लोकमान्य तिलक/ *विभा सिंह* २२
गाजीपुर में स्वामी विवेकानंद/ *संजय कृष्ण* ५०

लघुकथा

चपाती की संवेदना/ *सत्य शुचि* ६५

कविता

बेबसी, बेचारगी हो···/ *पूनम माटिया* १०
कैसी है यह दुनिया/ *सुधेश* २०
धरती भी तो माँ है/ *हरीतिमा* २१
नदी सा कर दे/ *कल्पना पांडेय* २६
क्योंकि तुम ही हो/ *शैलेंद्र कुमार भाटिया* ३५
तुम जाने-पहचाने/ *भीम प्रसाद प्रजापति* ४१
आह बुरी निर्धन की बच/ *निर्मल विनोद* ४२
दर्द बाँट लो/ *तन्वी सिंह* ५७
फिर एक महाभारत रच दो/ *लक्ष्मी रूपल* ६८
वन-महोत्सव दिवस/ *इंद्रा रानी* ७१

व्यंग्य

जन्मदिन का अर्थशास्त्र/ *बजरंग लाल गुप्ता* १८
जब बने हर चौराहा गौशाला/ *हरीश नवल* २७
पर उपदेश कुशल बहुतेरे/ *सुनीता शानू* ६६

आत्म-कथ्य

उसको क्या नाम दूँ ?/ *मृदुल कीर्ति* २८

ललित-निबंध

कदंब कहाँ है/ *अजयेंद्रनाथ त्रिवेदी* ३६

राम झरोखे बैठ के

पान और पत्थर···/ *गोपाल चतुर्वेदी* ४७

साहित्य का भारतीय परिपार्श्व

राह/ *जगदीश मल्लीपुरम* ५३

पुस्तक-अंश

युद्ध और आघात/ *पैट्रिक कॉकबर्न* ६०

साहित्य का विश्व परिपार्श्व

गुलाबी मोती/ *एमिलिया पार्डो बजान* ६३

यात्रा-संस्मरण

बिताएँ वीरभूमि पर चंद दिन/ *रुक्मणी संगल* ७२

लोक-साहित्य

भोजपुरी के भारतेंदु···/ *भगवती प्रसाद द्विवेदी* ७६

बाल-संसार

आई खुशियों वाली रुत/ *फहीम अहमद* ८०

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ ८१
वर्ग-पहेली ८२
साहित्यिक गतिविधियाँ ८३

संपादकीय

गजेटियरों का पुनर्लेखन, नई शिक्षा नीति कब तक?
प्रधानमंत्री मोदी के सात मंत्र

ज्ञात हुआ है कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के आदेशानुसार मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने जिलों के गजेटियर पुन: लिखवाने का निश्चय किया है। यह अत्यंत आवश्यक हो गया है, क्योंकि पिछले वर्षों में नए-नए राज्यों का निर्माण हुआ है। पहले आंध्र प्रदेश के बनने के लिए संघर्ष हुआ और अब तेलंगाना अलग हो गया है। यही नहीं, राज्यों में जो जिले हैं, कहीं बड़े और कहीं छोटे, उनका भी विभाजन हुआ है। नए-नए जिले बने हैं। प्राय: यह प्रक्रिया हर राज्य में हुई है, और होती रहती है। कभी तर्क दिया जाता है कि जिले का मुख्य केंद्र दूर होने से जनता को असुविधा होती है। कभी तर्क दिया जाता है कि प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से यह आवश्यक है। प्राय: राजनीतिक दबाव भी इसका एक बड़ा कारण है। जो भी हो, इस नई परिस्थिति की रोकथाम लोकतंत्र की राजनीति में संभव नहीं है। उदाहरण के लिए, अपने प्रारंभिक सेवा काल में जब प्रशासनिक प्रशिक्षण के लिए हम अमरोहा के सब डिवीजनल अधिकारी थे, अब वह एक जिला बन गया है। पहले अमरोहा मुरादाबाद का ही एक परगना था, अब मुरादाबाद की कुछ अन्य तहसीलों को भी जिला बना दिया गया है। वैसे अमरोहा का सल्तनत के जमाने से ही काफी महत्त्व रहा है। उत्तर प्रदेश में हमारे जन्मस्थान का जिला फतेहगढ़ या फर्रुखाबाद से कन्नौज अब एक जिले के रूप में अलग हो गया है। अब हम अपने को कन्नौज जिला या जनपद के निवासी कहते हैं। कन्नौज तो वैसे इतिहास में प्राचीनकाल से प्रसिद्ध रहा है। अंग्रेजों के काल में कुछ अलग स्थिति थी, समय के साथ परिवर्तन अनिवार्य हो गया। इसलिए गजेटियरों के पुन: लिखवाने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त पिछले वर्षों में जगह-जगह यातायात के नए साधनों, वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन हो गए तो उनका जिक्र होना ही चाहिए। नई अकादमिक खोजें और शोध भी शामिल होनी चाहिए। नए जिले बनने पर प्रशासनिक खर्चे तो बढ़ते हैं, पर कुछ लाभ भी हैं।

यह भी पता चला है कि हरियाणा के जिला फरीदाबाद से गजेटियर लिखने की शुरुआत होगी। फरीदाबाद बिल्कुल नया कस्बा है, जो विस्थापितों के लिए किए गए प्रयत्नों का भाग था। अब वह एक अत्यंत प्रगतिशील और संपन्न जिला है। अंग्रेजी शासनकाल में १९वीं शताब्दी के अंत और २०वीं सदी के प्रथम दो दशकों में गजेटियर तैयार हुए। 'इंपीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया' पुराना हो जाने पर भी आज तक उसकी सूचना विश्वसनीय मानी जाती है। उसका पुन: प्रकाशन निजी प्रकाशक करते रहते हैं, क्योंकि उनकी अभी भी माँग है। आज भी देश-विदेश में हिंदुस्तान के इतिहास और संस्कृति की जानकारी और शोधकार्य के लिए इसका उपयोग किया जाता है। भारत विभाजन के उपरांत भारत सरकार के प्रकाशन विभाग ने उसी के अनुरूप 'इंडियन गजेटियर्स ऑफ इंडिया' के नाम से चार खंड तैयार किए। उनका अनुवाद हिंदी में भी है और शायद अन्य भाषाओं में भी किया जा रहा है। पश्चिम बंगाल सरकार ने तो अपने कुछ जिलों के पुराने गजेटियर स्वयं ही पुनर्प्रकाशित किए हैं। गजेटियरों की आवश्यकता राज-व्यवस्था में हमेशा रहती है। प्राचीन काल में भी शासक सूचनाएँ मँगाते थे, पर वे पूर्णरूप में लिखित उपलब्ध नहीं हैं। वास्तव में टोडरमल ने सूचना प्राप्त करने की उस पुरानी परंपरा को बदलते समय के परिप्रेक्ष्य में नया रूप दिया। अंग्रेजों ने अपनी प्राथमिकताओं और आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए गजेटियर लिखवाने, उसके लिए सही सामग्री एकत्र करने को बहुत महत्त्व दिया। योग्य व्यक्तियों को इस कार्य के लिए चुना गया, जिन्होंने इस काम को करने में पूरा जीवन लगा दिया। इसलिए आज तक उनका उपयोग संदर्भ ग्रंथों के रूप में होता है। इनके अतिरिक्त जिलावार गजेटियर्स का प्रणयन किया गया। कुछ राज्यों ने जिलेवार गजेटियरों के पुनर्लेखन का काम शुरू भी किया। वह प्रशंसनीय था, किंतु पूरे देश के लिए जरूरी है कि उनमें एकरूपता रहनी चाहिए।

भारत विभाजन के उपरांत तत्कालीन सरकार ने उस समय के शिक्षा मंत्रालय के तत्त्वावधान में गजेटियरों के लिखवाने का काम एक अभियान के तौर पर लिया गया। वैसे कुछ राज्यों ने इक्का-दुक्का गजेटियर स्वयं तैयार करना शुरू किया था। शिक्षा मंत्रालय में इस कार्य की देखभाल और मार्गदर्शन के लिए एक विभाग स्थापित हुआ। राज्यों में उसी प्रकार गजेटियर विभाग के डायरेक्टर नियुक्त हुए और जिला गजेटियरों के लिखने का अच्छा काम हुआ। केंद्रशासित प्रदेशों में कुछ के गजेटियर तैयार हुए। भारत सरकार ने इसके लिए पर्याप्त आर्थिक सहायता प्रदान की थी। हम कह नहीं सकते कि उस समय के सब जिलों के गजेटियर तैयार हो पाए थे या नहीं। राज्य सरकारों ने उनका प्रकाशन किया था। अब वे भी अधिकतर उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए मंत्रालय का यह कदम निश्चित रूप से स्वागत योग्य है। किस प्रकार की व्यवस्था करने का इरादा है, ताकि समुचित रूप से योजना कार्यान्वित हो सके, यह ज्ञात नहीं है। धन और अन्य साधनों की आवश्यकता होगी। मंत्रालय इस दिशा में क्या करने जा रहा है, इसकी पूरी जानकारी नहीं है। पूरी रूपरेखा मंत्रालय को प्रसारित करनी चाहिए और विशेषज्ञों से मंत्रणा करनी चाहिए। हमें यह कहने में हिचक नहीं होनी चाहिए कि

शिक्षा मंत्रालय के अंतर्गत देश विभाजन के बाद गजेटियरों का अच्छा काम हुआ, किंतु बहुत कमियाँ रह गईं और वे पुराने गजेटियरों की तरह मान अर्जित नहीं कर सके। अब कंप्यूटर और इंटरनेट की सुविधा के कारण सही और पूर्ण सामग्री आसानी से एकत्र की जा सकती है। आवश्यक है कि निष्ठा और कल्पनाशीलता से योजना का शुभारंभ हो। इसके लिए राज्यों से संपर्क और समन्वय अनिवार्य है। केंद्र के सहयोग से फरीदाबाद का गजेटियर शायद तैयार हो जाए, पर इस योजना की देशव्यापी सफलता के लिए पर्याप्त प्रयास करने होंगे।

इस दिशा में करीब ७६ पृष्ठों की एक छोटी पुस्तिका 'द इंडिया गजेटियर्स' तत्कालीन शिक्षा मंत्रालय की ओर से १९६७ में प्रकाशित हुई थी। उसमें राज्य के निर्देशकों द्वारा तत्कालीन ऑल इंडिया रेडियो (वर्तमान में आकाशवाणी) पर परिचयात्मक रूप में जो वार्त्ताएँ प्रसारित की गई थीं, वे संकलित हैं। शुभारंभ की दृष्टि से पहली वार्त्ता प्रो. हुमायूँ कबीर की है, जिसमें उन्होंने सुंदर ढंग से गजेटियरों के ऐतिहासिक विकास और महत्त्व की कहानी वर्णित की है। गजेटियरों के महत्त्व को दरशाते हुए उन्होंने ठीक ही कहा है कि लोकतंत्र में उनका महत्त्व केवल प्रशासकों के लिए ही नहीं वरन् सर्वसाधारण के लिए भी है। इसके गजेटियर में समाज के विभिन्न वर्गों, उनकी भूमिका, राष्ट्रीय संरचना, क्षेत्रीय इतिहास के अवदान तथा विभिन्न दृष्टियों से गजेटियर्स का महत्त्व रेखांकित करती सामग्री संकलित है। उस समय जो व्यवस्था की गई थी, छह अपेंडिक्स उसकी जानकारी देते हैं। इस समय भी यह पुस्तिका कुछ मार्गदर्शन कर सकती है। पुस्तिका में आज की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार बदलाव किया जा सकता है।

नई शिक्षा नीति पर खामोशी क्यों?

भारत सरकार के मानव संसाधन मंत्रालय ने पूर्व कैबिनेट सचिव टी.एस.आर. सुब्रह्मण्यन की अध्यक्षता में नई शिक्षा नीति-निर्धारण के बारे में एक समिति नियुक्त की थी। समिति ने अपनी रिपोर्ट काफी समय पहले सरकार को सौंप दी थी, पर वह अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। रिपोर्ट के बारे में लोग व्यर्थ में अटकलें लगा रहे हैं। कोई कारण नहीं है कि रिपोर्ट जनता के सामने तुरंत क्यों न लाई जाए। अच्छा है, शिक्षा की समस्याओं में रुचि लेनेवाले विज्ञ रिपोर्ट पर अपनी राय दें, अपनी टिप्पणियाँ दें। इसी प्रक्रिया से नए-नए सुझाव सामने आते हैं। सरकार ने भी समिति को इसलिए नियुक्त किया था और निश्चित समय तक रिपोर्ट देने को कहा था, ताकि सरकार शिक्षा नीति-निर्धारण में उसका प्रयोग कर सके। कोई बाध्यता नहीं कि सरकार समिति के हर सुझाव को माने ही। सरकार कारण बता सकती है कि इस कारण उसे कुछ सुझाव मान्य नहीं हैं, किंतु रिपोर्ट को खामोशी के बस्ते में डाले रखना कोई उपाय नहीं। अब समाचार-पत्रों में आया है कि समिति के अध्यक्ष सुब्रह्मण्यन ने शिक्षा मंत्री को पत्र लिखकर कहा है कि यदि मंत्रालय रिपोर्ट शीघ्र प्रकाशित नहीं करती है तो वह उसे स्वयं प्रकाशित कर देंगे। यह मंत्रालय के लिए अच्छा नहीं होगा। सरकार स्वयं यह कहती रही है कि वह शिक्षा नीति शीघ्र घोषित करेगी। शिक्षा नीति का संबंध केंद्र और राज्य सरकारों से है। अगर देश में कोई क्षेत्र है, जहाँ भयंकर असमंजस है, तो वह है शिक्षा का क्षेत्र। शिक्षा के क्षेत्र में बहुत बड़ा माफिया पैदा हो गया है। इसका नवीनतम उदाहरण बिहार में देखने को मिला है, जहाँ जिन विद्यार्थियों को टॉपर होने की वाहवाही मिल रही थी, उन पर आपराधिक मुकदमे चल सकते हैं। वैशाली का एक स्कूल कई सालों से टॉपर बनाने का टकसाल बना हुआ था। एजूकेशन माफिया का राजनेताओं से गठबंधन है। स्कूल प्रबंधन के कर्ता-धर्ता बच्चू सिंह, जो अब हिरासत में हैं, लालू प्रसाद के दल एक के नेता हैं। लालूजी के दोनों बेटे, जो अब मंत्री हैं, वैशाली से चुने गए और यह महाशय उन दोनों के वैशाली के चुनाव में अत्यंत सक्रिय थे। बिहार शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष और उनकी पत्नी के खिलाफ भी वारंट जारी हुआ है, यह महिला पहले नीतीश कुमार की पार्टी से विधायक भी रही हैं। इस बार उनको टिकट नहीं मिल सका, क्योंकि वह सीट लालू प्रसाद की पार्टी के हिस्से में चली गई। जिस कॉलेज में वह प्रिंसिपल थी, वहाँ से भी वह हटा दी गई। बेईमानी तथा भ्रष्टाचार का यह घुन शिक्षा के क्षेत्र में बुरी तरह लगा हुआ है। जब शिक्षकों और व्यवस्था की देखभाल करनेवालों का यह हाल हो तो विद्यार्थियों का चरित्र कैसा होगा, इसका अंदाज लगा सकते हैं!

ऐसी ही स्थिति कुछ अन्य राज्यों में भी है। परीक्षा के नतीजे रुपयों से तौले जा रहे हैं। राजीव गांधी के समय शिक्षा नीति बनी। जनता सरकार के कार्यकाल में राममूर्ति समिति के सुझाव पर इसमें परिवर्तन हुए। डॉ. मनमोहन सिंह ने कार्यकाल में सैम पित्रोदा की अध्यक्षता में ज्ञान आयोग बना। उधर शिक्षा नीति के संबंध में प्रो. यशपाल की अलग रिपोर्ट आई। स्पष्टता की जगह शिक्षा के क्षेत्र में कोहरा और घना हो जाता है। आवश्यकता है, मंत्रालय नीति-निर्धारण की दिशा में शीघ्र कदम उठाए। उस पर राज्यों और संसद् दोनों में बहस होगी। नीति घोषित होने के बाद अनुपालन और कार्यान्वयन में भी देरी होगी। हम जानते हैं कि किसी भी क्षेत्र में नीति बनाना आसान नहीं है। सुना है कि मंत्रालय ने इस बारे में पहले से बहुत विचार-विमर्श कर रखा है। पुराना अनुभव और आज की परिस्थितियों की जानकारी मंत्रालय के पास है। फिर व्यर्थ का विलंब क्यों? कम-से-कम ड्राफ्ट रूप में तो कुछ सामने आना चाहिए। अनावश्यक संशय का वातावरण बना हुआ है। नीति-निर्धारण के बाद क्या पाठ्यक्रम होगा, कैसी पुस्तकें जरूरी होंगी, यह सब स्पष्ट हो सकेगा। वैसे ही पुस्तकों के विषय में अनेक राज्यों में काफी विवाद उठ रहे हैं। शिक्षा के हर स्तर पर ऊपर से लेकर नीचे तक अस्पष्टता है। अच्छे शिक्षकों से बात करने पर यह सब पता चलता है। प्रारंभिक शिक्षा तो सबसे खराब हालत में है। अच्छे स्कूल केवल धनवानों के लिए हैं। प्रधानमंत्री 'सबका साथ, सबका विकास' की बात करते हैं। इसकी आधारशिला शिक्षा है, पर वही आज विखंडित है; ऐसे में सबका विकास और समावेशी समतामूलक समाज की बात तो अर्थहीन हो जाती है।

आज की सत्ता का सामाजिक दायित्व

साहित्य अमृत के जून अंक में द्वारकापीठ के शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानंद के कुछ बयानों के बारे में कुछ प्रश्न उठाए गए थे, क्योंकि अंधविश्वास से समाज की प्रगति अवरुद्ध हो जाती है। संत और महात्माओं

की बात को कुछ लोग वेद-वाक्य मान लेते हैं। पढ़कर आश्चर्य हुआ कि मध्य प्रदेश सरकार ने उनकी 'कस्टमाइज्ड' लग्जरी कार यानी उनकी सुविधा और आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बनी कार, पर जो करीब ८.५० लाख रुपयों का टैक्स देना चाहिए, वह माफ कर दिया। उसके पीछे क्या तर्क है, पता नहीं। साधारणतया किसी दिव्यांग व्यक्ति के लिए कोई वाहन बाहर से मँगाया जाए तो कस्टम ड्यूटी माफ कर दी जाती है; और यदि कोई टैक्स राज्य सरकार को देना हो तो उसको माफ किया जा सकता है, चाहे वह वाहन देश में बना हो या बाहर से आए। उसका तो कुछ औचित्य समझा जा सकता है, पर एक धर्माचार्य, जिनके कब्जे में दो-दो पीठ हों और जो हवाई जहाज से सफर करते हों, उनका टैक्स क्यों माफ किया जाए? राशि का प्रश्न नहीं है, यह सिद्धांत की बात है। इन मठों और आश्रमों के पास करोड़ों रुपए हैं, वे उसका थोड़ा सा उपयोग, जैसे इस समय देश के विभिन्न भागों में सूखा पड़ रहा है या कुपोषण से बच्चे मर रहे हैं, उसके लिए नहीं करते हैं। हमने नहीं सुना कि स्वामी स्वरूपानंद गरीबों के लिए कोई अस्पताल या शिक्षा संस्थान चला रहे हैं। कुछ इसके अपवाद हैं, जैसे रामकृष्ण मिशन, चिन्मय मिशन। जब भी कोई आपदा आए, ये सहायता के लिए तत्पर होते हैं। ऐसे संगठनों पर जनता का विश्वास है और वह उनको खुशी-खुशी दान भी देती है।

गृहस्थों को कहा जाता है कि लोभ और मद से दूर रहना चाहिए, सेवा भाव से सब व्यवहार होना चाहिए। समाज में रहते हुए क्या इनका समाज के प्रति कोई दायित्व है या नहीं। कथनी और करनी में इतना भेद है कि ऐसे स्वयंभू संत-महात्मा बात एक कान से सुनते हैं और दूसरे कान से निकाल देते हैं। क्या आधार है, जिसके कारण वे विशेष व्यवहार के अधिकारी बन जाते हैं। यह भेदभाव क्यों? प्रतिदिन समाचार-पत्र खोलते ही सामाजिक विभीषिकाओं पर दृष्टि पड़ती है—दो-तीन साल के बच्चों का उत्पीड़न, महिलाओं के सामूहिक अत्याचार, दुराचार आदि, ऑनर किलिंग, कहीं पति और कहीं पत्नी एक-दूसरे की हत्या करवाते हैं। इसी प्रकार पढ़े-लिखे युवक और युवती अवसादग्रस्त होकर आत्महत्या करते हैं। गरीबों और दलितों पर होनेवाले अत्याचार के समाचार भी पढ़ने को मिलते हैं। अधिक लिखना व्यर्थ है। क्या इनके प्रति इन संतों-धर्माचार्यों का कोई दायित्व नहीं। भक्ति आंदोलन में संत-महात्मा समाज की पीड़ा को समझते थे। उनके बीच घूमते थे; आज जैसे धूम-धड़ाके में न पड़कर गाँव-गाँव जाकर लोगों को सांत्वना देते, उनका मागदर्शन करते थे। वे स्वयं साधना करते हुए समाज की पीड़ा व विसंगतियों को दूर करने के लिए सतत क्रियाशील रहते। गुरु नानक ने पूरे देश की यात्रा की, मक्का तक गए और अपने व्यवहार तथा वाणी द्वारा जनसाधारण के कष्टों को सही परिप्रेक्ष्य में समझा। आजकल के अधिकतर मठाधीश राजनीतिज्ञों की तरह आते हैं, भाषण देते हैं—जैसे ग्रामोफोन का रिकॉर्ड बोल रहा हो—और फिर गायब। जनसंपर्क की अवधारणा तो समाप्त ही है। धनसंपन्न व्यक्तियों अथवा प्रभावशाली राजनेताओं की ही उन तक पहुँच होती है।

पिछले दिनों यमुना के किनारे आर्ट ऑफ लीविंग फाउंडेशन की पैंतीसवीं वर्षगाँठ पर 'फाउंडेशन' की ओर से बड़ी धूमधाम से विश्व सांस्कृतिक महोत्सव मनाया गया। उसकी रजत जयंती वर्ष में कर्नाटक में होने के कारण श्रीश्री रविशंकर के अनुरोध पर शामिल हुआ। उनसे अच्छा परिचय है और हम उनका आदर करते हैं। वैसे दिल्ली का उत्सव तो आलीशान था ही। भारतीय संस्कृति के प्रदर्शन के साथ अन्य देशों के कलाकारों ने इसमें भाग लिया। उत्सव के लिए स्थान के चुनाव के कारण वह विवादास्पद हो गया। मामला हरित ट्रिब्यूनल के सामने है। जमुना के कछार को नुकसान हुआ या नहीं, यह तो विशेषज्ञ तय करेंगे। 'आर्ट ऑफ लीविंग' के प्रतिनिधि ने हरित ट्रिब्यूनल के विशेषज्ञों को निष्पक्ष नहीं माना है और वे शायद उच्चतम न्यायालय जाएँगे। पर यह उनका अधिकार है। मंत्री सुश्री उमा भारती का यह कहना कि यमुना कछार का वह भाग, जहाँ उत्सव हुआ था, पहले से अधिक साफ है, यानी स्वयं क्लीन चिट दे दी, यह भी अजीब है। हरित ट्रिब्यूलन कानून के अंतर्गत संस्था है, अभी सब विवाद का मामला उसके विचाराधीन है। दो बातें हैं, जो खटकनेवाली हैं—श्रीश्री रविशंकर ने बड़े रोष में कहा कि यदि पाँच करोड़ जुर्माना है तो वे एक पैसा नहीं देंगे। यदि मुआवजा है तो दूसरी बात है। बहुत जद्दोजेहद के बाद पाँच करोड़ की भरपाई कर दी गई है। अगर हरित ट्रिब्यूनल का फैसला मंजूर नहीं था तो सर्वोच्च न्यायालय का रास्ता खुला था। कोई भी कानून के ऊपर नहीं है। इस प्रकार कानून को चुनौती देना गलत उदाहरण प्रस्तुत करना है। हरित ट्रिब्यूनल ने प्रारंभ से ही इस विषय में बहुत संतुलन से काम लिया और उत्सव को संपन्न होने दिया। सरकारी एजेंसियों ने उत्सव में सहायता की थी और उस पर भी प्रश्न उठे थे। अब वैसे संत कहाँ, जो राजसत्ता को कह सकें कि 'संतन को सीकरी से क्या काम'। पहले के संत जनता के बीच रहते, उनके सुख-दुःख में भागीदार होते और जनता ही उनके खाने-पीने की व्यवस्था करती थी। इसीलिए वे आज इतिहास में अमर हैं। अब तो तथाकथित संतों की आकांक्षाओं का अंत नहीं है। दूसरी बात यह कि समाचार-पत्रों के प्रतिनिधियों से बात करते हुए श्री श्री रविशंकर ने कहा है कि उन्हें नोबेल शांति पुरस्कार की कोई दरकार नहीं। एक सोलह साल की लड़की को यह प्रदान किया गया, उसका क्या विशेष अवदान है। कैसे हम यह भुला सकते हैं कि मलाला ने पाकिस्तान में कठमुल्लों के सामने लड़कियों को शिक्षा की हिमायत करते हुए तालिबान की गोलियाँ खाईं और जीवन-मृत्यु के बीच झूलती रही। इस साहस के लिए उसे 'नोबेल शांति पुरस्कार' के लिए चुना गया। क्या उसके इस साहस की हम अवहेलना कर सकते हैं? श्री श्री रविशंकर ने यदि ऐसा कहा तो उसमें अहं की गंध आती है। वह गंध साधारण व्यक्ति को लगेगी, संत-महात्मा जिस अहं को त्यागने की शिक्षा सर्वसाधारण को देते हैं। आर्ट ऑफ लिविंग फाउंडेशन के लाखों अनुयायी हैं, देश-विदेश में केंद्र हैं, धन का अभाव नहीं है तो क्या इन साधनों का उपयोग देश के सूखा-पीड़ित क्षेत्रों में राहत के लिए करना समीचीन नहीं लगता? संवेदना, पीर पराई को जानना किसी भी संत का वह गुण है, जिसके कारण साधारण दिखनेवाला व्यक्ति असाधारण की श्रेणी में गिना जाता है।

भाजपा की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक

पाँच देशों की अपनी अत्यंत सफल यात्रा के उपरांत प्रधानमंत्री मोदी का एक महत्त्वपूर्ण कार्य था, अपनी पार्टी की इलाहाबाद में होनेवाली राष्ट्रीय कार्यकारिणी में भाग लेना। अमेरिकी कांग्रेस की संयुक्त बैठक में जिस प्रकार

उनका स्वागत हुआ, वह अभूतपूर्व रहा। अफगानिस्तान और ईरान से भारत के संबंध मजबूत करने के अनेक समझौते हुए। ईरान से जो करार छावहार पोर्ट बनाने का हुआ है, वह आर्थिक और रणनीतिक दृष्टि से भारत के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। छावहार पोर्ट करीब ४.५ बिलियन डॉलर में बनेगा। देखना यह है कि समयावधि में ही बंदरगाह तैयार हो जाए। यह एक बड़ा दायित्व है। अफगानिस्तान में प्रधानमंत्री को 'सर्वोच्च नागरिक सम्मान' से नवाजा गया। हेरात प्रांत में प्रधानमंत्री मोदी और अफगानिस्तान के प्रधानमंत्री ने संयुक्त रूप से अफगान-भारत दोस्ती डोम का उद्घाटन किया। अफगानिस्तान के पुनर्निर्माण के लिए भारत ने कई बड़े कदम उठाए हैं।

प्रधानमंत्री की विदेश यात्रा की सफलता और देश में हाल में हुए चुनावों में असम, केरल, तमिलनाडु, पुडुचेरी और पश्चिम बंगाल में भाजपा को मिली सफलता के कारण वातावरण अत्यंत सकारात्मक और उत्साहवर्धक था। असम में पहली बार भाजपा ने अपने सहयोगियों के साथ सरकार बनाई है। उत्तर-पूर्व के राज्यों में भाजपा के बढ़ते कदमों का यह परिचायक है। केरल में पहली बार भाजपा का एक सदस्य विधानसभा में आया और कई सीटों में भाजपा प्रत्याशी दो नंबर पर रहे। वोटों की संख्या में भी बढ़ोतरी हुई। अन्य राज्यों में जहाँ विधानसभा के चुनाव हुए, कमोबेश भाजपा को अच्छी सफलता मिली। कार्यकारिणी में मोदी सरकार की उपलब्धियों को देश की जनता के बीच पहुँचाने पर जोर दिया गया। प्रधानमंत्री स्वयं समय-समय पर अपने मंत्रियों, सांसदों तथा कार्यकर्ताओं से बार-बार यही कह रहे हैं। सांसदों और विधायकों के कार्य में जो कमियाँ रही हैं, उनको दूर करना जरूरी है। इसके लिए आत्ममंथन आवश्यक है।

भाजपा की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक का उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद में होने का अपना महत्त्व है। उत्तर प्रदेश देश का सबसे बड़ा राज्य है। २०१४ के चुनाव में भाजपा ने सात सीटों को छोड़कर सब संसदीय सीटों पर विजय प्राप्त की। लंबे अरसे से इलाहाबाद उत्तर प्रदेश में ही नहीं, देश की राजनीतिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का केंद्र रहा है। अगले वर्ष उत्तर प्रदेश की विधानसभा के चुनाव हैं, जिसमें भाजपा को सफलता प्राप्त करना भविष्य के लिए भी अत्यावश्यक है। इलाहाबाद में प्रधानमंत्री ने अपार भीड़ की जनसभा को संबोधित किया। उत्तर प्रदेश की भाजपा में एक नए जोश का संचार हुआ, जो निरंतर बना रहना चाहिए। आपसी मतभेदों को भूलकर एकजुट होकर काम करने की आवश्यकता है, क्योंकि पिछले दिनों वहाँ भाजपा में सक्रियता और आपसी मेल-मिलाप का अभाव रहा है। प्रधानमंत्री ने एल्फ्रेड पार्क में स्वतंत्रता संग्राम के अमर सेनानी चंद्रशेखर आजाद की प्रतिमा पर पुष्प अर्पित किए। प्रतिमा उसी स्थान पर है, जहाँ आजाद ने पुलिस से अकेले लड़ते हुए अपने जीवन की आहुति दी। वे अंत समय तक अपने को 'आजाद' कहते थे और 'आजाद' ही रहे। उनकी प्रतिमा पर पुष्प समर्पित करना और श्रद्धा से नमन प्रधानमंत्री की सूझबूझ का परिचायक है। जन-साधारण पर उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा, क्योंकि अभी तक तो क्रांतिकारी शहीदों की अवहेलना ही होती रही है। हमारी दृष्टि में प्रधानमंत्री ने जो मंत्र भाजपा के नेताओं और कार्यकर्ताओं को दिए, वे अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। साथ ही सतर्कता रखना जरूरी है कि इनका अनुपालन गंभीरता से हो, तभी प्रधानमंत्री के विकास का लक्ष्य पूरा हो सकता है। प्रधानमंत्री मोदी के ये सात मंत्र हैं—१. सेवा भाव; २. संतुलन; ३. संयम; ४. समन्वय; ५. सकारात्मकता; ६. संवेदना; ७. संवाद। हर शब्द के गहरे अर्थ हैं। उनपर भाजपा के मंत्रियों, कार्यकर्ताओं को गंभीरता से विचार करना है। जो दल सत्ता में होता है, उसके दायित्व कहीं अधिक होते हैं। भाजपा के कार्यकर्ता और नेतागण कहाँ तक अपनी वाणी और व्यवहार में समन्वय, संतुलन, संयम, संवेदना और सकरात्मक रुख प्रदर्शित करते हैं, ताकि संपूर्ण जनता जनार्दन को सदा आभास रहे कि सत्ता के साथ संवाद सतत संभव है, सत्ता के गलियारे उनके लिए बंद नहीं हैं और सचमुच सत्ताधारी सेवाभाव से प्रेरित हैं, स्वार्थ से नहीं।

☐

कामागाटामारु का प्रसंग भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक अभिन्न अंग है। २०१४ में इस स्तंभ में अमेरिका में गदर आंदोलन की चर्चा की गई थी; २० मई को कनाडा के प्रधानमंत्री जसटिन ट्रूडू ने कनाडा की संसद् में इसके लिए क्षमा माँगी। कामागाटा जहाज जब ब्रिटिश कोलंबिया (कनाडा) पहुँचा तो भारतीय यात्रियों को उतरने नहीं दिया गया। नक्सलवाद के भेदभाव के कारण ऐसा हुआ। कनाडा के विकास में भारतीयों, विशेषतया पंजाब के निवासियों की महती भूमिका रही है। टोरंटो में गुरुवाणी के अखंड पाठ के समय कनाडा के युवा प्रधानमंत्री ने घोषणा की थी कि वे मई माह में संसद् में क्षमा माँगेंगे। खेद है कि इस बात की चर्चा देश के समाचारों में बहुत कम हुई। अमृतसर के जलियाँवाला कांड का एक गहरा घाव पंजाब और भारत के दिल में है, वह भर सके। जलियाँवाला बाग कांड के बाद ही भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का एक नया अध्याय शुरू हुआ, जिसका पटाक्षेप १९४७ में हुआ। कामागाटामारु की पूरी कहानी को अगले अंक में एक आलेख के द्वारा प्रस्तुत करने का हमारा प्रयास रहेगा।

☐

यह वर्ष 'मानस का हंस' और 'खंजन नयन' के रचयिता अमृतलाल नागर का जन्मशती वर्ष है। हिंदी साहित्य में उनका बहुआयामी अवदान है। उपन्यास, कहानियाँ, संस्मरण, व्यंग्य, नाटक, बच्चों का साहित्य आदि सभी विधाओं पर उन्होंने अपनी लेखनी चलाई। साहित्य अमृत उनके व्यक्तित्व-कृतित्व और उपलब्धियों का सादर स्मरण करेगा। एम.एस. सुब्बालक्ष्मी, जिनकी मीरा फिल्म की हिंदी में डबिंग नागरजी ने की थी, उनका भी यह जन्मशती वर्ष है। उनके विषय में इस स्तंभ में कुछ टिप्पणी पहले की जा चुकी है। शहनाई के शहंशाह भारत रत्न बिस्मिल्लाह खाँ का भी यह जन्मशती वर्ष है। उनके व्यक्तित्व और उपलब्धियों के विषय में अगले अंकों में कुछ सामग्री प्रस्तुत करेंगे।

'साहित्य अमृत' का अगस्त अंक स्वाधीनता संग्राम को समर्पित होगा और स्वाधीनता संग्राम की विभिन्न घटनाओं, विशेषतया स्वाधीनता आंदोलन के कुछ पक्षों को प्रस्तुत करने का यथासंभव प्रयास होगा।

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

(त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी)

शिष्टाचार

● भीष्म साहनी

जब तीन दिन की अनथक खोज के बाद बाबू रामगोपाल एक नौकर ढूँढ़कर लाए तो उनकी क्रुद्ध श्रीमती और भी बिगड़ उठीं। पलंग पर बैठे-बैठे उन्होंने नौकर को सिर से पाँव तक देखा और देखते ही मुँह फेर लिया।

'यह बनमानस कहाँ से पकड़ लाए हो? इससे मैं काम लूँगी या इसे लोगों से छिपाती फिरूँगी?' इसका उत्तर बाबू रामगोपाल ने दिया।

'जानती हो, तलब क्या होगी? केवल बारह रुपए। इतना सस्ता नौकर तुम्हें आजकल कहाँ मिलेगा?'

'तो काम भी वैसा ही करता होगा।' श्रीमती बोलीं।

'यह मैं क्या जानूँ? नया आदमी है, हाल ही में अपने गाँव से आया है।'

श्रीमतीजी की भौंवें चढ़ गईं, 'तो इसे काम करना भी मैं सिखाऊँगी? अब मुझ पर इतनी दया करो, जो किसी दूसरे नौकर की खोज में रहो। जब मिल जाए तो मैं इसे निकाल दूँगी।'

बाबू रामगोपाल तो यह सुनकर अपने कमरे में चले गए और श्रीमती दहलीज पर खड़े नौकर का कुशल-क्षेम पूछने लगीं। नौकर का नाम हेतू था और शिमले के नजदीक एक गाँव से आया था। चपटी नाक, छोटा माथा, बेतरह से दाँत, मोटे हाथ और छोटा-सा कद, श्रीमती ने गलत नहीं कहा था। नाम-पता पूछ चुकने के बाद श्रीमती अपने दाएँ हाथ की उँगली पिस्तौल की तरह हेतू की छाती पर दागकर बोलीं, 'अब दोनों कान खोलकर सुन लो। जो यहाँ चोरी-चकारी की तो सीधा हवालात में भिजवा दूँगी। जो यहाँ काम करना है तो पाई-पाई का हिसाब ठीक देना होगा।'

श्रीमती का विचार नौकरों के बारे में वही कुछ था, जो अकसर लोगों का है कि सब मक्कार, गलीज और लंपट होते हैं। किसी पर विश्वास नहीं किया जा सकता। सभी झूठ बोलते हैं, सभी पैसे काटते हैं और सभी हर वक्त नौकरी की तलाश में रहते हैं, जो मिल जाए तो उसी वक्त घर से बीमारी की चिट्ठी मँगवा लेते हैं। इसीलिए श्रीमतीजी का व्यवहार नौकरों के साथ नौकरों का सा ही था। यों भी घर में उनकी हुकूमत थी। जब उन्हें पतिदेव पर गुस्सा आता तो अंग्रेजी में बात करतीं और जब नौकर पर गुस्सा आता तो गालियों में बात करतीं। दोनों की लगाम खींचकर रखतीं। उनकी तेज नजर पलंग पर बैठे-बैठे भी नौकर के हर काम की जानकारी रखती कि नौकर ने कितना घी इस्तेमाल किया, कितनी रोटियाँ निगल गया है। अपनी चाय में कितने चम्मच चीनी उड़ेली है। जासूसी नॉवलों की शिक्षा के फलस्वरूप उन्हें नौकरों की हर क्रिया में षड्यंत्र नजर आता था।

काम चलने लगा। हेतू कुरूप तो था ही, उस पर उजड्ड और गँवार भी निकला। उसके मोटे-मोटे स्थूल हाथों से काँच के गिलास टूटने लगे, परदों पर धब्बे पड़ने लगे और घर का काम अस्त-व्यस्त रहने लगा। श्रीमती दिन में दस-दस बार उसे नौकरी से बरखास्त करतीं। पर तब भी हेतू की पीठ मजबूत थी। दिन कटने लगे और बाबू रामगोपाल की खोज दूसरे नौकर के लिए शिथिल पड़ने लगी। नौकर उजड्ड और कुरूप था, पर दिन में केवल दो बार खाता था। उस पर वेतन केवल बारह रुपए। जो किसी चीज का नुकसान करता तो उसकी तनख्वाह कटती थी। दिन बीतने लगे, हेतू के कपड़े मैले होकर जगह-जगह से फटने लगे, मुँह का रंग और भी काला पड़ने लगा और गाँव का जाट धीरे-धीरे एक शहरी नौकर में तब्दील होने लगा। इसी तरह तीन महीने बीत गए।

पर यहाँ पहुँचकर श्रीमती एक भूल कर गईं। कहते हैं कि स्त्री में संकीर्णता का इलाज पुरुष के पास तो नहीं, पर प्रकृति के पास अवश्य है। श्रीमान और श्रीमती के एक छोटा सा बालक था, जो अब चार बरस का हो चला था और प्रथानुसार उसके मुंडन संस्कार के दिन नजदीक आ रहे थे। पूरे घर में बड़े उत्साह और प्यार से मुंडन की तैयारियाँ होने लगीं। बेटे के वात्सल्य ने श्रीमतीजी की आँखें आटे, दाल और घी से हटाकर रंग-बिरंगे खिलौनों और कपड़ों की ओर फेर दीं, शामियाने और बाजे का प्रबंध होने लगा। मित्रों-संबंधियों को निमंत्रण-पत्र लिखे जाने लगे और धीरे-धीरे चाबियों का गुच्छा श्रीमतीजी के दुपट्टे के छोर से निकलकर नौकर के हाथों में रहने लगा।

आखिर वह शुभ दिन आ पहुँचा। श्रीमान और श्रीमती के घर के सामने बाजे बजने लगे। मित्र-संबधी मोटरों व ताँगों पर बच्चे के लिए उपहार ले-लेकर आने लगे। फूलों, फानूसों और मित्र मंडली के हास्य-विनोद से घर का सारा वातावरण जैसे खिल उठा था। श्रीमान और श्रीमती काम में इतने व्यस्त थे कि उन्हें पसीना पोंछने की भी फुरसत नहीं थी।

ऐन उसी वक्त हेतू कहीं बाहर से लौटा और सीधा श्रीमान के सामने आ खड़ा हुआ।

'हुजूर, मुझे छुट्टी चाहिए, मुझे घर जाना है।'

श्रीमान उसी वक्त दरवाजे पर खड़े अतिथियों का स्वागत कर रहे थे, हेतू के इस अनोखे वाक्य पर हैरान हो गए।

'क्या बात है?'

'हुजूर, मुझे घर से बुलाया है, मुझे आप छुट्टी दे दें।'

'छुट्टी दे दें। आज के दिन तुम्हें छुट्टी दे दूँ?' श्रीमान का क्रोध उबलने लगा, 'जाओ' अपना काम देखो। छुट्टी-वुट्टी नहीं मिल सकती। मेहमान खाना खानेवाले हैं और इसे घर जाना है।' हेतू फिर भी खड़ा रहा, अपनी जगह से नहीं हिला। श्रीमान झुँझला उठे।

'जाते क्यों नहीं? छुट्टी नहीं मिलेगी।'

फिर भी जब हेतू टस-से-मस न हुआ तो श्रीमान का क्रोध बेकाबू हो गया और उन्होंने छूटते ही हेतू के मुँह पर एक चाँटा दे मारा।

'उल्लू के पट्ठे, यह वक्त तूने छुट्टी माँगने का निकाला है।'

चाँटे की आवाज दूर तक गई। बहुत से मित्र-संबंधियों ने भी सुनी और आँख उठाकर भी देखा, मगर यह देखकर कि केवल नौकर को चाँटा पड़ा है, आँखें फेर लीं।

श्रीमती को जब इसकी सूचना मिली तो वह जैसे तंद्रा से जागीं। हो न हो इसमें कोई भेद है। मैं भी कैसी मूर्ख, जो इस लंपट पर विश्वास करती रही और सब ताले खोलकर इसके सामने रख दिए। इसने न मालूम किस-किस चीज पर हाथ साफ किया है, जो आज ही के दिन छुट्टी माँगने चला आया है। भागी हुई बाहर आई और बरांडे में खड़ी होकर हेतू को फटकारने लगीं। उन्होंने वह, कुछ कहा, जो हेतू के कानों ने पहले कभी नहीं सुना था। कुछ एक संबंधी इकट्ठे हो गए और जलसे मे विघ्न पड़ता देखकर श्रीमान को समझाने लगे।

श्रीमती को जब इसकी सूचना मिली तो वह जैसे तंद्रा से जागीं। हो न हो, इसमें कोई भेद है। मैं भी कैसी मूर्ख, जो इस लंपट पर विश्वास करती रही और सब ताले खोलकर इसके सामने रख दिए। इसने न मालूम किस-किस चीज पर हाथ साफ किया है, जो आज ही के दिन छुट्टी माँगने चला आया है। भागी हुई बाहर आईं और बरांडे में खड़ी होकर हेतू को फटकारने लगीं। उन्होंने वह कुछ कहा, जो हेतू के कानों ने पहले कभी नहीं सुना था। कुछ एक संबंधी इकट्ठे हो गए और जलसे मे विघ्न पड़ता देखकर श्रीमान को समझाने लगे। एक ने हेतू से पूछा, 'क्यों, घर क्यों जाना चाहते हो?'

हेतू चुपचाप खड़ा रहा, पहले कुछ कहने लगा, फिर इधर-उधर देखकर रुक गया और बोला, 'जी काम है।'

'क्या काम है?'

हेतू ने फिर धीरे से कह दिया।

'जी काम है।'

इस पर श्रीमती का गुस्सा और भड़क उठा, मगर बाकी लोग तो बात को निबटाना चाहते थे, हेतू को चुपचाप धकेलकर परे हटा दिया। फिर पति-पत्नी में परामर्श हुआ। आखिर दोनों इस नतीजे पर पहुँचे कि इस वक्त चुप हो जाना ही ठीक है। मुंडन के बाद इसका इलाज सोचेंगे।

हेतू बजाय इसके कि फिर काम में जुट जाता, बरांडे के एक कोने में जाकर बैठ गया और न हूँ न हाँ, चुपचाप इधर-उधर ताकने लगा। इस पर श्रीमान आपे से बाहर होने लगे। पहले तो देखते रहे, फिर उसके पास जाकर उससे कड़ककर बोले,

'काम करेगा या मैं किसी को बुलाऊँ?'

हेतू ने फिर वही रट लगाई।

'साहब, मुझे जाने दो, मैं जल्दी लौट आऊँगा, मुझे काम है।'

आखिर जब जलसे में बहुत से लोगों का ध्यान उसी तरफ जाने लगा तो दो-एक मित्रों ने सलाह दी कि उसका नाम-पता लिख लिया जाए, उसकी तनख्वाह रोक ली जाए और उसे जाने दिया जाए। श्रीमान ने अपनी डायरी खोली, उस पर हेतू का पूरा पता लिखा, नीचे अँगूठा लगवाया और धक्के मारकर बाहर निकाल दिया।

दूसरे दिन श्रीमती ने अपना ट्रंक खोलकर अपनी चीजों की पड़ताल शुरू की। अपने जेवर, सिल्क के जड़ाऊ सूट, चाँदी के बटन, एक-एक करके जो याद आया, गिन डाला। मगर बड़े घरों में चीजों की सूची कहाँ होती है और एक-एक चीज किसे याद रह सकती है। श्रीमती जल्दी ही थककर बैठ गईं।

'तुमने उसे जाने क्यों दिया? कभी कोई नौकरों को यों भी जाने देता है? अब मैं क्या जानूँ क्या-क्या उठा ले गया है।'

'जाएगा कहाँ? उसकी तीन महीने की तनख्वाह मेरे नीचे है।'

'वाह जी, सौ-पचास की चीज ले गया तो बीस रुपए तनख्वाह की वह चिंता करेगा?'

'तुम अपनी चीजों को अच्छी तरह देख लो। अगर कोई चीज भी गायब हुई तो मैं पुलिस में इत्तला कर दूँगा। मैंने उसका पता-वता सब लिख लिया।'

'तुम समझे बैठे हो कि उसने तुम्हें पता ठीक लिखवाया होगा?'

दूसरा नौकर आ गया और घर का काम पहले की तरह चलने लगा। जब श्रीमतीजी को कोई चीज न मिलती तो वह हेतू को गालियाँ देतीं। पर श्रीमान धीरे-धीरे दिल ही दिल में अफसोस करने लगे। कई बार उनके जी में आया कि उसके पैसे मनीऑर्डर कराकर भेज दें, मगर फिर कुछ श्रीमती के डर से, कुछ अपने संदेह के कारण रुक जाते।

एक दिन शाम का वक्त था। श्रीमान थके हुए दफ्तर से घर लौट रहे थे, जब उनकी नजर सड़क के पार एक धर्मशाला के सामने खड़े हुए हेतू पर पड़ गई। वही फटे हुए कपड़े, वही शिथिल कुरूप चेहरा। उन्हें पहचानने में देर नहीं लगी। झट से सड़क पार करके हेतू के सामने जा खड़े हुए और उसे कलाई से पकड़ लिया।

'अरे तू कहाँ था इतने दिन? गाँव से कब लौटा?'

'अभी-अभी लौटा हूँ साहब।' हेतू ने जवाब दिया।

'काम कर आया है अपना।'

हेतू ने धीरे से कहा—

'जी।'

'कौन सा ऐसा जरूरी काम था, जो जलसेवाले दिन भाग गया?' हेतू चुप रहा।

'बोलते क्यों नहीं, क्या काम था? मैं कुछ नहीं कहूँगा, सच-सच बता दो।'

सहसा हेतू की आँखों में आँसू आ गए। होंठ बात करने के लिए खुलते, मगर फिर बंद हो जाते। बार-बार आँसू छिपाने का यत्न करता, मगर आँखें ऐसी दलक आई थीं कि आँसुओं को रोकना असंभव हो गया था।

बाबू रामगोपाल पसीज उठे।

'अच्छा क्या बात है?' उसका कंधा सहलाते हुए बोले।

'जी मेरा बच्चा मर गया था।' लड़खड़ाती हुई आवाज में हेतू ने कहा।

बाबू रामगोपाल को सुनकर दु:ख हुआ। थोड़ी देर तक चुपचाप खड़े उसके मुँह की ओर देखते रहे, फिर बोले, 'मगर तुमने उस वक्त कहा क्यों नहीं? तुमसे बार-बार पूछा गया, मगर तुम कुछ भी न बोले?'

हेतू ने धीरे से कहा, 'जी वहाँ कैसे कहता?'

'क्यों?'

'खुशीवाले घर में यह नहीं कहते। हमारे गाँव में इसे बुरा मानते हैं।'

और श्रीमान स्तब्ध और हैरान उस उजड्ड-गँवार के मुँह की ओर देखने लगे।

बेबसी, बेचारगी हो कब तलक

गजल

● पूनम माटिया

: एक :

वो कफस में अब ठहरता ही नहीं,
अपने पर कोई कतरता ही नहीं।

जिस्म यूँ तो घूमता है हर जगह,
मन कहीं मेरा विचरता ही नहीं।

याद उनकी इस कदर हावी हुई,
डूबकर ये दिल उबरता ही नहीं।

जो बिगाड़ा आपकी फुरकत ने वो,
अब किसी सूरत सँवरता ही नहीं।

बाद 'पूनम' के अमावस है मगर,
चाँद जिद्दी है ठहरता ही नहीं।

: दो :

जख्म जब दिल का छुपाना आ गया,
बेवजह भी मुसकराना आ गया।

अब विदा होती कहाँ हैं बेटियाँ,
घर-जमाई का जमाना आ गया।

उनकी बद गुफ्तार करके अनसुनी,
हमको भी अब चुप लगाना आ गया।

बेबसी, बेचारगी हो कब तलक,
लड़कियों को सिर उठाना आ गया।

शब तो 'पूनम' करवटों में कट गई,
दिन ये गम लेकर पुराना आ गया।

फंदा···बूँद शब्द, अर्थ है सागर

छोटी थी जब स्वेटर बुनते
माँ ने टोका था मुझको,
'सारा स्वेटर उधड़ न जाए
ध्यान तो दे, कहीं गिर न जाए
बुनते-बुनते ही यह फंदा!'
छोटी सी बुद्धि में तब से
'फंदा' स्वेटर में ही जाना।
और टोकती थी माँ अकसर
'धीरे-धीरे खाया कर।'
छोटे-छोटे ग्रास बनाकर
खुद भी कभी खिलाती थी।
'पानी, भोजन बीच न पीना,
लग जाएगा गले में 'फंदा'
कह-कहकर ध्यान दिलाती थी।
बदल गए संदर्भ सभी।
अब सहज समझ न आता है
क्यों अन्नदाता भारत का
'फंदे' को अपनाता है?
क्यों बिलखते बच्चे भूखे?
क्यों बिन-ब्याही बेटी छोड़
वो जीवन से हार जाता है।
अचरज बहुत होता है जब
बिटिया जो जान से प्यारी है,
बेटा भी आँख का तारा है,
पर न जाने क्यों ये 'फंदा'
बन जाता है गले का हार?
'खाप' छीन लेती है क्यों
झूठी इज्जत की खातिर
बच्चों से ही उनका प्यार।
'फंदा-फंदा' कहकर अब तो
शादी नहीं रचाते हैं,
रख परंपराओं को ताक पे
जाने कितने बच्चे अब
बिन-ब्याहे ही रह जाते हैं।
शादी लगती गले का 'फंदा'
बिन शादी रास-रचाते हैं।
बूँद शब्द, अर्थ है सागर
जाकी जैसी बुद्धि ठहरी
वैसा ही तो बाँचे है।
'फंदा' क्यों समझें हम इसको
धैर्य से सब सुलझाते हैं।
जीवन बहे सरिता सी धार
पथ निष्कंटक, प्रेम बहार
फंदा-फंदा स्वेटर बुन ले
बाकी सब है व्यर्थ-विकार।

९० बी, पॉकेट-ए, दिलशाद गार्डन
दिल्ली-११००९५
दूरभाष : ९३१२६२४०९७

मेस आयनाक : भारत को पुकारते बौद्ध अवशेष

● कादंबरी मेहरा

सुपरिचित कथाकार। 'कुछ जग की', 'पथ के फूल', 'रंगों के उस पार' *(कहानी-संग्रह)* के अलावा हिंदी पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित। 'भारतेंदु हरिश्चंद्र सम्मान' तथा कथा यू.के. का 'पद्मानंद साहित्य सम्मान'।

'शाहबुद्दीन! पहचानो इसे! यह तुम्हारी ही आबरू···''

फिल्म 'पाकीजा' में वरिष्ठ अभिनेत्री वीना की ओजस्वी ललकार अनजाने मेरे हृदय में गूँज उठी, जब मैंने प्राचीन बौद्ध नगर 'मेस आयनक' के विषय में नेशनल जियोग्राफिक पत्रिका में पढ़ा। मुझे लगा कि मैं अपने पिछले जन्म में भटक रही हूँ। यह अकूत धरोहर हमारी है और आज जाने किन-किन हाथों में पड़कर कभी लुट रही है तो कभी सिमट रही है।

भारतीय संस्कृति कहाँ-कहाँ उपेक्षित बिखरी पड़ी है, कितना अमूल्य खजाना हम छोड़ आए? हमारे धर्मग्रंथ इस तथ्य के साक्षी हैं कि ईसापूर्व भारत की सीमा बाह्लीक तक थी। मगध-द्वारावती मार्ग पर निरंतर व्यापारिक यातायात होता था, जो मध्य एशिया में चीन के रेशम-पथ से जा मिलता था। आज का 'ग्रैंड ट्रंक रोड', जो अब कोलकाता से पेशावर तक जाता है, इसी भव्य राजपथ का आधुनिक स्वरूप है। यह बात और है कि अनेक शासकों ने इसका समय-समय पर पुनरोद्धार किया। यह राजपथ सिंधु घाटी सभ्यता से पूर्व का है। अनेक उदाहरण पुरातत्त्व अन्वेषण से प्राप्त हुए हैं, जो प्रमाण हैं कि गांधार और पुरुषपुर, मूलस्थान और मेहरगढ़ से धातुओं व जवाहरातों का व्यापार श्रीलंका तक होता था।

आज का अफगानिस्तान बौद्ध धर्म का एक प्रसिद्ध केंद्र था। तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में सम्राट् अशोक ने इसे अपना राजधर्म बनाया था और उनके वंशजों ने इसे दूर-दूर तक फैलाया था। कुषाणकाल में कनिष्क ने अनेक धर्मों का आदर किया और महान् साम्राज्य की स्थापना की, जिसकी सीमाएँ गांधार से लगाकर पश्चिमी बंगाल को छूती थीं। यह केवल मौखिक इतिहास नहीं है, जैसा कि 'मेस आयनक' की खुदाई से सिद्ध हो चुका है।

काबुल से करीब ३० मील दक्षिण की ओर अगर मोटर से जाएँ तो गाड़ी एक कच्ची सड़क पर धचके खाती आगे बढ़ती है। एक तीखा मोड़ बाईं और मुड़ते ही एकदम सूखा प्रदेश शुरू हो जाता है। यहाँ सड़क के बजाय जो रास्ता मिलता है, वह किसी सूखी नदी का पाट है। यह रास्ता एक सूखी निर्जन वादी में खुलता है। इस प्रदेश पर तालिबान और अन्य क्रूर आतंकवादी समूहों का अधिकार है। अत: रास्ते में बमबारी से टूटे-फूटे अनेक घर, उजड़े हुए गाँव आदि मिलेंगे। हरियाली का नामोनिशान तक नहीं। वादी की जमीन सुरंगों और क्षत-विक्षत इमारतों से छितरी हुई है। इन्हीं के बीच दूर-दूर तक एक अति प्राचीन दीवार के खँडहर बिखरे हुए हैं, जो हाल ही में खुदाई करके अनावृत किए गए हैं।

यह गांधार क्षेत्र है। यहाँ अनेक संस्कृतियों का समावेशन होता था। आधुनिक काल में यहाँ सूखा और गरीबी का साम्राज्य है। अनेकों बार वर्षाकाल में बाबा वली पर्वत की ढलानों पर नीले, बैंगनी व हरे रंग का कीचड़ बहकर आता था। अनपढ़ गरीब इसका कारण नहीं जानते थे। कुछ वर्ष पूर्व यहाँ खुदाई में एक कंकाल मिला, जिसकी हड्डियाँ हरी-नीली हो गई थीं। परीक्षण से पता चला कि उनपर ताँबे का थोथा जमा हुआ था। विश्व के पुरातत्त्व शास्त्रियों का ध्यान इस ओर गया और यहाँ उत्खनन का काम शुरू कर दिया गया। अंतरराष्ट्रीय विद्वानों का दल सरकार के सहयोग से पिछले सात वर्षों से इस विशाल योजना में जुटा है, जिसके परिणाम मिस्र की खुदाई के महत्त्व से कम नहीं हैं। यहाँ एक पूरे बौद्ध नगर का अनावरण किया गया है। यहाँ एक विस्तृत व सुदृढ दुर्ग पाया गया है, जिसमें अनेक स्तूप, भवन, मंदिर, सभागार आदि हैं। हजारों की संख्या में प्राचीन सिक्के, पांडुलिपियाँ, बुद्ध की मूर्तियाँ व आभूषण मिले हैं, जो तीसरी से सातवीं शताब्दी के निश्चित किए गए हैं। ६५० प्रबुद्ध मजदूर इसकी महीन खुदाई में जोते गए। इस अमूल्य निधि की सुरक्षा हेतु दुर्ग के चारों तरफ १०० चौंकियाँ नियुक्त की गई हैं, जिनमें १७०० सिपाही हथियार सहित पहरा देते हैं।

यह विषम सुरक्षा केवल प्राचीन इतिहास व सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा हेतु नहीं है वरन् इस धराशायी बौद्ध नगर के नीचे दबा है एक प्राकृतिक अमूल्य खजाना! यहाँ विश्व की सबसे समृद्ध ताँबे की खान दबी हुई है, जिसकी चौड़ाई ढाई मील है और जो डेढ़ मील पर बाबा वली पर्वत के अंदर तक समाई है, जिसे आँकना बिना खुदाई के संभव नहीं है। इसमें दबा हुआ ताँबे का भंडार है, जिसका वजन १,२५००००० टन (अनुमानित) आँका गया है। इसके बिकने से अफगानिस्तान विश्व का सबसे अमीर देश बन सकता है।

पर्याप्त प्रमाण यह घोषित करते हैं कि प्राचीन काल में यहाँ धातु का खनन होता था। संभवत: इसकी समृद्धि ने अरब के मुसलमानों को आकर्षित किया होगा। बाबावली पहाड़ से फिसलती रंग-बिरंगी कीचड़ इसी धातु शुद्धीकरण का प्रमाण है। 'मेस आयनक' का शाब्दिक अर्थ है, 'ताँबे का नन्हा सा कुआँ', परंतु वास्तव में यह इतना विशाल है कि चीन ने इसे खरीदने के लिए तीस अरब डॉलर का प्रस्ताव रखा। इसके अतिरिक्त उत्खनन के लिए आधुनिकतम वैज्ञानिक उपकरण, ४०० मेगावाट बिजली बनानेवाले एक विशाल बिजलीघर व पर्यावरण के संपूर्ण आधुनिकीकरण की भी योजना रखी। यातायात के लिए सड़कें, पुल, रेलगाड़ियाँ व हवाई अड्डे बनाने का जिम्मा उठाया, मगर अफगानिस्तान के विद्वानों ने इस योजना को कार्यान्वित करने पर रोक लगा दी।

विश्व के पुरातत्त्व शास्त्रियों का कहना है कि काम शुरू होने से पहले इस क्षेत्र की अमूल्य ऐतिहासिक धरोहर को सुरक्षित किया जाए।

धर्मांध क्रूर इसलामी शक्तियों के रहते विद्वानों को भय है कि यह नगर यदि चीन के हाथों नहीं तो लुटेरों के हाथ जरूर बरबाद हो जाएगा और यह अमूल्य खजाना विज्ञान व मानवता के हाथ नहीं आ पाएगा। अभी अनेक नमूने नष्ट हो गए हैं या जान-बूझकर नष्ट कर दिए गए हैं। अनेक चोरी से तस्करों के हाथ पड़ गए हैं। चारों तरफ अलकायदा और तालिबान के धर्मांधों ने उत्पात मचा रखा है। धरती में रूस की छोड़ी हुई लैंड माइंस बिछी हुई हैं, जिनका पता नहीं चलता और वे जब-तब फट जाती हैं। आठ-दस चीनी भूगर्भशास्त्री एवं धातु-वैज्ञानिक भूमि का निरीक्षण-परीक्षण करते समय २०१४ में तालिबान के हमलों की भेंट चढ़ गए थे। यहीं पर ओसामा बिन लादेन का भी पड़ाव था। शायद उसके शिष्य अभी भी सक्रिय हैं। इसके साथ ही यहाँ पानी और बिजली की भारी कमी है। इन हालातों में चीन ने अपनी कुछ शर्तों से मुँह मोड़ लिया, जिससे अफगान सरकार ने योजना पर आपत्ति उठाई। अत: फिलहाल चीन ने हाथ समेट लिये हैं। जो धातु के खनन का कार्य २०१२ में चालू हो जाना चाहिए था, वह अब २०१८ तक शायद संभव हो सके। इसलिए पुरातत्त्व विभाग को खुदाई के लिए अधिक मोहलत मिल गई।

पुरातत्त्व के क्षेत्र में फ्रांस और अमेरिका सबसे अधिक सहायक रहे हैं। अत: २००९ से लगाकर २०१४ तक फ्रांस के विद्वान् श्री फिलिप मार्कविस के निर्देशन में इस क्षेत्र का उत्खनन हुआ और अनेक अमूल्य ऐतिहासिक अवशेष प्राप्त हुए। उन्होंने स्थानीय विश्वविद्यालयों की सहायता से इन वस्तुओं की अलग-अलग व्याख्या पंजीकृत की और सारिणी बनाई, जिसे इलेक्ट्रॉनिक साधनों से भी सुरक्षित किया, ताकि तस्कर अपना करतब न दिखा सकें।

विडंबना यह है कि जो प्राचीन इतिहास इस उत्खनन से अनावृत हुआ है, वह इस प्रदेश की शांतिप्रिय संस्कृति का साक्षी है, जो कि आधुनिक काल की हिंसात्मक गतिविधियों से कतई उलटा है। यहाँ पहले आध्यात्मिकता का साम्राज्य था। करीब सात बहुखंडीय भवन भिक्षुओं के पाए गए हैं, जिनमें पूजा वेदियाँ, विशालकाय कमरे आदि हैं। ये भवन अर्द्धचंद्राकार, जो इस दुर्ग के चारों ओर फैले हुए हैं। इन पर ऊँची बुर्जियाँ बनी हैं, जिन पर चढ़कर दूर-दूर तक देखा जा सकता था। इन प्रासादों के मध्य करीब सौ स्तूप पाए गए हैं। ये स्तूप पक्के और विशाल भी हैं तथा छोटे-छोटे, उठा लेने योग्य भी।

प्रसिद्ध अफगानी पुरातत्त्ववेत्ता अब्दुल कादिरी तैमूरी के शब्दों में— यह तत्कालीन 'विश्व का केंद्र' था। गांधार के बौद्ध भिक्षुओं ने कला व संस्कृति की अपूर्व उन्नति की व उस काल की सभी सभ्यताओं की कलात्मकता के सम्मिश्रण से बुद्ध की प्रतिमाएँ बनाने का आविष्कार किया। विशेषकर यूनान और रोम की नकल में प्रतिमा बनाने की कला का जन्म यहीं पर हुआ। संभवत: बाकी हिंदू क्षेत्र में इष्टदेव को साकार रूप देने का रिवाज यहीं से शुरू हुआ। मध्य एशिया की भाषाओं में प्रतिमा को 'बुत्त' कहा जाता है। इन भाषाओं में 'द्ध' व्यंजन नहीं था। अत: यह बुद्ध को बुत्त बुलाते थे। 'बुत्तपरस्ती' संज्ञा का यही उद्गम है। कालांतर में जब इसलाम ने जिहाद उठाया और बुतों को तोड़ा तो वह इन्हीं बुद्धों को तोड़ते आगे बढ़े। मेस आयनक में जो बुद्ध की मूर्तियाँ मिली हैं, उनमें लाल, नीला, पीला व नारंगी रंग भरा गया था, जो अभी भी सुरक्षित है। यह प्रभाव मिस्र की कला से आया लगता है। इसके अतिरिक्त स्वर्ण व अन्य धातुओं के कीमती आभूषण पाए गए हैं, जिनका सौंदर्य आज के आभूषणों से कम नहीं है। भवनों की आंतरिक सज्जा चकित कर देनेवाले भित्ति चित्रों से पूर्ण है।

यहीं पर सिद्धार्थ की अलभ्य प्रतिमा मिली है, जो उनके बुद्धत्व प्राप्त करने से पूर्व की है, जब वह केवल एक राजकुमार थे। हजारों की संख्या में ताँबे के सिक्के मिले हैं, जो तीसरी से सातवीं शताब्दी तक के हैं। कई सिक्कों पर कनिष्क की छाप है। कइयों पर एक ओर कनिष्क और एक ओर बुद्ध या आर्दोक्ष की छाप है। इससे यह साबित होता है कि कनिष्क जोरोआस्तरियन धर्म का भी आदर करता था। इन सिक्कों का मान रोम से चीन तक था। कुषाण काल के इन सिक्कों में कुल मिलाकर २३ देवी-देवताओं की मूरत की छाप है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह काल तत्कालीन उत्तर भारत में सहिष्णुता और व्यापक दृष्टिकोण का था। मेस आयनक इस बात का साक्षी है कि इस प्रदेश के बौद्ध मतावलंबी उद्योगी व संपन्न थे। यहाँ दबी ताँबे की खान तब समृद्धि उलीचती थी और यह प्रदेश एक व्यस्त व्यापारिक केंद्र था।

इसी के उत्तर-पश्चिम में करीब १२५ मील की दूरी पर प्रसिद्ध बामियान प्रदेश है। बामियान नगर चीन और मिस्र के बीच रेशम पथ पर

स्थित है, जहाँ उस काल में अनेक देशों के व्यापारी डेरा डालते थे। उस काल तक बौद्ध धर्म चीन, मंचूरिया, मंगोलिया, उज्बेकिस्तान, समरकंद, सोगड़ियाना आदि देशों में अपनी जड़ें जमा चुका था। यहाँ छठी शताब्दी में पर्वत शिलाओं को काटकर बुद्ध की विशालकाय प्रतिमाएँ बनाई गई थीं। इस काल तक इसलाम धर्म का जन्म नहीं हुआ था। प्रचार भी सातवीं शताब्दी के बाद शुरू हुआ था। इन्हें २००१ में तालिबान द्वारा निर्ममता से बारूद लगाकर धराशायी कर दिया गया, धर्म के नाम पर।

'मेस आयनक' उद्योग का केंद्र होने के साथ-साथ धर्म और संस्कृति का भी 'समावेशन कूप' था। यहाँ से मिले अवशेष स्वयं इस बात की गवाही देते हैं कि अनेक धर्म यहाँ समानांतर पलते थे और यहाँ किसी युद्ध के प्रमाण नहीं मिले हैं। उस समय के सभी आस-पास के राज्यों से ऐसी सहभावना और मैत्री का एक भी उदाहरण नहीं मिलता। दरअसल न आगे, न पीछे के काल में। बामियान लुप्त हो गया, परंतु मेस आयनक अपनी खदानों के कारण दबा रहा और बच गया। वैज्ञानिकों का मानना है कि अपनी पराकाष्ठा के काल में इस प्रदेश में धातु के उत्खनन और परिष्करण के कारण इस प्रदेश की हरियाली को भीषण आघात पहुँचा और यहाँ सूखा पड़ गया। नगरवासी पलायन कर गए या सूखे से मर गए। आज की तारीख में यह प्रदेश बंजर, ऊबड़-खाबड़ एवं श्रीहीन है। अनुमान लगाया जाता है कि एक सेर तैयार माल—शुद्ध ताँबा—बनाने के लिए भट्ठी में एक मन (४० सेर) कच्चा कोयला डालना पड़ता था। बाबा वली पर्वत की ढलानों पर उगे हिमालयी जंगल, जो सदियों से खड़े थे, शनैः-शनैः कच्चा कोयला बनाने के लिए काट डाले गए। जंगलों को काटने से वर्षा का क्रम बदल जाता है। पर्यावरण प्रदूषित हो जाता है। इस प्रदेश की हरियाली को इतना नुकसान पहुँचा कि प्रदेश में अकाल पड़ गया।

धातु को आँच पर गलाकर शुद्ध करने के बाद उसे ठंडा करने के लिए मनो पानी की जरूरत पड़ती है। पानी यहाँ पर्वतीय जलधाराओं, कुओं अथवा बरसाती नदियों से प्राप्त होता था। इसके अतिरिक्त भूमिगत नदियाँ भी थीं। खुदाई में जो प्रमाण मिले हैं, वे बताते हैं कि भूमिगत नहरें, जिन्हें 'करेज' कहा जाता है, बनाई गई थीं। मगर जब वर्षा की कमी होने लगती है, तब पानी की सतह और नीचे चली जाती है। विशाल पेड़ों की जड़ें वर्षा के पानी को भूमि में संचित करती हैं। उनके कट जाने से यह प्राकृतिक क्रम बंद हो गया। अतः ये नदियाँ और करेज सूख गए। पानी की अंदरूनी सतह और भी दब गई। भयानक बात यह है कि यदि यहाँ फिर से उत्खनन का काम चला तो पानी की रही-सही संपदा भी खत्म हो जाएगी।

एक और समस्या पुरातत्त्ववेत्ताओं के समक्ष मुँह बाए खड़ी है। अभी तक खुदाई से निकले बेजोड़ नमूनों को सँभालने के लिए कोई संग्रहालय नहीं है। काबुल के राष्ट्रीय संग्रहालय में इतना स्थान नहीं बचा है कि सारा सामान सजाया जा सके। काबुल के संस्कृति अधिकारी इन कलाकृतियों को लेकर बहुत चिंतित हैं। फिलहाल इन्हें मेस आयनक के निकट ही अस्थायी गोदामों में रख दिया गया है। कई नमूनों का विश्लेषण व पंजीकरण भी अभी नहीं हुआ है।

पेट की खातिर गरीब मजदूर जल्दी से तालिबान की कुचालों के झाँसे में फँस जाते हैं। यदि शीघ्र ही उनकी रोजी-रोटी का समुचित प्रबंध नहीं हुआ तो वे कुचक्री शक्तियों के गुलाम बन जाएँगे। इससे 'मेस आयनक' की सुरक्षा को भारी खतरा है। अनादि काल से चीन को ताँबे की बेहद जरूरत रही है, अभी भी है। इसीलिए उसने इस खदान का सौदा किया है। यदि यहाँ काम चालू हो जाता है तो करीब साढ़े चार हजार नौकरियाँ स्थानीय जनता को मिलेंगी और आस-पास के रहनेवालों को अपने खेत-गाँव आदि छोड़ने पड़ेंगे, जिसके लिए वे कतई तैयार नहीं हैं। अतः जब तक उनको आजीविका के समुचित साधन उपलब्ध न हों, मेस आयनक का भविष्य अनिश्चित है। रूस द्वारा छोड़ी गई लैंड-माइंस से जख्मी एक व्यक्ति अपने बाल-बच्चों का पेट भरने के लिए एक टाँग पर बैसाखी की सहायता से चलकर रोज दो घंटे की यात्रा पूरी करता है, केवल खुदाई में मिले सामान को पानी से धोकर साफ करने के लिए। चिंता इस बात की है कि यहाँ काम करनेवाले मजदूर इस अमूल्य खजाने को अपने धर्म से नहीं जोड़ पाते। तालिबान के क्रूर अनुयायी उन्हें 'काफिर' कहकर लज्जित करते हैं और उनपर इलजाम लगते हैं कि तुम मुसलमान होकर बौद्ध धर्म का प्रचार कर रहे हो, इसलिए यह ऐतिहासिक धरोहर खतरे में है। सबसे बड़ा डर चोरी का है।

परंतु जो प्रबुद्ध हैं, वे पक्के खानदानी मुसलमान होते हुए भी अपने देश के इतिहास पर गर्व करते हैं और उसकी भव्यता का गुणगान करते हैं। ऐसे ही एक व्यक्ति हैं, काबुल के युवा विद्वान् सुल्तान मसूद मुरादी। अपनी डिग्री पूरी करते ही वे इस उत्खनन के काम में जी-जान से जुट गए। उनको गर्व है कि उनकी टीम में अनेक धर्मों के कार्यकर्ता हैं, जो हिल-मिलकर काम करते हैं और अफगानिस्तान की ५००० वर्ष पुरानी सभ्यता पर गर्व करते हैं। उनका हरसंभव प्रयास है कि अफगानिस्तान के युवा इस धरोहर से परिचित हों और इसका सम्मान करें। उनका खेदपूर्ण वक्तव्य है कि इसके बिना उनका देश विश्व में केवल आतंकवाद और अफीम के लिए बदनाम रहेगा। आनेवाली सदियाँ उनकी आबरू को रसातल में ले डूबेंगी। आजकल सुल्तान मसूद इन कलात्मक नमूनों का इंटरनेट पर पूरा ब्योरा सुरक्षित करने में संलग्न हैं। उनका स्वप्न है कि यहाँ एक भव्य संग्रहालय बने और यह नगर पुनः आबाद हो तथा विश्व के पर्यटक यहाँ आएँ। इसका वही रुतबा हो, जो मिस्र के पिरामिडों व कब्रों का है, जिन्हें देखने लाखों की संख्या में यात्री आते हैं। पर्यटन स्वयं में एक बहुत बड़े आय का साधन होता है। सुरक्षित व सुंदर आधुनिक पर्यटन स्थल करोड़ों की संपत्ति अर्जित करते हैं। मेक्सिको देश ने केवल पिछले ४० वर्षों में माया संस्कृति को देश की संपदा मानकर उसके सभी खँडहरों के आस-पास हॉलिडे नगर विकसित किए हैं, और उनसे अरबों डॉलर कमा रहा है।

35 The Avenue Cheam
Surrey SM2 7QA UK

कहानी

मोगरा महकता रहा

● रजनी मोरवाल

उसने खिड़की से बाहर झाँककर देखा, पीले ट्यूलिप की कई कतारें उग आई थीं। किंतु घुटनों तक उगी जंगली घास जाने क्यों ऐंठी खड़ी थी? भीगी ओस की नन्ही-नन्ही बूँदें हर नजारे पर बिखरी पड़ी थीं। लग रहा था, जैसे सूरज से कुछ रोशनी उधार लेकर व्यवहार में पारदर्शिता बरत रही हो। अपने आर-पार की निर्मलता दिखाने के बहाने ये बूँदें रातभर बदन नचा-नचाकर खूब इतराई होंगी। वह अपनी सोच पर मुसकरा उठी।

उसने अपना देखना यों ही जारी रखा। बीचोबीच जमीन का एक छोटा-सा चौकोर टुकड़ा 'वेल्वेटी' घास से अँटा पड़ा था, जिसके एक किनारे पर चाँदनी के झाड़नुमा पौधे अपनी जवानी में मदहोश थे, तो इधर कुछ गुड़हल मारे शर्म के लाल हुए जा रहे थे। ऐसे में मोगरा न जाने कहाँ छिपकर अपनी खुशबू से सबको अलमस्त कर रहा था। इस खुशबू को अपने भीतर समा लेने के लिए उसने एक लंबी साँस खींची, मगर नथुनों में लेवेंडर की खुशबूवाला रूम फ्रेशनर घुस आया और नाक सीधे जाकर शीशे के ग्रिलवाले दरवाजे से भिड़ गई। इन शीशमहलों में से प्राकृतिक सुंदरता दूर से देखी जा सकती है। महसूस करना हो तो सपने लौटकर उन्हीं बचपनवाले घरों के बगीचों में, अहातों में, दालानों में, छतों पर और भी न जाने कहाँ-कहाँ आते-जाते रहते हैं। वह निराश होने लगी, 'उफ, अब तो यह सब बहुत पीछे छूट गया!'

अंग्रेजों के जमानेवाले बड़े-बड़े बँगले, जिनके रोशनदानों में भूतों की आवाजाही के अनगिनत किस्सों ने उसे रात भर जगाए रखा था। आइस-पाइस खेलते हुए उन बड़े-बड़े साइड-रूम्स में मोहल्ले भर के बच्चे फुसफुसाते-चहकते कब लड़का-लड़की में तब्दील हो गए थे, उनमें से किसी को भी पता नहीं चला था। जवानी के गुलाबी-गुलाबी अहसासों वाले शुरुआती दिनों में ही एक-एक करके सबका खेल-कूद बंद होता गया। अचानक कैसे सब बड़े-बड़े लगने लगे थे। बाद में इसका राज विज्ञान की कक्षा में पता चला था।

उसे भी कोई चुपके से बता गया था उसके बड़े होने का राज, जब दसवीं कक्षा का रिजल्ट आया था। न जाने कौन उसके जागने से पहले ही मोगरे के गुच्छे में लिपटा एक अखबार उसके सिरहाने रख गया था, जिसे खोलकर देखा तो प्रथम श्रेणी के नंबरों में उसका रोल नंबर दूर से ही हरे रंग की स्याही से हाईलाइट हो रहा था।

उसने फूलों को झपटकर तकिए के लिहाफ में ठूँस दिया था।

सुपरिचित लेखिका एवं शिक्षिका। 'कुछ तो बाकी है' (कहानी-संग्रह); तीन काव्य-संग्रह एवं एक दोहा संग्रह प्रकाशित तथा गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल-२०१५ में हिंदी कक्षा-५ की पाठ्यपुस्तक का लेखन एवं संपादन, काव्य संग्रहों पर एम.फिल. एवं पी-एच.डी.। गुजरात साहित्य अकादमी पुरस्कार-२०१३।

अम्माँ से पूछने की हिम्मत ही नहीं हुई थी कि उसके जागने से पहले उस दिन घर में कौन-कौन आया था। वैसे भी अम्माँ तो हर सुबह ज्यादातर ठाकुरजी की पूजा में ही मग्न रहती थीं। फिर तो यह सिलसिला चल निकला था, जाने कौन नीम अँधेरे उसकी खिड़की के बाहर मोगरे के फूलों से लदे गुच्छे रख जाता था? सीमा को बताया था तो कहने लगी, 'इग्नोर कर यार, होगा कोई लफंगा।' मगर उसका मन यह मानने को कतई तैयार न था कि वह कोई लफंगा होगा, अगर ऐसा होता तो आते-जाते फब्तियाँ कसता, गाने गाता या रास्ता रोक लेता। वह तो बस मोगरे के फूल रख जाता था, वह भी बिना पहचान बताए।

अब इतने वर्षों बाद वह कनाडा से लौटी है। सीमा का ही प्लान था कि घर से दूर वे दोनों राजस्थान के इस हिल स्टेशन, माउंट-आबू में मिलेंगी और दोनों मिलकर कुछ दिनों सैर-सपाटे के साथ-साथ पुराने दिनों की यादों को सहलाएँगी-पुचकारेंगी। सीमा तो आज दोपहर तक ही होटल पहुँच पाएगी, मगर वह कल रात की बस से होटल पहुँच गई थी, क्योंकि अगली सुबह वह देर तक सोते रहने व आराम के मूड में थी।

उस रात वह जल्दी ही सोने चल दी, इतनी लंबी यात्रा की थकान के बाद पलकें मुँदने लगी थीं, लेकिन नींद के साथ-साथ ही धुँधला सा एक सपना भी उन नम गलियारों में प्रविष्ट कर गया। उसके पति अकेले बैठे घर के पिछवाड़े में लगे मोगरे के फूलों को निहार रहे हैं, अभी उठेंगे और उन पर जमी बर्फ हटाकर प्लास्टिक तान देंगे, उन्हें पता है, उसे मोगरे के फूलों से कितना लगाव है। कनाडा में मोगरा ढूँढ़कर उगाना मुश्किल काम था, फिर भी दोनों मिलकर एक रोज मोगरे का पौधा खोज लाए थे। अपेक्षाकृत छोटे फूल थे उसके, फिर भी उसकी भीनी-भीनी खुशबू बीते दिनों की यादें तो गाहे-बगाहे तरबतर कर ही जाती थीं। अब एक दूसरा दृश्य चल रहा था उसकी पलकों में, पति के हाथों

में कॉफी का मग है, जो कि उन्होंने स्वयं बनाई थी। एक सिप लेते ही वह उसकी तरफ देखते हैं और वह हँस पड़ती है, जरूर कॉफी कसैली बनी होगी। उनसे कॉफी कभी ठीक नहीं बनती। वह कहती है, 'रुको, मैं दूसरी बना लाती हूँ।' नींद में ही उसने उठने की कोशिश की, लेकिन रजाई में कसमसाते बदन ने आभास दिलाया कि वह तो इस वक्त पति से कोसों दूर माउंट-आबू में है।

वह पुन: करवट बदलकर सो गई। सपना था कि जहाँ से छूटा था, वहीं बार-बार जाकर फिर उसी टूटी हुई कड़ी से गुँथा जा रहा था। इस बार उसने देखा कि तीनों बच्चे सुबह स्कूल के लिए तैयार हो रहे हैं। घर में भागा-दौड़ी मची हुई है। उसके पति किसी का टिफिन, किसी का मोजा तो किसी का स्कूल बैग सँभालते हुए कार की चाभी ढूँढ़ रहे हैं। ओह! उसके नहीं रहने से सबकुछ अस्त-व्यस्त हो जाता है, वह कसमसाकर बोली, 'रुको, मैं भी साथ ही आ रही हूँ, लौटते हुए हम सब्जी वगैरह लेते आएँगे…' इस बार उसने फिर उठने की कोशिश की और वह सच में ही उठकर बैठ गई। परदा सरकाकर देखा, बाहर हल्का-हल्का उजाला फूटने लगा था। समय देखा तो सुबह के पाँच बज रहे थे। वह उठी और एक लंबी सैर के लिए नक्की लेक की तरफ चल दी। रास्ते भर सोचती रही कि औरतें जहाँ होती हैं, वहाँ नहीं होतीं और जहाँ नहीं होतीं, वहाँ उस वक्त वे दरअसल होती हैं अपनी कल्पनाओं में। जिद करके पहली बार वह इस तरह इंडिया चली आई थी, पति से कुछ यों कहकर कि 'आई नीड सम स्पेस प्लीज, मुझे इस बार अकेले ही हो आने दो।' दिल-ओ-जान से प्यार करनेवाला पति मिला है उसे, और बच्चे तो जैसे जान छिड़कते हैं उस पर। अचानक उसे अपने घर-परिवार की याद सताने लगी, दिन चढ़ते ही फोन करेगी, इस वक्त तो कनाडा में रात गहरा रही होगी।

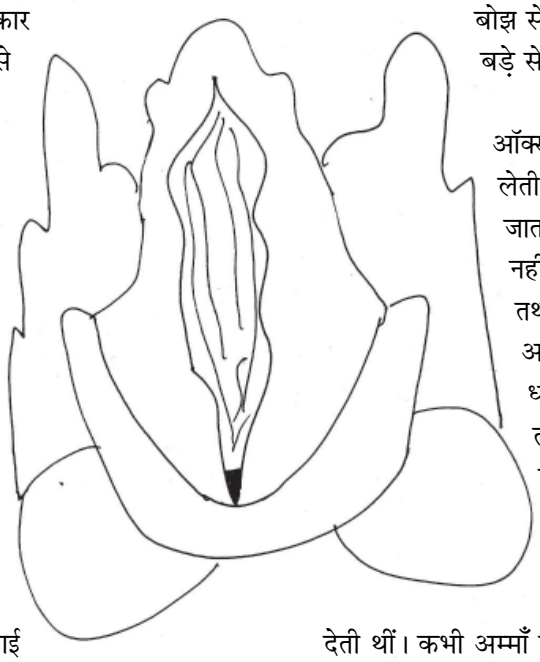

वापसी में रिसेप्शन पर उसने ग्रीन-टी ऑर्डर की और झटपट रूम की ओर बढ़ गई। सीमा के आने से पहले ही वह नहा-धोकर तैयार हो जाना चाहती थी, फिर ढेरों बातें चलेंगी, बचपन से लेकर उनके मिलने-बिछुड़ने और फिर पुन: आज इस तरह मिलने तक के बीच क्या छूटा और क्या साथ रहा, इसका सारा हिसाब-किताब चलेगा। उसने कनाडा से अकेले ही आने की ट्रिप इसीलिए तो बनाई थी। ग्रीन-कार्ड होल्डर बनने से पहले कितना कुछ छोड़ गई थी यहाँ, इस बार सोचा, जरा हिसाब ही लगा ले।

कब से घर-परिवार वाले भी बुला रहे थे, पिताजी तो रहे नहीं और अम्माँ की भी तबीयत कुछ ठीक नहीं रहती। अम्माँ इस बरस सत्तर की हुई जा रही हैं, मगर उनकी आवाज में अब भी वही दमखम रचा-बसा है। उस जमाने में उनकी अनुशासन से भरी रोबदार आवाज को सुनकर उसके साथ-साथ उसकी सहेलियाँ भी थर्राती थीं।

हर सुबह उसको उठाने के लिए अम्माँ की आवाज घर भर में गूँजने लगती थी। उसका हड़बड़ाकर पलंग से कूदकर भागना, प्रतिदिन लगता था कि आज फिर कॉलेज के लिए देर होकर रहेगी। झटपट चाय सुड़ककर एक नोटबुक उठाना और शमीजनुमा प्लास्टिक की थैली में उसे डालकर दौड़ जाना, उन दिनों यही तो फैशन था। एक कॉपी जो कि न रफ थी, न फेयर, बस उसका हाथ में होना भर जरूरी था। शुरू-शुरू में सब लड़कियाँ कितना हँसती थीं इन काली-सफेद शमीजों की सी थैलियों को देखकर, तब क्या किसी ने सोचा था कि इन्हीं शमीजों के बोझ से एक दिन यह धरती भर जाएगी और बड़े-बड़े सेमीनार लगेंगे इसे बचाने के वास्ते।

अम्माँ कहती थीं कि जब कभी फेफड़ों में ऑक्सीजन भरने के लिए धरती माँ जोर से साँस लेती है तो तभी सुनते हैं कि कहीं भूकंप आ जाता है। वह मुसकरा दी। अम्माँ तो पढ़ी-लिखी नहीं थीं। उनकी बात में सत्य नहीं था, किंतु तथ्य तो था। उनके अनुभवी ज्ञान का वैज्ञानिक आधार तो पुख्ता था। कितना दम घुटता होगा धरती के बोझ से? उसे पता है, दम घुटता है तो यही हाल होता है। उसका भी कितना जी घबराता था, जब अम्माँ ढाई मीटर के दुपट्टे को परत-दर-परत चौड़ाई से दस इंच का करवाती थीं, फिर उसे काँधे और छाती से पिनों की सहायता से तीन तरफ से कसवा देती थीं। कभी अम्माँ से पूछने की उसकी हिम्मत ही नहीं हुई थी कि भला उसकी पतली-दुबली देह को यों कसने की क्या दरकार? कितना भी पिन लगवा लेती थी अम्माँ, मगर पुरुषों की नजर यहाँ-वहाँ से दुपट्टे के अंदर ताक-झाँक कर ही लेती थी, क्या सचमुच तुम वाकिफ नहीं थीं अम्माँ? कभी-कभी तो तुम भी चिढ़कर कहा करती थीं कि पिनें तो कमबख्त इन मरदूदों की आँखों में उतार देनी चाहिए। 'वो' भी तो उसने कितनी देर बाद पहनना शुरू किया था, जब दूर की एक टीचर चाची घर आई थीं। उन्होंने अम्माँ को उलाहना देते हुए लताड़ा था, 'अरी, इसे वो क्यों नहीं पहनाती? शेप बिगाड़ेगी क्या छोरी की?' अगले दिन पूरा आधा घंटा लगा था उसे इस 'वो' को अपनी देह पर टाँगने की जुगत में। इस 'वो' पर शमीज और उस पर कुरता, उफ्फ…कितनी गरमी लगती थी। फेफड़ों को साँस लेने में एक्स्ट्रा मेहनत करनी पड़ती थी।

अचानक उसकी साँसें तेज होने लगीं, उसने उठकर ए.सी. तेज कर दिया, जैसे अब तक उसका दम घुटा जा रहा हो। वह उठकर बालकनी की ओर चल दी। सामने की गली में स्कूटी पर गर्रररर से गुजरती बिंदास लड़कियों को देखकर उसे आभास हो आया कि अब समय कितना बदल गया है। लगता है, लड़कियों ने अब जैसे कोई पंख

ओढ़ लिए हों, एकदम हल्की फुल्की-सी हो गई हैं। वक्त के साथ-साथ अब यहाँ की लड़कियाँ भी समाज की बदमिजाज, आवारा और घूरकर देखनेवाली नजरों से इम्यून हो गई हैं। उसने राहत की एक लंबी साँस छोड़ी। जींस-टॉप में हँसती-चहकती लड़कियाँ कितनी खुश, बेपरवाह और बेफिक्र लग रही थीं। यहाँ भी अब तो बहुत बदलाव आ गया है, उसे अच्छा लगा देखकर···अम्माँ तो उसे हर महीने कपड़ा रोल करके थमा देती थीं। कभी-कभी कॉलेज के लिए निकलते समय सीमा जब साइकिल उसके हवाले कर देती थी तो एक अनकहा संवाद आँखों-ही-आँखों में उनके मध्य चल पड़ता था कि अब से पूरे पाँच दिन उसे ड्राइविंग सीट सँभालनी होगी। कभी-कभार जब दोनों के ही एक साथ 'आंटीजी' आ जाती थी तो आते-जाते वक्त बारी-बारी से साइकिल चलाना उनके करार में न जाने कब शामिल हो गया था। शायद जनमते ही लड़कियों को सुख-दुःख साझा करने के कुछ नियम माँ की कोख से वरदान में मिले होते हैं। वह बुदबुदा उठी···'आंटीजी'···हाँ यही तो कोड-वर्ड बना रखा था उसकी सहेलियों ने। खुलकर बोलने की भी आजादी नहीं थीं उन्हें तो। अब तो पूरा परिवार बैठकर एक साथ विज्ञापन देखता है। न बच्चे वहाँ से उठकर जाते हैं और न माँ-बाप ही नजरें चुराकर चैनल बदलते हैं। सबकुछ सामान्य और रुटीन में शामिल होकर रह गया है।

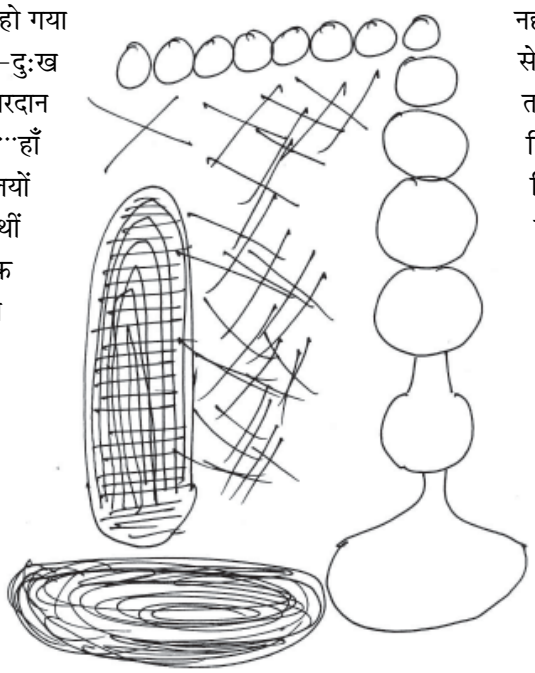

उसकी स्मृतियाँ सिहर उठीं। बेचारी सीमा को तो असहनीय दर्द उठता था महीने के उन खास दिनों में। ह्विस्की की खाली बोतल ले आई थी कहीं से, उसी में पानी भरकर बदन में जहाँ-तहाँ सिंकाई करती रहती थी। उस जमाने में कहाँ थीं ये सब हॉट वाटर बोटल आदि और अपनी क्या कहे? उसका तो पूरा पेपर ही इस 'आंटीजी' के आगमन से बिगड़ गया था। पूरा-का-पूरा बाथरूम लाल हो उठता था, जैसे कोई सुरखाब अपने पंख कुतरकर यहाँ-वहाँ छितरा जाता था, फिर पापा और भाई से छिपाकर भावी मातृत्व की वृष्टि करती उस बीमा पॉलिसी को सुखाओ भी। कहीं सीलन रह जाए तो मारे खुजली के छी-छी···, कहीं से लीक न कर जाए, इस डर से सारे-सारे दिन सहेलियों से पूछते रहना पड़ता था, 'ए देख न, पीछे कुछ लगा तो नहीं?' ऐसे में पढ़ाई क्या खाक होती!

सीमा तो रट्टा मास्टर थी, सभी विषय घोंट-घोंटकर पी जाती थी। एक वही तो थी, जो जरूरत पड़ने पर अपने सारे नोट्स उसे दे दिया करती थी। अम्माँ की नजर में उसकी सभी सहेलियाँ बड़ी 'चत्तर' थीं और उनकी बेटी निरी भोंदू। उनकी यह सोच अभी तक बदली होगी कि नहीं? इस बार वह जरूर पूछकर रहेगी उनसे। एक तरह से तो सच ही कहती थीं अम्माँ, तभी तो उसकी सभी सहेलियाँ कितने आराम से अपने लव-लेटरों का आदान-प्रदान करती रहती थीं और पकड़ी भी नहीं जाती थीं।

उसे याद है, जब पहला लव-लेटर उसे मिला था, उसकी तो जान ही सूख गई थी। झपटकर उसने मारे डर के बिना पढ़े ही बैग में डाल लिया था। महीने भर बाद जब अम्माँ ने घर भर में कोहराम मचाया, तब जाकर अचानक उसे याद आया था कि अनाज से भरी टंकी में से पके सीताफल ढूँढ़ते वक्त वो पुरजा वहीं रह गया था और उसकी बदकिस्मती से वह पुरजा अनाज का पीपा भरती अम्माँ की सुपुर्दगी में था। फिर तो वह उस पुरजे के बाबत में पढ़ाई खत्म होने तक, गाहे-बगाहे शक के दायरे में आती ही रही।

सीमा के लाख पूछने के बावजूद वह पूरा वाकया सीमा को समझा नहीं पाई थी, सिवाय इसके कि उसे तो लव-लेटर से उठती मोगरे की खुशबू के सिवा एक अक्षर तक याद नहीं। उसने तो हड़बड़ाहट में वह पत्र बिना पढ़े ही तुरंत फाड़कर फेंक दिया था। अगले दिन फ्री-पीरियड में सहेलियों ने उसकी अच्छी-खासी क्लास ले डाली थी। कैसे-कैसे खुफिया कोने होते हैं इस देह में, कागजों की पूरी-की-पूरी गड्डी तक छिपा जाने के। हे भगवान्! इतने अजब-गजब तरीके सुनकर उसके तो ज्ञानचक्षु ही खुल गए थे, मगर अफसोस कि फिर कभी कोई लव-लेटर उसको नसीब नहीं हुआ था। कुछ दिनों बाद ही पिताजी का ट्रांसफर राजस्थान हो गया था, वहाँ जाकर रेत का सूखापन कुछ हद तक घर-परिवार में रिश्तों की नमी को भी सोखता गया। सबकुछ जैसे एक-एक कर बिखरता रहा, बिछुड़ता रहा, धुँधलाता रहा।

अचानक पिताजी क्या गए, अम्माँ के साथ-साथ इस नए घर के खिड़की, दरवाजे, छत और दीवारें सब जैसे सुहाग की दुहाई में सिसकते हुए से प्रतीत होते थे। उसे तो यहाँ की बसों में कॉलेज का फाइनल ईयर जिंदगी का फाइनल ईयर सा लगने लगा था। उसने सीमा को पत्र लिखा था कि शहरों में दोस्ती बड़ी उथली होती है, 'हेलो-हाइ' की बातें 'हेलो' के सिरे से शुरू होकर दूसरे सिरे पर अटके बाय पर खत्म हो जाती है, इस औपचारिक मित्रता के बीच में याद रखने के लायक कहीं कोई अपनापा नहीं पनपता, न यादें, न वायदे, न शिकवा, न शिकायतें। कितना कुछ बदल जाता है स्थान या जगह के बदलने से, यहाँ न ट्यूलिप है, न झमाझम बारिश और न उसकी सखी सीमा। हाँ, उन दिनों कभी-कभी उसे बेचैन करने हवा पर सवार हो मोगरे की खुशबू जरूर आ जाती थी, उसे बेकरार करने। घर के आस-पास तो कहीं कोई पौधा नहीं दिखता था, फिर ऐसे में उस खुशबू का स्रोत क्या था? उसे आज तक समझ नहीं आया था।

मानव जीवन का सत्य यही है कि भूत और भविष्य सदा से अतीत के आगे बिसराया जाता रहा है और यही उसके तथा सीमा के साथ भी हुआ था। बीस बरसों की गृहस्थी और पारिवारिक जिम्मेदारियों के बीच उनकी दोस्ती की आँच को वक्त की आँधी कभी मंद करती रही तो कभी सुलगाती रही। बरसों के बाद आज उसका मिलना अपनी प्यारी सखी सीमा से होनेवाला है। उन दिनों सीमा की साइकिल की घंटी सुनकर 'जाती हूँ अम्माँ' कहकर झट से कॉलेज के लिए दौड़ पड़ना उसके रुटीन में शामिल था, ठीक वैसे ही जैसे आज वह सीमा के एक बुलावे पर घर भर से 'आती हूँ कुछ दिनों में' कहकर इंडिया चली आई है। अब फिलहाल तो वह सीमा से मिलना चाहती थी। अपने जीवन से अपने लिए कुछ समय चुरा लेना चाहती थी। सीमा के इंतजार में उस रोज सुबह से ही वह यादों के गलियारे से होती हुई 'डाउन मेमोरी लेन' की तर्ज पर लौट-लौटकर वहीं जा रही थी, जहाँ से जीवन की शुरुआत हुई थी। बचपन के सुहाने दिन जीवन का सबसे सुनहरा काल होता है, जिसे हर व्यक्ति ताउम्र सँजोकर रखता है, बाकी तीन-चौथाई जीवन तो रिश्तों के लेन-देन में सुख-दुःख पाते और निभाते ही रीत जाता है, खर्च हो जाता है या बस बीत जाता है।

उसने घड़ी देखी। बस अब किसी भी क्षण सीमा आती होगी, उसने मन में दोहराया कि दोनों पहले लंच करेंगी और फिर आराम से गप्पें मारेंगी। उसे पता है कि इतने लंबे अंतराल के बाद मिलने पर भी सीमा पूछेगी जरूर कि वह कौन था? मगर सीमा क्या वह कभी जान पाएगी कि उस खुशनुमा दिन में उसने अपना पहला लव-लेटर कई-कई बार पढ़ा था, मन के किसी कोने में पुलकती भावनाओं को महसूस भी किया था। अनजाने-अनदेखे उस प्रेम की पहली-पहल लरजती कलियों की चटकन को अपने भीतर तरंगित भी होने दिया था। तन कितना शृंगारी-शृंगारी हो उठा था उन पलों में। मन ने हजारों-हजार बार अपने ऊपर तैनात उन सभी वक्ती हदों को पार कर जाना चाहा था। उस ओर की महकती खुशबुओं को अपने दामन में समेट लेना चाहा था। लेकिन हकीकत तो यह थी कि उसने अपनी खिड़की पर संस्कारों का झीना सा परदा लगा लिया था, जिसके पार से मोगरा था कि बस उम्र-दर-उम्र महकता ही रहा। न जाने कैसे उस दिन लिफाफे का कवर अम्माँ के हाथ लग गया था बस?

उसने गुनगुनाते हुए अपने आप को ड्रेसिंग-टेबल के आईने में निहारा, फिर होंठों पर सुर्ख रंग की लिपस्टिक दोबारा ग्लॉसी की। काश! अम्माँ जान पातीं कि उनकी बेटी भी 'चत्तर' थी। वह मुसकराती हुई दरवाजा खोलने चल दी, उधर सीमा थी कि घंटी पर घंटी बजाए जा रही थी।

'बैंक हाउस'
स्टेट बैंक ऑफिसर्स कॉलोनी
खातीपुरा रोड, हसनपुरा,
जयपुर-३०२००६
दूरभाष : ०९८२४१६०६१२

सुधी पाठकों से निवेदन

- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।
- सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
- सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।
- चैक अथवा बैंक-ड्राफ्ट साहित्य अमृत के नाम से भेजे जा सकते हैं।
- ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. १११०७३४३९३ अथवा CBIN ०२८०२९७ में साहित्य अमृत के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।
- पत्रिका न मिलने पर १५ से २० तारीख तक सूचित कर दें, ताकि वह अंक नए अंक के साथ भेजा जा सके।
- आपको अगर साहित्य अमृत का अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।
- सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया कार्यालय दिवस में २ से ५ बजे तक फोन नं. ०११-२३२५७५५५, २३२७६३१६ अथवा sahityaamrit@gmail.com पर इ-मेल करें।

व्यंग्य

जन्मदिन का अर्थशास्त्र

● बजरंग लाल गुप्ता

मैं इस बार पहली मार्च को अपनी तनख्वाह ले जैसे ही घर की ओर चला तो मन रास्ते में घर-खर्च के आइटमों की बार-बार उल्टी-सीधी गिनती करने में उलझ गया। इसी उधेड़बुन में मैं घर पहुँच, अपने कमरे का दरवाजा खोल, बूट उतार और कोट हैंगर में टाँगकर अपनी कुरसी पर सुस्ताने बैठ गया। इसी दौरान कुछ ही मिनटों में मेरे पैरों की आहट या शायद पहले से ही मेरे आने का इंतजार करती मेरी पत्नी ट्रे में चाय के दो प्याले लिये कमरे में दाखिल हुई और बोली, ''क्या बात है, आज कुछ थके-थके से मालूम हो रहे हो? लीजिए, चाय पी लीजिए, जिससे कि थकान दूर होकर ताजगी आए।''

मैंने श्रीमतीजी की इस अप्रत्याशित भक्ति पर हैरान हो उनकी तरफ देखा और ट्रे में से चाय का प्याला उठा लिया। मेरे चाय के पहला घूँट भरने के साथ ही श्रीमतीजी बड़े प्यार से बोलीं, ''आपको याद है न जी, इसी सात मार्च को अपने बिट्टू का जन्मदिन आनेवाला है।''

मैंने धीरे से कहा, ''तो फिर?'' वे तपाक से बोली, ''फिर क्या? इस बार बिट्टू का जन्मदिन मनाना है और वह भी पूरी धूमधाम से। आखिर हमको भी तो लोग अपने बच्चों के जन्मदिन-समारोहों में बुलाते हैं। इन पिछले तीन महीनों में ही हम कितने ही ऐसे फंक्शनों में जा चुके हैं। अभी पिछले ही सप्ताह जब हम सब मेरी सहेली के बच्चे के जन्मदिन पर उसके घर गए थे तो चलते वक्त उसने मुझसे पूछ ही लिया था—'दीदी, तुम कब बुला रही हो?' और मैं शर्म के मारे मुसकराकर चली आई थी।''

इसी समय शायद पहले से सोची-समझी रणनीति के अनुसार मेरा पाँच साल का बेटा बिट्टू उछलता-कूदता आकर मेरी गोद में बैठ गया और कहने लगा, ''पापा, इस बार मेरा जन्मदिन जरूर मनाना है। देखो न, नीटू ने अपने जन्मदिन की मिठाई हमारी क्लास के सब बच्चों को खिलाई थी और कह रहा था कि उसको उसके जन्मदिन पर ढेर सारे खिलौने और बहुत सारे कपड़े मिले थे। पापा, इस बार मैं भी अपने जन्मदिन पर अपनी क्लास के बच्चों को मिठाई खिलाऊँगा और मुझे भी ढेर सारे खिलौने और नए-नए रंग-बिरंगे कपड़े मिलेंगे।'' और फिर दोनों हाथों से मेरा कंधा हिला अपने बालहठ में यह पूछने लगा, ''पापा, बोलो मनाओगे न मेरा जन्मदिन, जरूर मनाओगे न, वादा करो।''

मैं इस आकस्मिक आक्रमण से हड़बड़ाकर युद्ध के मैदान में पकड़े जानेवाले निहत्थे योद्धा की तरह जान बचाने के लिए अपनी पत्नी की तरफ मुखातिब हो बोला, ''तुम तो सब समझती हो, इस तनख्वाह में तो घर-खर्च ही पूरा नहीं पड़ता। बच्चों की फीस भरनी है, उनकी स्कूल की

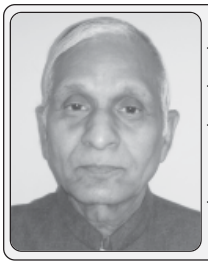

सुप्रसिद्ध लेखक-चिंतक। महर्षि दयानंद यूनिवर्सिटी, अजमेर के बोर्ड ऑफ स्टडीज के सदस्य; पी.आर.आई., चंडीगढ़ के पूर्व-निदेशक; आई.सी.एस.एस. आर. सेंट्रल कंज्मूमर प्रोटेक्शन काउंसिल तथा केंद्रीय हिंदी समिति के पूर्व सदस्य।

नई ड्रैस बनवानी है और फिर बहन की दो महीने बाद होनेवाली शादी के लिए भी तो आखिर कुछ थोड़ा-बहुत सामान खरीदना है। ऐसे में बच्चे के जन्मदिन-समारोह पर होनेवाले खर्च को आखिर हम कहाँ से पूरा करेंगे। यह अपने जैसे लोगों के बस की बात नहीं। अब तुम्हीं बिट्टू को समझाओ और यदि ज्यादा ही हठ करता है तो इसे एक मिठाई का डिब्बा और एक जोड़ी कपड़े ला देंगे इसके जन्मदिन पर।''

मेरे इतना कहते ही श्रीमतीजी जोर से खिलखिलाकर हँसी और बोली, ''आप इकोनॉमिक्स के प्रोफेसर भले ही होंगे, किंतु दुनियादारी की इकोनॉमिक्स आपको बिल्कुल नहीं आती। आपने नेशनल इकोनॉमी के दो-चार गुर भले ही याद कर लिये हों, किंतु हाउसहोल्ड इकोनॉमी का तो आपको क ख ग भी नहीं आता। जन्मदिन-समारोहों पर किया जानेवाला खर्चा खर्च नहीं होता बल्कि वह तो सबसे कम समय में और सबसे ज्यादा रिटर्न देनेवाला लाभदायक इनवेस्टमेंट होता है। यह तो वह नुस्खा है, जिसका प्रयोग कोई भी चतुर गृहस्थी अपने परिवार के बजट के डेफिसिट को पूरा करने के लिए कर सकती है।'' श्रीमतीजी इस प्रकार धड़ाधड़ बोले जा रही थी और मैं कॉलेज में नए-नए दाखिला लेनेवाले भोले-भाले विद्यार्थी की तरह अपनी समझ को कोसता हुआ अवाक् हो उनका धाराप्रवाह लेक्चर सुने जा रहा था। मैं कुछ समझ नहीं पा रहा था और रह-रहकर मेरे मन में महँगाई के बोझ से सिकुड़ती जा रही तनख्वाह और उस पर पड़नेवाले इस अतिरिक्त खर्च के बोझ का भय चक्कर काट रहा था। पर मैं क्या करता? बेबस था, आखिर मैंने इस दरख्वास्त के साथ आत्मसमर्पण कर दिया कि अगर तुम सबकी ऐसी ही इच्छा है तो ठीक है, पर हमें अपनी औकात और जेब के मुताबिक ही काम करना है और कम खर्च में सीधा-सादा समारोह ही करना है। बिट्टू तो खुशी से नाच उठा और श्रीमतीजी अपनी विजय पर मंद-मंद मुसकराते हुए बोलीं, ''तो फिर ठीक है, अब मैं खाना बना लेती हूँ और रात को खाना खाने के बाद हम प्रोग्राम की डिटेल्स तय कर लेंगे।'' यह कहकर श्रीमतीजी तो रसोई में खाना बनाने चली गईं और मैं हारे-थके सैनिक की तरह बिस्तर पर लेट गया और न जाने कब आँख लग गई।

श्रीमतीजी ने जब खाना खाने के लिए जगाया और मैंने घड़ी पर निगाह डाली तो ध्यान आया कि पूरा एक घंटा बीत गया है। मैं उठा और हाथ-मुँह धोकर परिवार के सब लोगों के साथ खाना खाने मेज पर बैठ गया। खाना खाने के बाद मैं, मेरी पत्नी और बारह वर्षीय बड़ी बेटी कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने बैठे। थोड़ी देर में बिट्टू भी बड़े ध्यान से हमारी बातें सुनने हमारे पास आ बैठा। छोटी-मोटी बातों के बाद बात जन्मदिन मनाने के तरीके पर आकर अटक गई। मेरा आग्रह था कि कार्यक्रम यज्ञ-हवन व दीप प्रज्वलन से शुरू किया जाए और वे सब केक काटने और मोमबत्ती बुझाने की पश्चिमी पद्धति पर जोर दे रहे थे, मैं समारोह को सीधा-सादा और कम खर्च में निपटा लेना चाहता था, किंतु उनकी मंशा तड़क-भड़क और शान-शौकत वाला कार्यक्रम करने की थी। मुझे अपनी बात पर अड़ा देख श्रीमतीजी झुँझलाकर बोलीं, ''पता नहीं, आपको क्यों नहीं यह समझ में आता कि आजकल के जमाने में ऐसे प्रोग्राम से भी लोगों का स्टैंडर्ड मापा और जाना जाता है। हम जिस स्टैंडर्ड के लोगों को इस प्रोग्राम में बुलाना चाहते हैं, हमें प्रोग्राम भी उसी स्टैंडर्ड का करना होगा, तभी तो हम ऊँचे स्टैंडर्ड के लोगों के बीच घुल-मिल सकेंगे और शान से उठ-बैठ सकेंगे। फिर आप यह क्यों भूल जाते हैं कि बर्थ-डे गिफ्ट भी प्रोग्राम के स्टैंडर्ड के मुताबिक ही मिला करते हैं। प्रोग्राम की शान-शौकत और तड़क-भड़क बढ़ने के साथ-साथ गिफ्ट का साइज भी बढ़ता जाता है।''

आखिर हममें इस बात पर समझौता हुआ कि शुरू-शुरू में यज्ञ-हवन निपटा लिया जाए, किंतु बाद में कार्यक्रम का मुख्य हिस्सा केक काटने और मोमबत्ती बुझाने से ही शुरू हो। कार्यक्रम की बाकी रचना के बारे में श्रीमतीजी को पूर्ण अधिकार दे दिए गए। बस फिर क्या था, अगले दिन सवेरे उठकर श्रीमती ने टैंट, साज-सज्जा, खाना, वीडियो फिल्म आदि सब चीजों के ऑर्डर अपने मन के मुताबिक दे डाले और निमंत्रण-पत्र भी छपने दे दिए। निमंत्रित किए जानेवालों की लंबी-चौड़ी सूची बनाई गई थी। सभी नाते-रिश्तेदार, दोस्त-मित्र, मिलने-जुलनेवाले, श्रीमतीजी की नई पुरानी सखी-सहेलियाँ, बच्चों के दोस्त, सहपाठी सबको शामिल किया गया था। सूची बनाते समय श्रीमतीजी ने एक बात का खास ध्यान रखा था कि टेलीफोन डायरेक्टरी में से कार व कोठीवाले नामों को छाँटकर ऐसे सभी को सूची में जरूर शामिल कर लिया था, चाहे इनमें से कुछ से हमारा कभी-कभार दूर से दुआ-सलाम का ही रिश्ता हो।

अगले दिन जैसे ही निमंत्रण-पत्र छपकर आए, श्रीमतीजी मुझसे बोलीं, ''देखिए, बाकी निमंत्रण पत्र तो हम सर्वेंट के हाथ भिजवा देंगे। किंतु कुछ लोगों को तो हमें पर्सनली जाकर ही इनवाइट करना होगा।'' और यह कुछ लोगों की सूची उन्होंने अपने ही आधार पर बनाई थी। मैंने इस चक्कर से बचने के इरादे से बहाना बनाते हुए कहा, ''तुम और मंजू हो आना। मेरा इस बार कॉलेज कोर्स बाकी रह गया है और परीक्षाएँ नजदीक हैं। अत: लेक्चर तैयार करना है।'' पर श्रीमतीजी कब माननेवाली थीं, बोलीं, ''नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। कुछ जगह तो आपको चलना ही होगा। मैंने टैक्सीवाले को कहला भेजा है, आधे घंटे में टैक्सी आती होगी, आप तब तक तैयार हो लें।''

थोड़ी देर में टैक्सी आ गई और हम टैक्सी में बैठ निमंत्रण-पत्रों का बंडल साथ ले चल दिए। नगर के एक बहुत बड़े उद्योगपति जैन साहब की कोठी आते ही श्रीमतीजी ने टैक्सीवाले को रुकने का इशारा किया। हमने टैक्सी से उतरकर जैन साहब की कोठी के बाहर लगी कॉल बैल बजाई। अंदर से मुसकराती हुई श्रीमती जैन निकलीं और हमको अंदर लिवा ले गईं। निमंत्रण दिया और 'जरूर आने का आग्रह किया'। चाय की चुस्की लेते हुए बातों ही बातों में श्रीमती जैन ने पूछ लिया, ''क्या बात है भाभीजी, आपने हमें बिट्टू के पिछले जन्मदिन-समारोहों के समय याद नहीं किया या पाँच साल बाद पहली बार ही जन्मदिन मना रहे हो?'' प्रश्न सुनकर मैं मन-ही-मन खीझ रहा था अपनी पत्नी की हठधर्मी पर, और कह रहा था, 'अब नानी याद आएगी, देखें क्या जवाब देती हैं?' पर मेरी पत्नी ने भी कोई कच्ची गोलियाँ नहीं खेली थीं। वह माथे पर जरा भी सलवट लाए बिना तुरंत मुसकराकर बोली, ''भाभीजी, भला कहीं ऐसा हो सकता था कि बिट्टू का जन्मदिन मनाते और आपको न बुलाते। दरअसल, बात यह थी कि बिट्टू के जन्म से ही मैंने 'संतोषी माता' की यह मनौती मानी थी कि इसके पाँच साल होने पर ही इसका जन्मदिन मनाएँगे, उससे पहले नहीं।''

मैं हैरान था श्रीमतीजी की इस हाजिरजवाबी और तर्कशास्त्र के ज्ञान पर। इस प्रकार हम श्रीमती जैन से विदा ले आगे चले और पूरे तीन घंटे तक नगर के कई बड़े-बड़े व्यापारियों, उद्योगपतियों, सरकारी अफसरों, डॉक्टरों, वकीलों आदि के घर निमंत्रण-पत्र बाँटते रहे। विशेष सूची में से शेष बचे रह गए निमंत्रणों को अगले दिन मेरी पत्नी, बेटी मंजू को साथ ले स्वयं ही दे आई। यद्यपि निमंत्रण-पत्र में रात के आठ बजे का समय दिया था, किंतु साढ़े सात बजे से ही लोगों का आना शुरू हो गया था। आठ बजे तक यज्ञ-हवन पूरा किया जा चुका था और ठीक सवा आठ बजते ही श्रीमतीजी बिट्टू को साथ ले, उस मेज के पास आईं, जहाँ केक रखा था। ढूँढ़कर मुझे भी बुलाया गया। केक कटा, मोमबत्तियाँ बुझीं और लोगों ने तालियों की गड़गड़ाहट के बीच 'हैप्पी बर्थ डे, हैप्पी बर्थ डे' कहा। फिर क्या था, बधाई देनेवालों का ताँता लग गया। श्रीमतीजी बिट्टू के साथ गिफ्ट देनेवालों से घिरी खड़ी थीं और एकाध बार मनाही की

वह माथे पर जरा भी सलवट लाए बिना तुरंत मुसकराकर बोली, ''भाभीजी, भला कहीं ऐसा हो सकता था कि बिट्टू का जन्मदिन मनाते और आपको न बुलाते। दरअसल, बात यह थी कि बिट्टू के जन्म से ही मैंने 'संतोषी माता' की यह मनौती मानी थी कि इसके पाँच साल होने पर ही इसका जन्मदिन मनाएँगे, उससे पहले नहीं।'' मैं हैरान था श्रीमतीजी की इस हाजिरजवाबी और तर्कशास्त्र के ज्ञान पर। इस प्रकार हम श्रीमती जैन से विदा ले आगे चले और पूरे तीन घंटे तक नगर के कई बड़े-बड़े व्यापारियों, उद्योगपतियों, सरकारी अफसरों, डॉक्टरों, वकीलों आदि के घर निमंत्रण-पत्र बाँटते रहे।

औपचारिकता निभाने के बाद बर्थ डे के नाम पर दिए जानेवाले गिफ्टों व रकमों को अपने पास जमा करती जा रही थीं। टेप-रिकॉर्ड पर गीत चल रहे थे, वीडियो फिल्म दिखाई जा रही थी और लोग रोशनी की चकाचौंध में एक-दूसरे से मिलते-जुलते, हँसते-मुसकराते, गरम-गरम खाने और मिठाइयों का आनंद ले रहे थे। इस प्रकार पूरी चहल-पहल के साथ सब लोगों को बिदा करते-करते रात के बारह बज गए। मैं थककर चूर हो चुका था। अत: बिस्तर पर पड़ते ही नींद आ गई।

सवेरे उठा तो आठ बज चुके थे। हाथ-मुँह धोकर मैं जैसे ही नाश्ते के लिए तैयार हुआ तो श्रीमतीजी नाश्ता ले आईं और यह कहकर तरह-तरह की मिठाइयाँ खिलाने लगीं कि पता नहीं, रात को आपने कुछ खाया भी था या नहीं। पास के कमरे में बिट्टू खिलौनों से घिरा बैठा था और ढेर सारे डिब्बों में से तरह-तरह के कपड़े निकाल-निकालकर नाप रहा था। मैं मिठाइयाँ खाता हुआ मन-ही-मन कल के खर्चे के बिल का हिसाब लगा रहा था। इतने में श्रीमतीजी पर्स निकाल उसकी रकम की गिनती पूरी कर व्यंग्य भरी मुसकराहट के साथ बोलीं, ''सब बिलों का पेमेंट करने के बाद बिट्टू के खिलौने और कपड़ों के अलावा पूरे साढ़े तीन हजार रुपए बचे हैं, प्रोफेसर साहब! समझ में आया आपको बच्चे के जन्मदिन का अर्थशास्त्र? जन्मदिन भी धूमधाम से मन गया और बच्चे के अगले जन्मदिन तक के खर्चे का इंतजाम भी पूरा हो गया।''

बी-८४, अहिंसा विहार
सेक्टर-९, रोहिणी
दिल्ली-११००८५

कविता

कैसी है यह दुनिया

● सुधेश

खबर

कोई घटना खबर होती है
कभी घटना से बनती हैं
कई-कई सच्ची-झूठी खबरें
ऐसा भी तो है
कि कई अभागी घटनाएँ
खबर नहीं बनतीं,
तो खबर और घटना
दोनों पर्यायवाची नहीं हैं
कम-से-कम आजकल।

क्रांतिदर्शी

जिसने क्रांति शब्द किताबों में पढ़ा
जो सुविधा की सीढ़ियों
बैसाखियों पर चढ़ा,
धन यश सब कमाता रहा
संयोग से ऊँची कुरसी पा
इतना आत्ममुग्ध कि
अपने बाड़े को बता रहा राष्ट्र,
जिसे उस की कुरसी ने पहचान दी
उसके बाड़े में लगे
देशविरोधी नारों की गूँज
दुनिया ने सुनी उसके लिए
अभिव्यक्ति की आजादी है।

एक चमचे ने बयान छापा
मैं सोचने लगा
कि इस हँसमुख सिंह को
नजदीक से देखता रहा वर्षों
उसकी कथनी व करनी में
कहीं मेल न था,
उसे जो मिला कृपावश मिला
बैसाखी पर खड़ा बड़प्पन
मँगनी का यश वैभव,
सबकुछ भूल वह समझता कि
उसका पोखर ही हिंद महासागर
उसका बाड़ा ही राष्ट्र।
कैसी है यह दुनिया
भोंपू की सुनती
जो मौन उसे पूछे कौन?
जिसके ऊपर कोई ठप्पा
वही सच्चा बाकी सब लुच्चा।

जंग करेंगे

'आजादी तक जंग करेंगे
भारत की बरबादी तक जंग करेंगे
भारत तेरे टुकड़े होंगे
इंशा अल्ला इंशा अल्ला'
ऐसे नारे जे.एन.यू. में लगते हैं
दिल्ली के प्रेस क्लब में
या जादवपुर यूनिवर्सिटी में
ऐसे नारे भारत में ही लगते हैं।
बाहर किसी देश में यों चिल्लाओ
जिसका खाते उस पर गुर्राओ
तो क्या होगा
पहले गाली खाओगे
फिर थप्पड़ घूँसे
या फिर गोली,
यदि बचे रहे तो
देश निकाला भुगतोगे
फिर निर्वासित हो शरण माँगते
भटकोगे देश-देश में।

नई गजलें

तुम्हें आज के हालात से
डर लगता है,
मुझे आप की इस बात से
डर लगता है।
गए वक्त जो जुल्म हुए
चुप थे तुम,
मगर आज क्यों हर बात से
डर लगता है।
हुई खून की बारिश
तो जुंबिश न हुई,
तुम्हें आज क्यों बरसात से
डर लगता है।
उधर सत्य तो लड़ता रहा
अंतिम क्षण तक,
मगर झूठ को सच बात से
डर लगता है।
दर्द आदमीयत का दहशत में खोया,
अब तो आप के जज्बात से
डर लगता है।

आजकल ऐसा चलन है,
चाल कम ज्यादा चलन है।
आपको क्या डर सताता,
देश को सबकुछ सहन है।
छोड़कर तुम कहाँ जाओ,
लौटकर आना वतन है।
आ गई है ठंड लेकिन,
प्यार के दिल में अगन है।
आग नफरत की लगी है,
कोई कुरसी में मगन है।
नारियाँ धरती सरीखी,
दंभ पुरुषों का गगन है।

३१४, सरल अपार्टमेंट्स,
द्वारका सेक्टर-१०
दिल्ली-११००७५
दूरभाष : ९३५०९७४१२०

धरती भी तो माँ है

● हरीतिमा

अनामिका

माँ! माँ! माँ!
आवाज आई कहीं भीतर मेरे मन से
कहाँ हो तुम माँ?
क्यों नहीं सुनती हो सदा मेरी?
हाथ उठाकर क्यों नहीं माँग लेती
दुआ मेरी?

अभागी हो गई हूँ मैं तेरे स्नेह से
वंचित हूँ मैं अपनों के नेह से
तेरी कोख से निकलकर आ जाऊँ
मैं धरती पर!

धरती भी तो माँ है न माँ,
सागर के गहरे तल सा होगा मेरा मन
चाँदनी सी चमक मैं इधर-उधर
भाग्य पर इठलाऊँगी,
मैं भी भाई की तरह
जब जनमूँगी इस धरती पर।
पापा क्यों नहीं उठाते गोद में मुझको?
हृदया सी दादी क्यों नहीं माँगती मुझको?
क्या पाप और दंड की भागीदार मैं ही हूँ?
क्यों नहीं बचाती मुझको माँ?

नन्ही सी कलाइयों में
पहन चूड़ियाँ
तेरी आँखों में छलक जाऊँगी,
हवा सी गजल बनूँगी मैं
पर्वत सी लकीर बनूँगी मैं
खींचकर ले जाए मुझे कोई कितने
भी गहरे तमस में
उसी आग में जलकर
अपनी तकदीर बनूँगी मैं।

हौले-हौले नूपुर की झंकार,
जब तेरे आँगन में गूँजूँगी,
सपनों की शबनम तेरे चेहरे पर तैरेगी
मन के तारों में तरंगें उठेंगी,
जब तू मुझको प्यार से सींचेगी।
करूँगी सपने पूरे मैं तेरे
जो तूने देखे थे, कभी…
फूलों की छाँव न होगी मुझको
फिर भी छाया बनूँगी मैं तेरी
इल्म का ज्ञान जब देगी मुझको
पैरों पर अपने खड़ी होकर मैं
तेरे हौसलों को भी पंख लगा दूँगी।
तू कहेगी तेरी आवाज बनूँगी
तू हँसेगी मैं तेरी मुसकान बनूँगी
तू कभी हारेगी नहीं माँ!
मैं तेरी तलवार बनूँगी।

आसमान की परछाईं से नहीं डरूँगी मैं,
नन्हे कदमों से छू लूँगी आसमान
तू मेरा संबल बन जाना माँ,
मैं तुझको ही तो समर्पित,
तेरा अंग दान हूँ।
कहते हैं बेटी कुछ कर नहीं सकती,
कहते हैं बेटी कुछ कह नहीं सकती!
तकदीर को अपना सामान
बतानेवाले यह नहीं समझते
बेटी न होती तो दुनिया चल नहीं सकती।

अहसास पिता बनने पर

वट वृक्षों के नीचे खड़ा, चट्टान सा वह,
मासूम से स्पर्श से
पिघल रहा है धीरे-धीरे।
उसे अहसास होता है कि
आज वह पिता बना है पहली बार।

निर्वेद नहीं रहेगा वह,
अपने खिले फूल से,

सुपरिचित रचनाकार। संप्रति उपप्रधानाचार्या, सरदारनी सदा कौर खालसा बालिका उच्चतर माध्यमिक विद्यालय दरियागंज, नई दिल्ली।

हर बात कहेगा-सहेगा
दर्द उसका प्यार से।
वट-वृक्ष सी छाँव देने के लिए
हर फासले को समेट लेगा वह
घर में अपने ही 'बेघर' नहीं
रहेगा वह।
हर वक्त साथ रहेगा 'वह'
अपने इस अक्स के लिए।
किस हादसे से नहीं गुजरा वह
जब भी चाहा एक प्यारा स्पर्श
अंगार सी जलती वह मृगनयनी सी आँखें
सोख लेती उसकी हर प्यास को
चुपचाप जलता-चलता,
आज पिता बना है
वह पहली बार।
वार देगा अपना सर्वस्व वह
नासूर नहीं बनेगा वह इसके लिए
नहीं तो भटकेगा 'वह' भी उसी की तरह
एक प्यारी सी पिता की छुअन के लिए
सखा-सरीखा रहेगा इसका वह
वह से बल में
समेट लेगा 'उसे' अपनी जड़ भुजा में
एक पिता की तरह।

बी-८५, पुष्पांजलि एन्क्लेव
पीतमपुरा, दिल्ली-११००३४
दूरभाष : ९७१८४२७७३७

स्वातंत्र्य समर के अमर सेनानी लोकमान्य तिलक

● विभा सिंह

हमारे स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में जिन महापुरुषों के नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं, उनमें लोकमान्य तिलक का स्थान बहुत ऊँचा है। वह पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने कहा, 'स्वतंत्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर ही रहूँगा।' यह उस समय की बात है, जब विदेशी सत्ता अपने प्रभुत्व के चरम शिखर पर थी और उसके सामने ऐसी बात मुँह से निकालने का साहस करना भारी संकट मोल लेना था; लेकिन लोकमान्य तिलक में निर्भीकता कूट-कूटकर भरी थी। वे सच बात कहने से कभी नहीं चूकते थे। इतना ही नहीं, जिस बात को सही मानते थे, उसे करने में भी पीछे नहीं रहते थे। स्वतंत्रता का मूल मंत्र देकर ही वे चुप नहीं हो गए, जी-जान से उसकी सिद्धि में संलग्न रहे।

बाल गंगाधर तिलक का जन्म २३ जुलाई, १८५६ को रत्नागिरि में हुआ था। उनका बचपन का नाम बलवंत राव था। घर के लोग लाड़ से उन्हें 'बाल' कहने लगे। यही नाम आगे चलकर प्रचलित और प्रसिद्ध हो गया। उनके पिता गंगाधर राव विद्वान् थे और माँ पार्वती बाई धार्मिक भावना से ओत-प्रोत महिला थीं। बाल गंगाधर तिलक के चरित्र निर्माण में माता-पिता दोनों का विशेष योगदान रहा। प्रारंभ से ही तिलक को गणित और संस्कृत पढ़ने का बड़ा चाव था। इनके पिता स्वयं इन विषयों के प्रकांड पंडित थे। वे पुत्र की योग्यता बढ़ाने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहते थे। एक बार की घटना है—तिलक के पिता बाणभट्ट की 'कादंबरी' का सस्वर पाठ किया करते थे। तिलक को वह बहुत अच्छा लगता था। एक दिन उन्होंने पिता से वह पुस्तक माँगी। पिता ने इस शर्त पर उन्हें देना स्वीकार किया कि वह गणित का एक कठिन प्रश्न हल करके दिखाए। पुत्र ने तत्काल यह शर्त मान ली और प्रश्न हल कर दिया। अपने पुत्र की प्रतिभा को देखकर पिता रोमांचित हो उठे और उन्होंने पुस्तक उसे दे दी। पिता एक श्लोक सुनाने पर उन्हें एक पैसा देते थे। पिता की इस दूरदर्शिता से उन्हें सैकड़ों श्लोक याद हो गए थे।

बचपन से ही तिलक में निडरता थी। एक बार वे और उनके कुछ साथी किसी के घर की छत पर इकट्ठे हुए और चर्चा करने लगे कि अगर ऐसा अवसर आ जाए कि छत पर से एकदम नीचे जाना पड़े तो वे क्या करेंगे? एक ने कहा, 'मैं सीढ़ियों से नीचे उतर जाऊँगा।' दूसरे ने कहा, 'मैं दो-दो सीढ़ियाँ एक साथ लाँघकर भाग जाऊँगा।' तिलक बोले, 'मैं तो ऊपर से ही कूद पड़ूँगा।' इतना कहकर उन्होंने धोती सँभाली और झट नीचे कूद पड़े। सब साथी देखते ही रह गए।

पुस्तकों का उन्हें इतना शौक था कि पंद्रह वर्ष की अवस्था में जब उनका विवाह हुआ तो उनसे पूछा गया कि दहेज में क्या लेंगे तो उन्होंने मात्र ८ रुपए माँगे, न कीमती कपड़े माँगे, न कोई कीमती वस्तु; माँगी तो इतने दामों की पढ़ने योग्य बढ़िया पुस्तकें!

जिस समय तिलक १० वर्ष के थे, उनकी माता का देहांत हो गया और पंद्रह वर्ष की अवस्था में वे पिता की छत्रच्छाया से भी वंचित हो गए। इसका उनके स्वास्थ्य पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। वैसे भी उनका शरीर कुछ दुबला था। उन्होंने निश्चय किया कि विद्या के साथ उन्हें शारीरिक शक्ति भी अर्जित करनी चाहिए। फिर क्या था, वे शरीर को सबल बनाने में जुट गए और एक वर्ष के नियमित व्यायाम तथा भोजन के परिवर्तन से उन्होंने अपने को स्वस्थ बना लिया। तिलक बड़ी सादगी से रहते थे। वे अपना अधिकांश समय पढ़ने में लगाते थे। उन्होंने पाठ्य-पुस्तकें ही नहीं पढ़ीं—संस्कृत साहित्य, पाश्चात्य दर्शन, गणित, ज्योतिष आदि अनेक विषयों का विस्तृत तथा गंभीर अध्ययन किया। यह सब जैसे उनके भावी उज्ज्वल जीवन की तैयारी थी। सन् १८७७ में उन्होंने बी.ए. और १८७९ में एल-एल.बी. की उपाधियाँ प्राप्त कीं।

वकालत पास करने के बाद वे सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र में आ गए। उन्होंने कॉलेज के एक साथी आगरकर के सहयोग तथा मराठी के प्रसिद्ध लेखक विष्णु शास्त्री चिपलूणकर की प्रेरणा से १८८० की पहली जनवरी को पूना में 'न्यू इंगलिश स्कूल' की स्थापना की। इस स्कूल में बच्चों को ऐसी शिक्षा दी जाती थी, जो अपनी सभ्यता और संस्कृति के अनुरूप हो और देशप्रेम की भावना को बढ़ावा दे। इस स्कूल ने इतनी उन्नति की कि पाँचवें वर्ष में इनके छात्रों की संख्या एक हजार हो गई और चारों ओर उसका नाम फैल गया। तिलक में देशप्रेम की भावना बड़ी उत्कट थी। वे अपने देश को जल्दी-से-जल्दी स्वाधीन देखना चाहते थे। अत: देश की जनता को जगाने के लिए उन्होंने मराठी में 'केसरी' और अंग्रेजी में 'मराठा' नामक पत्रों का प्रकाशन किया। अपने स्कूल को आरंभ करने में तिलक को जितना परिश्रम करना पड़ा था, उससे अधिक इन अखबारों को जमाने के लिए करना पड़ा। कुछ ही समय में दोनों पत्रों की धाक जम गई। जहाँ कहीं अन्याय होता, ये पत्र उसकी कठोर आलोचना करते, उनके पाठकों की संख्या बड़ी तेजी से बढ़ गई।

उन दिनों कोल्हापुर रियासत के शासन में बड़ा अंधेर मचा हुआ

था। रियासत का गोरा एजेंट और दीवान मनमानी कर रहे थे। बेचारे राजा और प्रजा को मुसीबत हो रही थी। 'केसरी' ने अपनी आवाज ऊँची की। गोरे एजेंट व दीवान इसे कैसे सहन कर सकते थे। उन्होंने तिलक व आगरकर पर मुकदमा चलाया और अदालत ने दोनों को चार-चार महीने के लिए जेल में डाल दिया। वहाँ उनके साथ दुर्व्यवहार हुआ। तंग और अँधेरी कोठरी में रहना पड़ा, पर इससे उनकी देशभक्ति की आग बुझी नहीं, उल्टी और भी प्रज्वलित हो गई।

जेल से छूटकर आए तो तिलक की ख्याति चारों ओर फैल गई और लोग उन्हें अन्याय के विरुद्ध लड़नेवाले एक बहादुर नेता के रूप में मानने लगे। तिलक और उनके साथियों ने १८८४ में फर्ग्यूसन कॉलेज खोला, जो आज पूना के ही नहीं, सारे देश के विख्यात कॉलेजों में है। अपनी इन शिक्षा-संस्थाओं के संचालन के लिए तिलक ने 'डेक्कन एजूकेशन सोसाइटी' की स्थापना की, लेकिन आपस में मतभेद हो जाने के कारण तिलक को सोसाइटी से अलग हो जाना पड़ा। जनता में सामाजिक तथा राजनीतिक चेतना जाग्रत् करने के लिए तिलक नए-नए मार्ग खोजते रहते थे। उन्होंने गणेश उत्सव को, जिसे लोग घरों में मनाते थे, सार्वजनिक रूप दिया। साथ ही शिवाजी उत्सव का श्रीगणेश कराया, इन दोनों उत्सवों ने जनता में देशप्रेम की एक नई लहर पैदा कर दी थी।

सन् १८९६ में महाराष्ट्र में बड़ा भारी अकाल पड़ा और उसके समाप्त होने से पहले ही महामारी का प्रकोप हो गया। इन दोनों विपत्तियों में तिलक ने जनता की जो सेवा की, वह बेजोड़ थी। इस बीच महामारी तथा रैड के गोरे सिपाहियों ने अपनी काली करतूतों से जनता को आतंकित कर दिया, इसका नतीजा यह हुआ कि एक दिन रात को जब रैड घर लौट रहा था, एक नौजवान ने उस पर पिस्तौल से गोली दाग दी। कुछ दिनों बाद रैड की अस्पताल में मृत्यु हो गई। अंग्रेज सरकार बौखला गई। उसने अनेक अत्याचार किए। तिलक ने 'केसरी' पत्र के द्वारा सरकार की तीव्र आलोचना की। सरकार ने उसपर राजद्रोह का मुकदमा चलाया और डेढ़ साल की कड़ी सजा दी। जेल में तिलक का स्वास्थ्य खराब हो गया, जिससे सरकार ने उन्हें एक साल की सजा काट चुकने पर रिहा कर दिया।

सन् १८८५ में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हो गई। उसमें मुख्यत: नरम विचार के लोग थे। वे चाहते थे कि अंग्रेजी राज्य के अधीन रहते हुए ही देश की उन्नति हो, परंतु तिलक गरम विचार के थे और स्वराज्य के पक्षपाती थे। वे मानते थे कि बिना स्वराज्य के देश की उन्नति हो ही नहीं सकती। तिलक के इन विचारों का नौजवानों पर गहरा प्रभाव पड़ा। परिणाम यह हुआ कि महाराष्ट्र, बंगाल, पंजाब तथा देश के प्राय: सभी मार्गों में अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध आवाजें उठने लगीं। इस समय लॉर्ड कर्जन भारत का वाइसराय होकर आया और उसने बंगाल के दो टुकड़े कर देने का निश्चय किया। इससे बंगाल के नौजवानों में राष्ट्रीयता की आग धधक उठी। तिलक ने अपने अखबारों से नौजवानों को प्रोत्साहन दिया। २४ जून, १९०८ को तिलक बंबई में पकड़ लिये गए। उन पर पुन: राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया और उन्हें अपराधी ठहराकर, काले पानी की सजा तथा एक हजार रुपए जुरमाने का दंड दिया। अब तिलक ने एक

सुपरिचित लेखिका। छोटी-बड़ी सभी पत्र-पत्रिकाओं में पिछले १५ वर्षों से आलेखों का निरंतर प्रकाशन। संप्रति स्वतंत्र लेखन।

ओर तो नरम दल के नेताओं के साथ समझौता करने का प्रयत्न किया, दूसरी ओर होमरूल अर्थात् स्वराज्य के लिए देश भर में आंदोलन शुरू कर दिया। उन्होंने पूरे देश का दौरा किया। लोग उन्हें 'अवतारी पुरुष' मानते थे। उनके भाषण ने सारी जनता को जगा दिया और देशवासियों में देशप्रेम की भावना भर दी। अहमदनगर और बेलगाँव में दिए गए उनके भाषणों के लिए उन पर राजद्रोह का अभियोग लगाया गया, लेकिन उच्च न्यायालय में मामला पेश होने पर जजों ने उन्हें निर्दोष ठहराते हुए अपने फैसले में कहा कि स्वराज्य की माँग करना देशद्रोह नहीं है। इस निर्णय से होमरूल का आंदोलन एकदम जोर पकड़ गया।

जिस समय तिलक मॉडले जेल में थे, उन्होंने अपने अमर ग्रंथ 'गीता रहस्य' की रचना की। उन्हीं दिनों शिरोल नामक एक अंग्रेज ने अपनी 'इंडियन अनरेस्ट' पुस्तक में तिलक पर कई झूठे आरोप लगाए। जेल से रिहा होने पर तिलक ने शिरोल पर इंग्लैंड के उच्च न्यायालय में मान-हानि का मुकदमा दायर कर दिया और उसकी पैरवी करने के लिए इंग्लैंड पहुँचे। मुकदमा तो क्या जीतना था, पर वहाँ पर उन्होंने देश की स्थिति लोगों के सामने रखी। इसी बीच देश के नौजवानों में स्वतंत्रता के लिए जोश भड़क उठा, जिसे कुचलने के लिए सरकार ने रौलेट एक्ट बनाया। देश के नेताओं ने इसका विरोध किया। कुछ ही समय पहले गांधीजी दक्षिण अफ्रीका से लौटे थे। उन्होंने 'सत्याग्रह' आंदोलन आरंभ कर दिया। इसी दरम्यान 'जलियाँवाला कांड' हुआ। इन दुखदायी समाचारों को सुनकर लोकमान्य २० नवंबर, १९१९ को भारत लौट आए।

उनके भारत आगमन के एक माह बाद अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, जिसमें लोकमान्य के साथ महात्मा गांधी, पं. मोतीलाल नेहरू, देशबंधु चितरंजनदास आदि नेताओं ने स्वराज्य की माँग को दोहराया। उसके पश्चात् तिलक ने सिंध का दौरा किया। दिन-रात के परिश्रम से लोकमान्य का स्वास्थ्य एकदम बिगड़ गया, फिर भी उन्होंने आराम नहीं किया। २३ जुलाई को देशभर में उनकी ६४वीं वर्षगाँठ मनाई गई, उसके आठ दिन बाद ३१ जुलाई, १९२० को रात के १२ बजकर ४० मिनट पर उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गई। उनके निधन से एक ऐसा नेता उठ गया, जिसने राजनीति में तो महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की ही थी, पर जो भारतीय संस्कृति की जीती-जागती प्रतिमा भी थी और जिसने स्त्री शिक्षा, बाल विवाह तथा छुआछूत आदि की समस्याओं को लेकर अनेक सुधार किए थे।

'विभावरी' जी-९, सूर्यपुरम्, नंदनपुरा,
झाँसी-२८४००३ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९४१५०५५६५५

कहानी

वृद्धाश्रम

● शालिनी गोयल

डोरबैल की आवाज के साथ ही सरीन साहब की आवाज भी आई, ''कहाँ हैं सब, दीवाली मुबारक जी।''

''सब यहीं हैं। आप अंदर आइए, आपको भी दीवाली बहुत-बहुत मुबारक।'' मैंने सरीन साहब और मिसेज सरीन को बैठक में बैठाते हुए कहा।

सरीन साहब हमारी कॉलोनी में ही रहते हैं। हमारे मकान से दो मकान छोड़कर ही उनका घर है। मैन मार्केट में उनका डिपार्टमेंटल स्टोर है और मिसेज सरीन मेरी तरह गृहिणी हैं। हम दोनों में अच्छी दोस्ती है, मिसेज सरीन यानी राशि और मेरी खूब पटती है। हम दोनों में सबकुछ साझा है। वो मेरी बहन जैसी दोस्त हैं।

मायका दूर हो तो सहेलियों ही माँ-बहन बनकर एक-दूसरे का दु:ख-दर्द बाँट लेती हैं। अपने घर से अलग होकर जब लड़कियाँ नया घर बसाती हैं तो अपनों की याद और उनसे बिछड़ने का गम दोनों आँखों से आँसू बनकर गिरते हैं, ऐसे में सहेलियाँ ही तो हैं, जो कभी बहन बनकर छेड़ती हैं और कभी माँ की जगह लेकर बातों ही बातों में सीख देती हैं।

मेरा और राशि का रिश्ता भी कुछ ऐसा ही है, हम पिछले सात सालों से साथ रह रहे हैं, जब हमने इस कॉलोनी में मकान बनाया था तो काफी कम मकान बने हुए थे। हर तरफ खाली जमीन ही नजर आती थी। मेरे और राशि के घर के बीच के दोनों भूखंड खाली थे, ऐसे में जब हमारा परिचय हुआ तो मुझे सुकून मिला था कि चलो कोई तो दिखाई देगा। समय के साथ हम दोनों परिवारों में अच्छा मेल-जोल हो गया। इस बीच मेरी बेटी की शादी हुई तो राशि मेरे साथ साये की तरह रही। शादी के बाद जब मैं बीमार हुई तो राशि सारा-सारा दिन मेरे पास ही बैठी रहती थी। अभी पिछले साल ही राशि के बेटे की शादी हुई है। हम सबने मिलकर उसका हर काम में हाथ बँटाया था।

आज मेरी बेटी विदेश में अपने पति के साथ खुश है तो राशि का बेटा भी मुंबई में अपनी नौकरी आराम से कर रहा है, यानी हमारे दोनों के बच्चे अपनी-अपनी दुनिया में खुश हैं।

आज मेरा और राशि का बाजार जाने का प्रोग्राम है। मुझे कुछ ऊन खरीदकर लानी है। हालाँकि आजकल कोई हाथ के बुने स्वेटर नहीं पहनता, मगर मेरी बेटी को आज भी मेरे हाथ से बने स्वेटर बहुत पसंद हैं और अभी वह मेरे पास आनेवाली है। दरअसल, वह माँ बननेवाली है

सुपरिचित साहित्यकार। राजस्थान पत्रिका में कहानियाँ प्रकाशित। आकाशवाणी से कई कहानियाँ व कार्यक्रम प्रसारित। पाक्षिक समाचार-पत्र 'चील' में 'जरा सोचिये' नाम से स्तभ लेखन।

और मैंने प्रसव के लिए उसे अपने पास बुला लिया है। कुछ मफलर मुझे अपने वृद्धाश्रम के लिए भी बनाने हैं, जहाँ मैं महीने में एक बार जाती हूँ, वहाँ जाकर मुझे बहुत अच्छा लगता है। बस यही एक बात है, जहाँ मेरे और राशि के विचार नहीं मिलते, उसे मेरा वृद्धाश्रम से जुड़े रहना कतई पसंद नहीं। उसका मानना है कि बुजुर्गों को अपने बच्चों के साथ सामंजस्य बैठाना चाहिए। उसके अनुसार, समस्या तब होती है, जब बड़े छोटों की बात नहीं मानते और अपनी मनमानी करते हैं। खैर, राशि के इन विचारों से सहमत न होते हुए भी मैं उसकी हाँ में हाँ मिलाते हुए बात खत्म कर दिया करती हूँ।

बाजार से आते-आते हम दोनों को काफी देर हो गई थी, सूरज की लाली सारे माहौल में छा रही थी, यानी दिन ढलनेवाला था। हम दोनों ने अपने-अपने घर की राह पकड़ी और बाकी बातें कल करने का वादा भी किया।

अभी घर पहुँचकर रसोई का काम शुरू किया ही था कि राशि का फोन आया कि गाँव से खबर आई है कि उसके ससुरजी का देहांत हो गया है और वे लोग गाँव जा रहे हैं।

□

करीब एक महीने बाद राशि गाँव से लौटी तो उसकी सास भी उसके साथ थी, मुझे राशि का यह कदम बहुत अच्छा लगा, ''यह तुमने बहुत अच्छा किया कि माँजी को अपने साथ यहाँ ले लाई। तुम लोगों के साथ रहकर उनका भी मन लगा रहेगा।'' मैंने राशि से खुश होते हुए कहा।

''वैसे भी अगर मम्मीजी गाँव में रहतीं तो हमें इनकी चिंता लगी रहती और फिर रोज-रोज गाँव जाना भी तो संभव नहीं। इसलिए हमने इनसे कहा कि आप हमारे साथ चलो।'' राशि ने जवाब दिया।

राशि अब कुछ चिड़चिड़ी सी हो गई थी, मैं यह साफ महसूस कर रही थी। मैंने सोचा कि माँजी के आने से उसकी व्यस्तता बढ़ गई है,

शायद इसी कारण ऐसा होगा, धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा, साथ ही राशि और माँजी दोनों को एक-दूसरे की आदत हो जाएगी।

अचानक एक दिन कुछ ऐसा हुआ कि अगले तीन हफ्तों के लिए मेरे पाँव में प्लास्टर चढ़ गया। अपने ही घर के बाथरूम में पैर फिसला कि मैं पैर पकड़कर बैठ गई। अपने कामों के लिए मैं दूसरों पर आश्रित हो गई, मगर राशि ने ऐसे समय में मेरा पूरा साथ दिया और मुझे खूब हिम्मत बँधाई।

अपनों के साथ और प्यार से मेरा तीन हफ्तों का समय कैसे गुजर गया, मुझे पता ही नहीं चला। आज मेरा प्लास्टर खुल गया है। बस डॉक्टर ने कुछ दिन सावधानी रखने को कहा है।

धीरे-धीरे सब ठीक हो गया, मैं भी अपने दोनों पैरों पर दोबारा अच्छी तरह चलने लगी, राशि और माँजी के बीच भी सब ठीक हो गया था। पर अब माँजी हमारे साथ कम ही बैठती थीं। अगर मैं बहुत कहती तो भी बस थोड़ी देर बैठकर उठ जातीं।

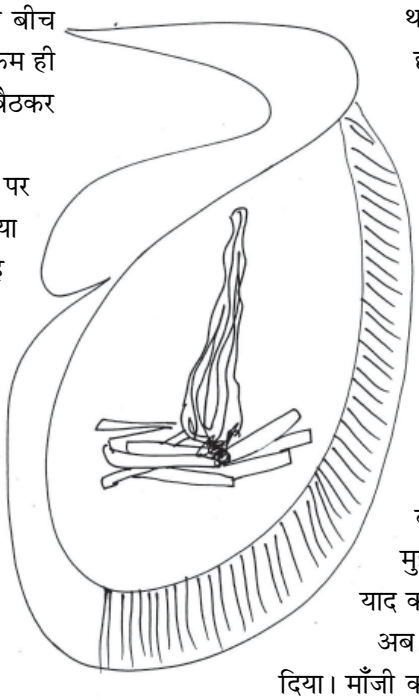

मेरी बेटी सिमी भी आ गई। उसने समय आने पर एक प्यारी सी गुड़िया को जन्म दिया। सिमी और गुड़िया की देखभाल में अकसर मैं माँजी और राशि से सलाह लिया करती। इन दिनों माँजी भी मुझसे खुलकर बातें करने लगी थीं। मगर फिर भी मुझे ऐसा लगता कि वे राशि के सामने चुप हो जाया करती थीं। मुझे कभी-कभी ऐसा लगता कि माँजी और राशि दोनों मुझसे कुछ छिपा रहीं हैं, शायद राशि को मेरा माँजी से बात करना पसंद नहीं है, लेकिन मैं इसे अपना वहम जानकर नजरअंदाज कर देती।

देखते-देखते सिमी की विदाई का दिन आ गया। भारी मन और नम आँखों से मैंने अपनी बिटिया को विदा किया। सिमी के जाने के बाद घर बिल्कुल सूना-सूना हो गया और खाली घर मुझे काटने को आता, इन सबसे बचने के लिए मैं राशि के घर चली जाती।

आज दोपहर को अचानक मुझे राशि के घर जाना पड़ा, क्योंकि मुझे दही चाहिए थी। मैंने सोचा कि जब जा ही रही हूँ तो राशि के लिए दाल की बड़ी भी ले जाती हूँ, उसे मेरे हाथ की बड़ी बहुत पसंद हैं।

राशि के घर का दरवाजा खुला था। दो दरवाजों के बीच से माँजी साफ-साफ दिखाई पड़ रही थीं। शायद कुछ खा रही थीं। मेरे जाते ही उन्होंने अपनी थाली को चादर से ढक लिया। मुझे यह अजीब लगा, पर मैंने ज्यादा ध्यान नहीं दिया। माँजी ने मुझे बताया कि राशि और सरीन साहब बाहर गए हैं, शाम तक ही लौटेंगे। माँजी पूरे दिन घर पर अकेली हैं, यह जानकर मैं वहीं थोड़ी देर बैठकर उनसे बातें करने लगी। माँजी अपनी ओढ़ी हुई चादर बार-बार सँभाल रही थीं, जैसे मुझसे कुछ छिपा रही हों। अब यह मुझे खटकने लगा। मैं घर जाने के लिए जैसे ही उठी कि माँजी को अचानक जोर से खाँसी आने लगी, मैं जल्दी से रसोई से पानी लेकर आई, जैसे-तैसे माँजी को दो घूँट पानी पिलाया, मगर उनकी खाँसी रुकने का नाम ही नहीं ले रही थी तो फिर मैंने धीमे-धीमे उनकी पीठ को सहलाना शुरू कर किया, ताकि उन्हें थोड़ा आराम मिले। कुछ देर बाद माँजी की खाँसी शांत हो गई और अब उन्हें साँस लेने में भी तकलीफ नहीं हो रही थी, तभी मेरी नजर उस थाली पर गई, जिसमें दो सूखी रोटी और एक पुराना सा सूखा अचार का टुकड़ा था। अब मुझे सब समझ आ गया था कि माँजी मुझसे क्या छिपा रही थीं? मुझे अपनी आँखों पर यकीन नहीं हुआ, सरीन साहब बेशक करोड़पति न हों, मगर शहर के पैसेवालों में उनकी गिनती होती है, उन्हीं सरीन साहब की माँ को आज यह खाना नसीब है।

माँजी ने मेरी तरफ देखकर एक बार फिर चादर उस थाली पर डालनी चाही, मगर इस बार मैंने उनका हाथ पकड़ लिया और अपने सिर पर उनका हाथ रखकर मैंने उन्हें सब सच बताने को कहा।

माँजी ने आँखों से बहते आँसुओं के साथ मुझे जो बताया, उसे सुनकर मैं आश्चर्यचकित रह गई। राशि उनके साथ इतना बुरा व्यवहार करती है, जितना कि मैं सोच भी नहीं सकती। माँजी की तकलीफ के बारे में सुनकर मेरी भी आँखें भर आईं। हम दोनों देर तक रोती रहीं, घर आते समय माँजी ने मुझे कसम देकर वचन लिया कि मैं कोई भी बात किसी से न कहूँ।

घर वापस आने के बाद भी मेरा मन किसी काम में नहीं लगा, मुझे अनमना देखकर इन्होंने मुझसे जानने की कोशिश की, मगर मैंने सिमी की याद का बहाना बनाकर टाल दिया।

अब मैंने राशि के व्यवहार पर गौर करना शुरू कर दिया। माँजी का किसी से भी बात करना राशि को अच्छा नहीं लगता, शायद उसे यह डर था कि माँजी किसी को कुछ बता न दें। सच भी तो है कि जब हम गलत होते हैं तो हम डरपोक भी हो जाते हैं।

मुझे जब से माँजी के दु:ख और तकलीफ के बारे में पता चला है, मेरा मन हमेशा उधर ही लगा रहता। मैं माँजी के लिए कुछ करना चाहती थी। मगर मैं यह नहीं चाहती थी कि राशि के मन को चोट पहुँचे। मुझे ऐसा उपाय ढूँढ़ना था, जिससे राशि को यह न मालूम हो कि मैं उसके व्यवहार के बारे में सबकुछ जानती हूँ और माँजी को भी सुख व आराम मिल सके।

काफी मनाने के बाद राशि को मैंने इस बात के लिए राजी कर लिया कि मैं एक दिन माँजी को वृद्धाश्रम ले जाऊँगी। वहाँ पर अचार बनाने हैं और माँजी इस काम में माहिर हैं। माँजी के साथ होने से मुझे मदद मिल जाएगी।

वहाँ के हर काम में माँजी ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया, उन्हें इतना खुश मैंने शायद पहली बार देखा था।

इसके बाद तो मैं नए-नए बहाने बनाकर माँजी को अपने साथ ले जाती, कभी स्वेटर के डिजाइन का बहाना और कभी नई रजाइयों के कपड़े की खरीदारी का।

राशि को भी मुझ पर भरोसा था और माँजी भी राशि से यही बतातीं कि वह वहाँ सारे काम राशि और सरीन साहब के नाम से करवाती हैं। अपनी तारीफ सुनकर राशि खुश हो जाती।

धीरे-धीरे माँजी मेरे साथ नियमित रूप से वहाँ जाने लगी थीं। एक बार वहाँ जागरण था तो माँजी वहाँ दो दिन तक रुकीं। एक ओर माँजी को वहाँ जाकर सुख और अपनापन मिलता, वहीं दूसरी ओर माँजी के वहाँ जाने से राशि पर भी उनके काम का बोझ कम हो गया था, इसलिए राशि को भी अब माँजी का वृद्धाश्रम जाना उतना बुरा नहीं लगता।

सबकुछ ठीक ही चल रहा था, मगर एक दिन माँजी ने राशि और सरीन साहब से कहा कि वृद्धाश्रम में सुपरवाइजर की जरूरत है और वे खुद वहाँ जाकर काम करना चाहती हैं, इसके लिए उन्हें वहीं रहना होगा। वे दोनों इस बात के लिए बिल्कुल भी तैयार नहीं थे, उन्हें यह डर था कि उनकी कितनी बदनामी होगी, लोग उनके बारे में कैसी-कैसी बातें बनाएँगे। राशि ने हमें भी फोन करके अपने घर बुला लिया।

माँजी ने उन्हें समझाते हुए कहा, ''मैं वृद्धाश्रम में इसलिए रहना चाहती हूँ, ताकि मैं वहाँ पर रह रहे लोगों की मदद कर सकूँ, तुम दोनों से मुझे कोई शिकायत नहीं है। मेरे वहाँ रहने से अगर किसी का भला होता है तो इसमें बुराई क्या है, मुझे वहाँ पर सुपरवाइजर की जगह रहना है और जब मेरा मन होगा, मैं आ जाया करूँगी, तीज-त्योहार हो या शादी-ब्याह; मैं सब मौकों पर घर आऊँगी। बेटा, मैं वहाँ उन लोगों के लिए जा रही हूँ, जिनके पास सबकुछ होते हुए भी अपना कुछ नहीं है। अगर बुढ़ापे में दूसरों का दु:ख-दर्द बाँटने का मौका मिल रहा है तो मैं इसे छोड़ना नहीं चाहती।''

''मगर मम्मीजी, लोग हमारे बारे में उल्टी-सीधी बातें बनाएँगे।'' राशि ने झुँझलाते हुए कहा।

''अरे बेटा, दुनिया का तो काम ही बातें बनाना है। लोगों ने तो भगवान् को भी नहीं छोड़ा, फिर हम तो इनसान हैं, उनकी परवाह तुम मत करो।'' माँजी ने राशि को समझाते हुए कहा।

आखिरकार राशि और सरीन साहब इस बात पर राजी हुए कि माँजी सिर्फ एक महीना वहाँ रहकर वापस आ जाएँगी।

एक महीने बाद हम सब माँजी से मिलने गए तो वहाँ सब लोग माँजी के काम से बहुत खुश थे। सरीन साहब और राशि के नाम से माँजी ने संस्था को कुछ दान भी दिया था। माँजी ने सुपरवाइजर के रूप में वहाँ की सारी व्यवस्था अपने हाथ में ले ली थी।

माँजी को न घर आना था। न ही वे वापस आईं। हम सब अपने घर लौट आए।

माँजी अब वहाँ खुश हैं और मेरे मन को सुकून है। साथ ही राशि जैसी दोस्त भी मेरे पास है। माँजी ने मुझे कब, क्या बताया और माँजी का वृद्धाश्रम में सुपरवाइजर के रूप में जाने का सच शायद राशि कभी न जान सके और इस सच से राशि अनजान ही रहे। यही हम सब के लिए बेहतर है!

सरदार पटेल कॉलोनी, राजकीय पॉलिटेक्निक कैंपस,
रेजीडेंसी रोड, जोधपुर-३४२००१ (राज.)
दूरभाष : ०९४१४८०११९८

कविता

नदी सा कर दे

● **कल्पना पांडेय**

कुछ-कुछ मुझ में
नदी सा कर दे,
जो गढ़ गया है
और बस पड़ा है हृदय में
उसे तरल, गतिवान कर दे।

उस जैसा ही
शोख और मीठा कर दे
कि जिंदगी का समुंदर पी सकूँ
ये खारापन जी सकूँ
बस बहती जाऊँ
इक दिशा लिये
निस्स्वार्थ आशा लिये
उसकी सी गहराई दे
कि उथली न नजर आ सकूँ मैं,
किसी भी ओने-कोने से
इतना उफान भर दे,
कि त्रुटियों की काई
जमने ही न पाए मुझमें
रुकूँ नहीं उस जैसी
अथक रहूँ
हर चट्टान भेद सकूँ,
वो अपना
मैं उस जैसा
प्यासा सफर रोज तय करूँ
लिख सकूँ
अपने सुख-दु:ख की दास्ताँ
अपने ही पानी में
ठीक उसी की तर्ज पर
और बाँचती फिरूँ
बलखाती फिरूँ
किनारे से लगकर खड़े हुए
मुझसे बिल्कुल सटे हुए
हर वजूद को छू सकूँ
अपना अस्तित्व बाँटकर भी
कायम रख सकूँ
अपना सुकून
अपनी निर्मलता
अपनी बेफिक्री
अपना वेग
अपना सफर
और वही नदीवाला अपना सागर

२५०३ दिव्यांश प्रथम, डी.पी.एस.
इंदिरापुरम् के निकट, कनावनी रोड,
इंदिरापुरम्, गाजियाबाद
दूरभाष : ९८९९८०९९६०

जब बने हर चौराहा गौशाला

व्यंग्य

● हरीश नवल

यों तो पहले भी चौराहों पर गायें खड़ी-बैठी होती थीं, पर अब तो पसरी रहती हैं, अब तो उनके पतिदेव और बछड़े आदि भी साथ होते हैं। यह पारिवारिक सम्मेलन आप आजकल राजधानियों के अनेक चौराहों पर देख सकते है! पिछली सरकार जब दिल्ली में आई, गाय माताओं की दिली तमन्ना पूर्ण हो गई थी। जानवरों को भी जाने कैसे पता चल जाता है कि सरकार के होने से उन्हें कहाँ किस करवट बैठना है, तब से वे राजधानी के चौराहों पर हर करवट बैठने लगीं।

चौराहों पर भले ही लिखा हो 'बाएँ चलिए', पर गायें प्राय: दाएँ मिलेंगी। वे जानती हैं, बाएँ कौन है और दाएँ कौन है। गाय निरीह पशु है, परंतु शास्त्रों के अनुसार उसकी मान्यता देवी की है, माँ की है। आजकल माताएँ भी तो गाय-सी निरीह हो गई हैं, जिनके बेटे उनके हाथों से निकल दूसरे खूँटों पर बँध गए हैं। हालात बदलने के कारण वे भी जीवन के चौराहों पर रँभाते हुए जीवन का नियमित अबाध ट्रैफिक देख रही हैं।

जब हम निबंध लिखना सीखते हैं, बालपन से ही 'गाय' विषय मिलता है। गाय का दूध भी बचपन में दिया जाता है, अत: गाय से हमारा नाता आयु के प्रथम चरण से जुड़ जाता है। कभी गाय घास खाती थी, पर अब तो वह कूड़ाघर में मुँह मारती दिखती है। देश की सारी हरी घास उन इलाकों में है, जहाँ देश के विधाता और विधायक रहते हैं। कोई भी विधायक घास के बिना नहीं रह सकता, उसका भवन घास के मैदान में ही होना चाहिए। जब सारी घास उनके हिस्से में आएगी तो बेचारी गाय क्या चरेगी, वे देश चरते हैं तो यह घास भी नहीं चर सकती? जब चारा नहीं मिलता तभी तो व्यक्ति बेचारा कहलाता है। जब व्यक्ति बेचारा होता है, चौराहों पर जाकर अखबार बेचता है, कंघे बेचता है, गुब्बारे बेचता है, भीख माँगता है अथवा देवी-देवता के बहाने दान की माँग करता है। बेचारगी में जैसे कभी गाय मरखनी हो सकती है, वह भी सींग मारता है।

कोई एक गाय किसी एक चौराहे पर पहुँचती है, फिर एक ओर देखते-ही-देखते वहाँ गौशाला का स्वरूप बनने लगता है। वे बेचारी हैं, इसलिए पहुचती हैं। प्रात:काल उनका दोहन कर नगरीय ग्वाले अवश्य ही उन्हें छुट्टा छोड़ते हैं। दूध बेचकर तो उनका भी चारा पूरा नहीं पड़ता, पानी भी कई बार समय पर नहीं आता। इससे वे गाढ़े दूध को हल्का कर अपना जी भी हल्का नहीं कर पाते। खल, बिनौले की बात तो अति दूर, वे तो अपने गोधन को सूखी घास तक नहीं डाल पाते। दरअसल उन्हें ही कौन रोज-रोज घास डालता है। कहीं तीन-चार वर्षों में एकाध बार घास डलती है, तब तक घास खाने की आदत ही छूट जाती है। वोट लेकर नोट की जगह उन्हें चोट खाने की भी आदत हो चली है, अत: गाय को घर से बेघर न करें तो क्या खुद बेघर हो जाएँ?

प्रख्यात व्यंग्यकार। अब तक छह व्यंग्य-संकलन, तीन आलोचनात्मक पुस्तकें, नौ संपादित ग्रंथ और बावन ग्रंथों में सहयोगी रचनाकार के रूप में रचनाएँ प्रकाशित। एक हजार से अधिक रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। 'बागपत के खरबूजे' पर युवा ज्ञानपीठ पुरस्कार तथा तेरह राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित। अनेक व्यंग्य अंग्रेजी, बल्गारियन, मराठी, उर्दू, बँगला, पंजाबी और गुजराती में भी अनूदित।

राजधानी के तेजस्वी गतिय ट्रैफिक में 'सावधानी हटी कि दुर्घटना घटी' सिद्धांत चलता है। वाहनधारी कैसे सावधान रहें, इसके लिए फिलहाल यही योजना कारगर है कि गाय को चौराहों पर भेज दिया जाए, ताकि वाहन चालक उन्हें माता मान खुद ही सावधानी का पाठ पढ़ लें। गौ-हत्या पाप है, अपराध नहीं, हम संस्कारी हैं, हम अपराध से नहीं, पाप से डरते हैं। गो माता को चोट न पहुँचे, अत: सावधानी से ड्राइव करते हैं। यदि चौराहों पर गाय न बैठी हों, दुर्घटनाएँ तीन गुनी अधिक होंगी—ऐसा एक्सीडेंट विशेषज्ञों का मानना है।

इस शहर में कांजीहाउस है तो जरूर, पर गाय पकड़कर यहाँ लाई नहीं जातीं, ठीक वैसे जैसे कि हाई स्कूल है, पर वहाँ टीचरों की भरती कर पढ़ाई नहीं कराई जाती। जनता अस्पताल हैं, पर डॉक्टर पर्याप्त नहीं हैं। कुत्ता पकड़ने की ब्रिगेड है, पर कोई भी खुलेआम कुत्तागिरी कर सकता है, उसे आश्रय देने की उचित व्यवस्था अलबत्ता बेहतर है।

हम भी विचित्र हैं। दूध भैंस का पीते हैं, गुणगान गाय का करते हैं। महात्मा गांधी बकरी का पीते थे, पर माता गाय को ही कहते थे। गांधी के देश में मौसम बारिश का हो न हो, कीचड़ भरपूर होता है। पूरा देश कीचड़मय हो रहा है। कीचड़ में शूकर रह सकते हैं, भैंस भी रह सकती है, पर गाय नहीं, वह कीचड़ छोड़ सड़कों पर आ जाती है। सड़कें अपेक्षाकृत साफ हैं, गाय व उसके परिवार को भाती हैं और इस तरह हर चौराहे पर गौशाला का अभूतपूर्व दृश्य विद्यमान हो जाता है।

अथ चौराहा गौशाला नाम वृत्तांत समाप्तम्। हे गौभक्तो, अब आप भी घर से निकलें और चौराहे पर जाकर गाय माता को प्रणाम कर आशीर्वाद ग्रहण करें। जय गाय मय्या!

६५, साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-३ पश्चिम विहार
नई दिल्ली-११००६३
दूरभाष : ९८१८९८८२२५

उसको क्या नाम दूँ?

● मृदुल कीर्ति

सकल ब्रह्मांड एक विशेष अदृश्य तरंगों से संचालित है। यह अनूठा जगत् है, जिसमें तरंगवाद का दर्शन तरंगित है। इन तरंगों का जगत् इतना सूक्ष्म है कि उसे किसी से अलग नहीं किया जा सकता। इस तरह प्रत्येक मानव का परस्पर तरंगों से समन्वय और संबंध है। यह तरंगित समन्वित संबंध ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की आत्मा है। कदाचित् इसी तरंग के रिश्ते को 'डिफीन' ने निभाया। अब आपको सब विस्तार से बताती हूँ कि यह तरंगित रिश्ता और 'डिफीन' कौन है, क्या है और कैसे है? प्रवासी होने के संदर्भ में यह घटना कुछ कहती है।

ख्यातिलब्ध लेखिका। वेद, उपनिषद्, हरिगीतिका आदि का पद्यात्मक रूपांतरण। वेदों पर शोध कार्य; अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में भागीदारी।

अमरीका में नवंबर माह के अंतिम सप्ताह में 'थैंक्स गिविंग डे' होता है। इस दिन वर्ष में एक बार पूरा अमेरिका बंद रहता है। अत: अधिकांश लोग घूमने जाते हैं। हम लोग—मेरा बेटा, बेटी, उसकी बेटी, मैं और प्यारा पप्पी, जिसका नाम मफिन है, सब पनामा बीच सिटी (फ्लोरिडा के पास) घूमने गए। यह बहुत सुंदर और प्रसिद्ध समुद्र का किनारा है। सबने दो दिनों तक खूब मजे किए। २६ नवंबर, २०११ की घटना है। शाम को हम लोग प्रसन्न मन से वापस लौट रहे थे। सड़क बिल्कुल खाली थी, आगे-पीछे कोई भी व्यवधान नहीं था। कार तेज गति में थी कि अचानक कार बाएँ हाथ को मुड़ी और डिवाइडर से टकराकर ऊपर करीब ५० फीट हवा में जाकर घूम गई और उसी फोर्स से सड़क पर गिरी। गिरने का फोर्स इतना था कि एस.यू.वी. कार से ड्राइविंग सीट की कोहनी से निकलकर सड़क पर थी और हम सब अंदर बेहोश थे। किसने ९११ को फोन किया, हम सब कैसे हॉस्पिटल पहुँचे, हम लोगों को कुछ नहीं पता। हॉस्पिटल में हड्डियों के टूटने के कारण बार-बार हमें दवा से सुला दिया जाता था। चेतना आने पर 'मफिन कहाँ है', पूछने पर किसी ने बताया कि डेस्क पर एक फोन आया है कि जिन लोगों का एक्सीडेंट हुआ है, उनका डॉग मेरे पास सुरक्षित है। कृपया उनसे कह दो चिंता न करें और उनकी जींस में मैंने अपना कार्ड रख दिया है, जब संभव हो तो बात कर लें।

दो दिनों के बाद जींस में मिले कार्ड पर फोन मिलाया तो बहुत ही आत्मीयता और संवेदना भरे स्वर तथा भाषा में एक महिला ने बात की। जिसका सार है—

'मेरा नाम डिफीन है और दूर से ही मैंने आपकी कार को हवा में उछलते देख लिया था। कार के अंदर से ही ९११ को मैंने फोन कर दिया था और आपके डॉग को जैसे ही उठाया तो वह खड़ा नहीं हो पा रहा था, सीधे पशु चिकित्सालय में ले गई, वहाँ पता चला, उसका पैर टूटा है। उसका प्लास्टर करवा दिया है। दवा भी दे रही हूँ। आपका बहुत भीषण एक्सीडेंट हुआ है, किंतु प्रभु ने आपकी रक्षा की है, मैं आप सबके लिए चर्च में प्रार्थना करती हूँ। कृपया पप्पी का नाम बता दें, जिससे मैं उसे पुकार सकूँ। मैं जल्द ही समय मिलते ही आप सबको देखने आती हूँ।'

अगले दिन 'डिफीन' अपने पति के साथ ऑफिस से छुट्टी लेकर एक घंटे की ड्राइव करके हम सबको देखने आई। साथ में एक बुके लाई, जिसमें प्लांट थे, जो आज भी मेरे घर हरा-भरा है। तुलसी का पौधा और 'डिफीन' का दिया प्लांट एक साथ ही रखे हैं। दोनों मेरे लिए एक जैसा मूल्य रखते हैं। तुलसी में पूजा है तो पौधे में पूजा जैसा आचरण करनेवाले भाव की सुगंध है। पूजा जब आचरण में उतरती है तब ही चरितार्थ होती है।

इस बिंदु पर आकर मैंने स्वयं से पूछा, 'मृदुल, तुम ऐसे किसी का एक्सीडेंट देखतीं तो क्या तुम उसके डॉग को हॉस्पिटल ले जाकर प्लास्टर करवातीं? या तुम अपना विजिटिंग कार्ड उसकी जींस में रखतीं?' मेरे सत्य ने कहा, 'नहीं।' मुझे लगा, मैं कितनी छोटी हूँ और मुझे 'डिफीन' बन पाने की लंबी यात्रा करनी है। 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' अभी सुंदर वाक्य भर है। 'डिफीन' ने बिना गीता पढ़े 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' चरितार्थ कर मुझे मेरा आईना दिखा दिया। आज मेरे पूरे परिवार के हृदय में उसके लिए विशेष स्थान है। 'डिफीन' कौन है, क्या है और कैसे है? इसे कौन डिफाइन कर सकता है।

डिफीन ने मफिन को दस दिनों तक रखा और यह तय हुआ कि हम रास्ते में एक पेट्रोल पंप पर मफिन को वापस देने के लिए मिलते हैं। वहाँ हम लोगों ने प्लास्टर में लगे खर्च के बारे में पूछा तो उसने बार-बार मना किया। हमने भी बार-बार पूछा तो बहुत ही संकोच से बताया कि ४५० डॉलर, जो भारत के लगभग तीस हजार रुपए बनते हैं। सड़क के किसी अनजाने एक्सीडेंट वाले व्यक्ति के डॉग को तीस हजार खर्च करनेवाला क्या कोई है, क्या मैं स्वयं हूँ। नहीं, कदापि नहीं। घर आकर डिफीन के अकाउंट में उतना डॉलर डाला तो देखा, एक महीने तक

उसने कैश भी नहीं कराया था, जबकि वह स्वयं मध्यम वर्गीय महिला है। जब भी धन्यवाद दो—सदा कहती है, यह मेरा कर्तव्य था, क्योंकि मेरी माँ ने कहा कि परेशानी किसी को कहीं भी और कभी भी आ सकती है। अत: कार की डिग्गी में सदा दो कंबल, पानी, फर्स्ट ऐड, बिसकुट और चप्पल रखना सिखाया। तब जाना कि यह माँ के दिए संस्कार थे, जो देश, जाति, भाषा, प्रवासी भाव से परे तरंगित संबंध को सिद्ध करते हैं, जिसे मैंने आरंभ में कहा है।

इसी घटना का दूसरा पक्ष है कि मेरे सिर में चोट आई, जिसे खानापूरी के अंदाज में हल्का सा कर दिया, जबकि खून बह-बहकर टपक रहा था, कमर में बेहद दर्द, जिसे पेन किलर देकर टाल दिया और डिस्चार्ज कर दिया। डिस्चार्ज के बाद बेहद दर्द में गोली माँगती रही, किंतु नहीं दी और इन सबका बिल आया ढाई लाख।

फिर प्राइवेट डॉक्टर को दिखाया तो दो बैक बोन टूटी थीं, जिस पर ध्यान भी नहीं दिया। यहाँ हॉस्पिटल की नियमावली बहुत पेचीदा और अजीब है। जिसके पास इंश्योरेंस न हो, उसे बहुत परेशानी का सामना करना होता है। डेंटल तो यहाँ गजब का महँगा है। यहाँ स्वस्थ रहना बहुत जरूरी है।

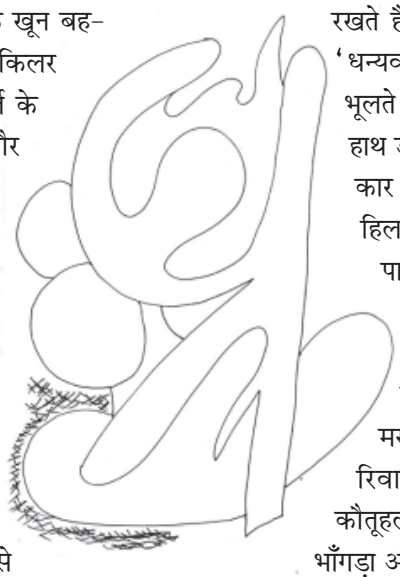

☐

लंबी यात्रा के दौरान मदर डेयरी के एक छोटे से आइसक्रीम पार्लर पर रुके तो वहाँ के बाथरूम से अमेरिकन लेडी बाहर आई और मुझे अपना पर्स खोलकर टिश्यू पेपर देते हुए बोली, 'मैम, आई एम सो सॉरी देट देअर इज नो टॉयलेट पेपर, वुड यू लव टू यूज दिस टिशू पेपर ?'

मैं दंग रह गई, क्या दूसरों के लिए कोई इतना भी सोच सकता है। हमारी सोच 'मैं, मेरा ममकार' से आगे नहीं जा पाती। मुझे लगा, मैं फिर हार गई, क्योंकि अनजान और वह भी प्रवासी (चेहरे से देश का पता तो चलता ही है) अनजान की सुविधा को सोच पाना एक ऊँची मानसिकता का परिचायक है।

☐

एक सुबह टहल रही थी, पीछे से आवाज आई—कम ऑन ब्वॉय, यू कैन वॉक, गॉड हेज ब्लैस्ड यू, कम ऑन, जस्ट ट्राई मोर।

कोई भी यही सोचेगा कि किसी छोटे बच्चे से बात हो रही है। पीछे मुड़कर देखा तो डॉग, जिसके पिछले दोनों पैरों के नीचे दो पहिए हैं और जिसका पेट बेल्ट से कसा हुआ है। जब वह आगे के दो पैर बढ़ाता है तो पीछे के पहिए चलने लगते हैं। पशु के प्रति भी सेवा का ऐसा उदात्त भाव देखकर मन द्रवित हो गया।

यहाँ जो भी अपने डॉग को घुमाने निकलता है, उसके पट्टे में एक छोटा सा बॉक्स होता है, जिसमें प्लास्टिक बैग होते हैं, जिसमें मालिक स्वयं डॉग का विसर्जन उठाता है, जिसे मैं प्रतिदिन सुबह अपनी खिड़की से विस्मित होकर देखती हूँ। कोई किसी दूसरे का लॉन गंदा नहीं कर सकता। यह अपना देश साफ रखने की पराकाष्ठा का सबसे प्रमाणित नमूना है। जो हेय समझा जाता है, उसे ये सहज रूप में करते हैं। कूड़ा कूड़ेदान में फेंकना तो जैसे ये गर्भ में ही सीखकर आते हैं। मजाल है कि कहीं आपको एक कागज का टुकड़ा भी मिल जाए। पेड़ों के पत्ते भी जैसे कहना मानते हैं।

सार्वजनिक बाथरूम (रेस्ट रूम) की सफाई देखने लायक होती है। व्यक्तिगत जीवन में ये न हस्तक्षेप करते हैं और न ही पसंद करते हैं। कभी लाइन में भी खड़े हों तो एक निश्चित दूरी बनाकर रखते हैं। यदि छू जाएँ तो कई-कई बार 'सॉरी' बोलते हैं। 'धन्यवाद' और 'क्षमा करना' जैसे शब्द कहना कभी नहीं भूलते। कोई भी कहीं जा रहा हो, यदि आँख मिल गई तो हाथ उठाकर विश करते हैं, मुसकराते हैं। यहाँ तक कि यदि कार भी चला रहे हों तो स्टीयरिंग पकड़े हुए ही उँगलियाँ हिलाकर आपकी उपस्थिति को स्वीकारते हैं। समय के पाबंद और नियमों का पालन यहाँ की विशेषता है।

रविवार को चर्च में जाना इनका नियम है। धर्म-निरपेक्षता के परिप्रेक्ष्य में अमेरिका में सभी धर्मों को संरक्षण और मान मिला हुआ है। अत: यहाँ मंदिर, मसजिद, गुरुद्वारा आदि सभी हैं और सभी अपने परंपरागत रिवाजों एवं त्योहारों को अपने तरीके से मनाते हैं। कौतूहलवश अमेरिकन भी जाते हैं और भाग लेते हैं, जैसे भाँगड़ा और गरबा आदि में।

आध्यात्मिक जिज्ञासा और योग के प्रति रुचि भारत को अमेरिका से आंतरिक रूप से जोड़ती है। सहज मार्ग के संदर्भ में अपनी अनुभूति बताती हूँ। जिन अमेरिकी लोगों ने ध्यान का अभ्यास आरंभ किया है, उनकी लगन, निष्ठा और प्रयत्न देखते ही बनता है।

यहाँ ध्यान के लिए सहज मार्ग आश्रम है, जहाँ पूरे दिन की ड्राइव करके ध्यान के लिए आते हैं। उनसे अंतरंग बातचीत के दौरान पता चलता है कि वे नियम से सुबह पाँच बजे ध्यान करते हैं और छह बजे जॉब को निकल जाते हैं। ध्यान की अनुभूतियों के इतने सारगर्भित तथ्य बताते हैं कि आप भी चकित रह जाओ।

वैज्ञानिक प्रगति के इस युग में सारा विश्व सिमटकर करीब आ गया है। सब एक-दूसरे की सभ्यता, संस्कृति, भाषा, परिधान, भोजन, रीति-रिवाज, त्योहारों से परिचित हैं। बात तो यह है कि हम क्या लेते और देते हैं। सीखने को बहुत है, सिखाने को भी बहुत है।

प्रवासी के संदर्भ में मैंने अपनी अनुभूतियाँ और भोगे हुए सत्यों को उजागर किया है। इस भौतिक शरीर के भीतर एक अभौतिक तत्त्व विद्यमान है, जिसे आत्मा कहते हैं।

4854 Kentwood Drive
Marrietta GA 30068
Mob. No. 7703301970

कहानी

नाम में क्या रखा है

● कविता विकास

बहुत दिनों के बाद घर के कामों का आज जल्दी निबटारा हो गया था। बालकनी में बैठकर कई दिनों से पड़ी हुई पुस्तकों और अखबारों को देखना शुरू किया। यों तो बासी अखबारों को देखना ठीक नहीं लगता, पर उनमें से किसी अच्छी रेसिपी को काटकर रख लेना मेरी पुरानी आदतों में शामिल है। अभी कैंची लाने के लिए उठना ही चाह रही थी कि डाकिए की आवाज आई। देखा, माँ की चिट्ठी थी। माँ की चिट्ठी तभी आती है, जब कोई विशेष सूचना देनी होती है, वरना उन्हें चिट्ठी लिखने की आदत नहीं। लिफाफे को फाड़ते समय दिल धड़क रहा था, जाने किस पर कयामत आ पड़ी हो! वह संक्षिप्त सा पत्र था, 'बल्ला की हालत बहुत खराब है। वह जीवन की अंतिम घड़ियाँ गिन रही है। डॉक्टर ने कह दिया है, जिसे बुलाना चाहते हो, बुला लो। उसने तुमसे मिलने की इच्छा जाहिर की है। तू जितनी जल्दी हो सके, आ जा।' पर बल्ला मुझसे क्यों मिलना चाह रही है? मेरा उससे कोई खास रिश्ता या कोई ज्यादा लगाव न था। बस यों ही जब मायके में थी, उसके दु:ख-सुख की बात सुनती। कभी वह मिल जाती तो सलाह-मशविरा देकर उसके जख्मों पर मलहम लगा देती। अब मुझे जाना ही होगा। पर दोपहर तक तो इंतजार करना ही होगा, जब तक पतिदेव लंच लेने न आ जाएँ। आखिर गाड़ी का इंतजाम भी तो वही करेंगे। तब तक मैंने अपने दो-चार कपड़े और जरूरत की चीजों को समेटना शुरू कर दिया। बहुत अनमने भाव से बालकनी में आकर बैठ गई।

'बल्ला' सहसा एक काली, पर आकर्षक नाक-नक्शवाली आठ बरस की लड़की का विचार कौंध गया। बाईस साल की बल्ला, जब-जब उससे मिली थी, तब-तब की वयस्क होती बल्ला की कई तसवीरें और किस्से जेहन में उमड़ने लगे। वास्तव में उसका नाम 'बला' था, पर शब्दों के अपभ्रंश ने उसे 'बल्ला' बना दिया था। शादी से पहले और बाद में भी जब-जब माँ के घर रही, बल्ला से अवश्य मिलना होता। मेरी उत्सुकता उसके नाम में थी। भला कोई माँ-बाप अपनी संतान का नाम 'बला' क्यों रखेगा?

बल्ला के माँ-बापू ने एक अरसे से मेरे मायके की रियासत को सँभाल रखा था। सैकड़ों एकड़ जमीन में लहलहाते धान, गेहूँ के खेत और उनकी झूमती बालियाँ उनकी ही नेमत थी। पापा के अनेक रसूखदार

सुपरिचित लेखिका तथा शिक्षिका। 'लक्ष्य', 'कहीं कुछ रिक्त है', 'साझा' (काव्य-संग्रह)। 'हृदय तारों का स्पंदन', 'खामोश, खामोशी और हम', 'शब्दों की चहलकदमी' और 'सृजक' प्रकाशित। 'विशिष्ट हिंदी सेवी सम्मान', 'भारत गौरव सम्मान', 'नारायणी साहित्य अकादमी अवार्ड' एवं अन्य सम्मान।

थे, पर उन्हें बल्ला के पिता रामप्रसाद और माँ सिमनी पर सबसे ज्यादा विश्वास था। एक पूरा कस्बा पापा की जमींदारी से जुड़ा हुआ था। बल्ला की माँ को उस कस्बे में सभी 'सिमनी ताई' कहकर बुलाते थे। साँवले रंग की, छरहरी काया और बलखाती चोटी; बहुत खूबसूरत थी। माँ की रसोई सँभालने के बाद अपने पति का खाना लेकर खेत पर चली जाती। दिनभर पसीने से तरबतर रहनेवाली सिमनी ताई की साड़ी बदन से चिपक जाती, कभी लटों को सँभालती तो कभी आँचल को। उसके आस-पास काम करनेवाले मरदों की आँखों में चमक आ जाती। उसके इर्द-गिर्द चिरौरी करनेवालों की कमी नहीं थी। शिबू कुम्हार तो उसका दीवाना था। सिमनी इसका पूरा फायदा उठाती। कभी-कभी अपने काम भी उसे सौंपकर घुटने तक साड़ी उठाकर बैठ जाती। फिर क्या था, ढलके आँचल और गोरे-गोरे पाँव के नशे में शिबू कुम्हार बरतन माँजने से लेकर झाड़ू-बुहारू भी कर डालता। त्योहार-उत्सव के समय उसकी झोली कान की बालियाँ, चूड़ी, बिंदी, पायल आदि से भर जाती। रामप्रसाद को उसकी यह आदत अच्छी नहीं लगती, पर सिमनी के तीखे तेवर के आगे उसकी एक न चलती।

उनके विवाह के दो साल बाद 'बल्ला' का जन्म हुआ। बल्ला का चेहरा न बाप से मिलता था, न माँ से। पूरे कस्बे में आग की तरह यह खबर फैल गई कि सिमनी ताई को काली लड़की पैदा हुई है। मैं उस समय कॉलेज में पढ़ती थी, पर इस हंगामे की सूरत अब तक याद है। चौपाल पर बैठी औरतें दबी जुबान में बातें करतीं कि उसका रूप-रंग शिबू से मिलता है। एक दिन अरहर के खेत में उसे अकेला पाकर शिबू ने अपनी मीठी-मीठी बातों में उसे फँसा लिया या यों कहें कि एक बड़े लालच में फँसकर उसने आत्मसमर्पण कर दिया। हफ्ते भर बाद सिमनी की उँगली में सोने का छल्ला देखा जाने लगा। किसी के पूछने पर बड़ी इतराकर कहती, 'हम थोड़ी न माँगे, जिसको देना है, ऐसे ही दे जाता

है।' उसके बाद सिमनी ताई की उल्टियाँ शुरू हो गईं। बात जो भी हो, रामप्रसाद ने इस बच्ची को कभी नहीं अपनाया। उसके जन्म के हफ्ते भर बाद रामप्रसाद की माँ चेचक की चपेट में आकर चल बसी। अब तो रामप्रसाद उसे मनहूस समझने लगा और एक 'बला' समझकर उससे नफरत करने लगा। तभी से उसका नाम 'बला' पड़ गया।

समय अपनी रफ्तार से चलता रहा। बल्ला अपनी गोल-गोल आँखों को मटकाकर बातें करती। भरी दुपहरिया में उसकी माँ उसे बरामदे में लिटाकर कामों में लग जाती। वहीं बोरे पर पड़ी-पड़ी बल्ला ने करवट बदलना सीखा, फिर बैठना और फिर चल पड़ी। पाँच साल की उम्र में स्थानीय विद्यालय में उसके दाखिले का वक्त आया। इस बीच सिमनी ताई को एक बेटा भी हो गया। जिस दिन दाखिले के लिए उसका बाप उसे लेकर स्कूल गया, उसी दिन उसे खबर मिली कि एक कार दुर्घटना में रामप्रसाद के बापू की मृत्यु हो गई। ऐन मौके पर खीज से भरे रामप्रसाद ने बल्ला का नाम लिखवाया, 'परलय'; मास्साब ने अचरज से कहा, 'यह कैसा नाम है?' राम प्रसाद बल्ला को वहीं पर कोसते हुए कहने लगा, 'और क्या नाम रखूँ? जन्म के साथ मेरी माँ को खा गई और अब विद्या ग्रहण की शुरुआत में बापू को। जाने आगे और क्या-क्या गुल खिलाएगी।'

बल्ला से जुड़ी कई बातें याद आने लगीं। दरवाजे पर कॉलबेल की आवाज से विचारों से बाहर आई। लंच टाइम हो गया था, पतिदेव आ गए थे। टेबल पर खाना लगाते हुए माँ की चिट्ठी के बारे में बताया। खाने के समय भी मन अनमना सा रहा। पतिदेव ने कल सवेरे की गाड़ी कर दी। खाने के बाद आँख बंद करके लेटने की कोशिश करने लगी, पर यादों का काफिला रुकने का नाम ही नहीं ले रहा था। पति के वापस ऑफिस जाने के बाद अलमारी से पुराना एलबम निकाला। बल्ला की एक तसवीर थी, जिसमें वह पुस्तकों के मध्य बैठी हुई थी। मुझे वह घड़ी याद आ गई। बल्ला अपनी माँ के काम खत्म होने का इंतजार कर रही थी। इन सभी छोटे-छोटे अवसरों में भी वह खाली नहीं बैठती। अपना बस्ता लेकर आती और बरामदे में बैठ पढ़ाई करना आरंभ कर देती। उस समय वह नवीं कक्षा में थी। पढ़ाई में अव्वल। किशोरावस्था में पाँव रखते ही गजब की चमक उसके चेहरे पर आ गई थी। एक ऐसी कशिश थी कि लगता था, देखती रहूँ। उसी समय चुपके से यह तसवीर मैंने अपने कैमरे में ली थी। एलबम बंद कर दी। मैंने उस समय पूछा था, 'कैसी पढ़ाई चल रही है बल्ला?' अचानक मुझे खड़ा देखकर वह चौंक गई। 'ठीक दीदी, अब सालाना परीक्षा है। जमकर मेहनत करनी है।'

'अच्छा दीदी, एक बात बताओ। दसवीं के बाद मैं कहाँ जाऊँ? यहाँ तो इतनी ही कक्षाएँ हैं।' मैंने कहा, 'बीजापुर सबसे नजदीकी शहर है। तुम तो अच्छे नंबर लाती ही हो। वहीं से इंटर कर लेना।'

'लेकिन दीदी, मैं अपना नाम बदलना चाहती हूँ। क्या मैं परलय हूँ?'

'नहीं रे, तू तो कितनी अच्छी लड़की है। खूब तेज, खूब मेहनती। यह तो अशिक्षित माँ-बाप की सोच है, जो लड़की को बला समझते हैं और किसी अपशगुन से जोड़कर देखते हैं। जिसकी जितनी जिंदगी लिखी है, उतनी ही रहेगी, चाहे किसी का जन्म हो, चाहे न हो। वैसे तू क्या नाम रखना चाहती है अपना?' मैंने पूछा।

'रजनीगंधा।'

'दीदी, मैं 'रजनीगंधा' रखूँगी।' मैंने मास्साब को कह भी दिया है कि अगले साल वे मेरा यही नाम रजिस्टर में लिखें। सब कहते हैं, मैं रजनी की तरह काली हूँ। पर काली हूँ तो क्या हुआ, मैं पढ़ाई से अपनी खुशबू बिखेरूँगी। मैं खेतों में काम नहीं करूँगी।' अपने नाम का इतना अच्छा विश्लेषण किया था उसने। बल्ला के बहुत से सपने थे। कोमल उम्र की दहलीज पर पाँव रखते ही जो सपने हर युवती के मन में होते हैं—एक बड़े घर में ब्याह रचाना, दफ्तरवाली नौकरी करना, घर में ऐशो-आराम के साधन होना आदि-आदि। उसके बाद पता नहीं उसने अपना नाम बदला कि नहीं? फिर मैं शहर आ गई। अपनी नौकरी और गृहस्थी में रम गई। मायके जाकर ज्यादा दिन रहना अब मुनासिब नहीं होता। जब दशहरे की छुट्टी में मायके जाना हुआ, तब माँ से पूछा, 'बल्ला कैसी है माँ? कहाँ है वह, पढ़ाई पूरी हुई कि नहीं?' माँ ने कहा, 'अरे मत पूछ, वह तो आफत की पुड़िया थी। उसके साथ कुछ-न-कुछ मुसीबत लगी ही रहती थी।'

'क्यों क्या हुआ, शहर पढ़ने गई तो कुछ हो गया क्या?'

'शहर? शहर कब गई वह? दसवीं कक्षा तक जाते-जाते यहाँ के मनचलों से ऐसी घिरी रहती थी कि माँ-बाप ने उसका घर से निकलना बंद कर दिया। उसकी जिद पर माँ ने दसवीं पास कराने तक की जिम्मेवारी ले ली। पर बरसात का पानी भला किसी के रोके रुका है। मुझे जिस बात का डर था, वही हुआ। एक दिन स्कूल गई तो वापस नहीं आई।'

'क्या?' मेरे मुँह से निकला, 'पर वह तो शहर जाकर बहुत पढ़ना चाहती थी।'

'केवल इच्छा होने से क्या हुआ, वैसा माहौल भी तो होना चाहिए। जवान होती लड़कियों को अच्छा समझानेवाला कोई न मिले तो पैर बहकते देर थोड़ी न लगती है। इस उम्र में बच्चों की अपनी दलील होती है।' माँ ने कहा।

माँ की बात भी ठीक थी। मैंने पूछा, 'क्या हुआ माँ? खुलकर बताओ।'

माँ ने बताया, 'एक दिन वह स्कूल गई तो वापस नहीं लौटी। पता चला कि चौधरी का बेटा, जो वहीं स्कूल में टीचर था, उसके साथ भाग गई। चौधरी ने चारों तरफ अपने आदमी फैला दिए। यहाँ से दो सौ तीस किलोमीटर दूर रोगदा गाँव में दोनों मिले। वहाँ चौधरी की विधवा बहन रहती थी। उसी ने चुपके से भाई को फोन करवा दिया था। चौधरी का गुस्से के मारे बुरा हाल था। मिली-भगत दोनों की थी, पर सजा केवल बल्ला को मिली। बीच सड़क पर उसे नंगा करके बेंत बरसाए गए।' इतना सुनाते-सुनाते माँ का चेहरा भी आवेश से भर गया, मानो चौधरी ने जो किया, वह इकतरफा न्याय था।

मैंने कहा, 'किसी ने चौधरी को रोका नहीं?'

'कौन रोकता, सबको आगे बढ़ने की मनाही थी। लड़की भी ऐसी जीवट थी, देह छलनी हो गई, पर आँख से एक बूँद पानी नहीं। कहती रही, मास्साब ने ही उसे शहर घुमाने और आगे पढ़ाने का वास्ता दिया था। वह उसकी चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गई। बस, यही उसकी गलती थी। अधमरा करके उसे बीच रास्ते पर छोड़ दिया।' माँ की बातों को सुनकर मन उदास हो गया।

हमारे समाज का कैसा दस्तूर है! उच्च जाति के लड़के का कोई दोष नहीं दिखता। समरथ के न दोस गुसाईं। सारी यातना उस मासूम के हिस्से आई। माँ ने बताया कि दूसरे दिन से सिमनी ने काम पर आना छोड़ दिया। रामप्रसाद भी दो-तीन महीने के लिए बेटे के पास चला गया, जो दूसरे जिले में पढ़ाई कर रहा था। मैंने सोचा कि बेटी की बदनामी से आहत होकर कुछ दिनों के लिए ये लोग गाँव छोड़कर चले गए हैं। रामप्रसाद तो लौट आया, पर दो साल तक सिमनी नहीं लौटी। उसके जाने के करीबन छह-सात महीने के बाद सिमनी का एक खत आया। बड़े ही टूटे-फूटे अक्षरों में लिखा था— 'ठकुराइन, मैं बल्ला के साथ अपनी बुआ सास के यहाँ आ गई हूँ। उस दिन बेटी को मार-मारकर चौधरी ने लहूलुहान कर दिया था। चौधरी का ऐसा आतंक कि मन-ही-मन लोग उसके बेटे को गाली दे रहे थे, पर किसी ने आगे बढ़कर उसे रोकने की हिम्मत नहीं की। माँ की जात हूँ। चौधरी के पैर पकड़ लिये। मैंने कहा, 'रहम करो, सरकार एक बार, इसे लेकर यहाँ से चली जाऊँगी, फिर कभी वापस नहीं आऊँगी। छोटे सरकार की कोई गलती नहीं है। सब किया-धराया इसी कलंकिनी का है।' बहुत गिड़गिड़ाने के बाद उसने उसे छोड़ा और हिदायत दी कि जितनी जल्दी हो सके, रातोरात इसे गाँव से बाहर ले जाओ। और ध्यान रखना, इसके पाँव यहाँ दुबारा न पड़ें।

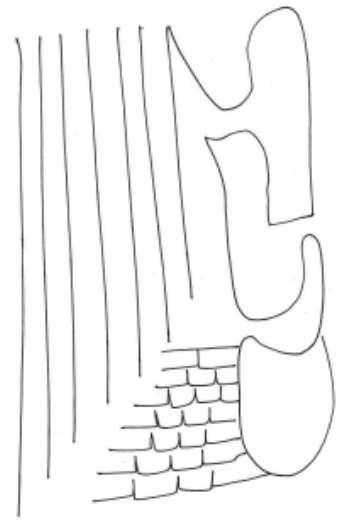

'मेरा आदमी भी चौधरी का साथ दे रहा था, ठकुराइन। वह चाहता था, कस्बे के बाहर क्यों जाए, यहीं जहर देकर इसे मार दिया जाए। मैंने बड़ी मुश्किल से उससे छुटकारा पाया और किसी तरह बल्ला को ले कस्बे से बाहर आ गई। सीमा पार की एक अकेली औरत ने, उसकी हालत पर तरस खाकर हमें रहने की जगह दी। वहीं उसका उपचार चला। तीन दिन रहने के बाद मैं बालमपुर चली आई। बल्ला को छोड़ने का मन नहीं होता था। पहली बार जाना कि औलाद का प्यार क्या होता है। मैं यहीं ठेके पर बालू ढोने का काम करने लगी हूँ। अब तो बल्ला के हाथ पीले कर सुरक्षित हाथों में सौंपकर लौटूँगी—सिमनी।'

माँ से बल्ला की यह कहानी सुनकर मन दु:खी हो गया। उससे एक अनजाना सा लगाव हो गया था। मायके से लौटकर अपनी दिनचर्या में रम गई। फिर कभी खयाल उसका भी नहीं आया। कभी-कभी किटी पार्टियों में स्त्री सशक्तीकरण पर चर्चाएँ होतीं तो विपरीत परिस्थितियों में जीवट स्त्री की पारी खेलनेवाली महिलाओं में उसका नाम मैं शुमार करती। इससे ज्यादा और कुछ नहीं। आज अचानक पाँच साल बाद माँ के पत्र ने एक बार फिर मुझे झकझोर दिया। कितनी परतों में दबी पुरानी बातें चलचित्र की तरह गुजर गईं।

दूसरे दिन सवेरे ही कार से निकल गई। ड्राइवर का पहचाना हुआ रास्ता था और सुबह के समय खाली रोड। पाँच घंटे के बाद करीबन ग्यारह बजे हम बेलापुर पहुँच गए। माँ मेरी मनोस्थिति समझ रही थीं। उन्होंने कहा, ''मैंने रात को रामप्रसाद को संदेश भिजवा दिया था कि तुम कल सुबह पहुँच रही हो। वह अभी तुमसे मिलने आएगा, तब तक तुम खा-पीकर आराम कर लो।'' माँ से मैंने बाकी रिश्तेदारों की थोड़ी जानकारी ली और उनकी तबीयत आदि के बारे में बात करते-करते माँ की बगल में लेट गई। फिर पूछा, ''क्या हुआ है माँ बल्ला को, जो भरी जवानी में मौत के एक-एक दिन गिन रही है? शादी-ब्याह तो सिमनी ताई ने करवा दी थी न?''

माँ ने कहा, ''हाँ, दो-ढाई साल के बाद सिमनी यहाँ लौट आई थी, बल्ला के हाथ पीले करके। पर बेटी, क्या किस्मत लेकर आई थी यह लड़की! जिस ठेकेदार के यहाँ सिमनी काम करती थी, उसी के मुंशी का बेटा बलवंत उस पर रीझ गया। पहले तो उसके बाप ने ना-नुकुर की, फिर राजी हो गया। लड़के की जिद के आगे उसे झुकना पड़ा। लड़के और उसके बाप ने यह बात छुपाई थी कि बलवंत पहले से ही शादीशुदा था। वह औरत बाँझ निकली। संतान की चाह में इसने बल्ला से दूसरी शादी रचाई। खैर, जो होना था हो गया।''

मैंने पूछा, ''बल्ला तो बड़ी उग्र हो गई होगी, वह तो छल-कपट बरदाश्त नहीं करती थी।''

''हाँ, सिमनी बता रही थी कि वह बलवंत को कहती थी कि तुमने प्यार भी किया तो झूठ के आधार पर, एक बार तो सच बता दिया होता, फिर मुझे दूसरी पत्नी होने का कोई गिला नहीं रहता। शुरू से विपदा की मारी बल्ला को सुरक्षित हाथों में सौंपकर सिमनी यहाँ आ गई। वह तो तीन-चार महीने के बाद बल्ला की एक चिट्ठी से यह खुलासा हुआ। कभी अपने दुर्भाग्य पर न रोनेवाली बल्ला समय की मार के आगे पस्त हो गई थी। उसकी सास और बलवंत की पहली औरत रेवा उसे नौकरानी समझती थीं। दिनभर काम करवातीं और समय से खाना-पानी कुछ न देती। पर बलवंत उसे बहुत मानता था। उसके घर पर रहने पर सब ठीक रहते। उसके दो मीठे बोल दिनभर की उसकी थकान उतार देते। शारीरिक रूप से बेहद कमजोर बल्ला पेट से थी और छठे महीने के बाद उसे पीलिया हो गया। उचित खान-पान न मिलने के कारण उसकी दशा बिगड़ती गई। कहते हैं कि उसे लिवर कैंसर की शिकायत थी, जिसके बारे में थोड़े दिन पहले पता चला। उसने बेटी जनी है।''

क्या एक बार फिर से बल्ला का पूरा जीवन-वृत्त मेरी आँखों के

सामने से गुजर गया।

''बच्चे के जन्म के समय डॉक्टर ने जवाब दे दिया था कि उसका बचना मुमकिन नहीं है। तब सिमनी उसे लिवा लाई है। रामप्रसाद उसे नहीं जाने देना चाहता था। कहता था कि इस बार गई तो दुबारा नहीं आना। पर मैंने ही समझाया, ''अरे, दुश्मन भी मर रहा हो तो शिकायतें दूर हो जाती हैं। यह तो तुम्हारी बेटी है। तू भी जा, उसे ले आ और साथ में उसका परिवार भी आना चाहे तो रोकियो नहीं।'' मुझे माँ की बातों से लगा कि परोक्ष रूप से माँ भी सिमनी और बल्ला से काफी जुड़ गई थी। दोपहर में खाना खाकर हम उठे ही थे कि रामप्रसाद और बलवंत मेरे पास आए। रामप्रसाद काका में ज्यादा बदलाव नहीं आया था, बस यही कि बाल पूरे सफेद हो गए थे। बलवंत मँझोले कद का सुंदर लड़का था। मैंने उसे गौर से देखा। बल्ला की बीमारी ने उसे भी तोड़ दिया था। बेहद उदास और जिंदगी से हारा हुआ इनसान लग रहा था। मैंने उसे समझाया, ''बल्ला की खुशियों के आधार तुम ही थे। उसके सामने हिम्मत से काम लेना। अब बच्ची की जिम्मेवारी तुम पर है।'' बहुत ही सुलझे हुए बच्चे की तरह उसने सिर हिलाया।

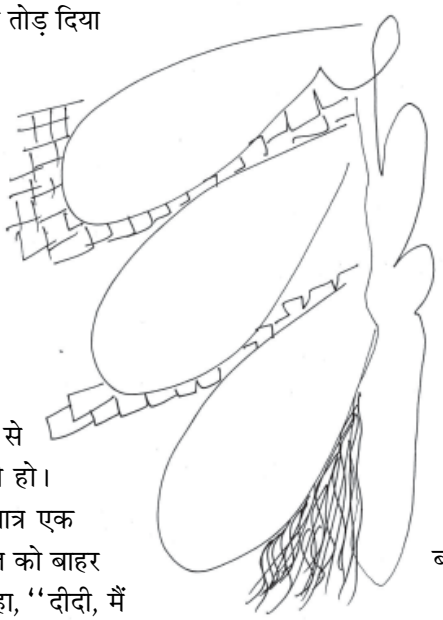

वे दोनों मुझे लेने आए थे। रास्ते में ज्यादा बातचीत नहीं हुई। जिस कमरे में बल्ला सोई हुई थी, हम सीधे वहीं गए। मेरे आने का आभास उसे हो गया था। उसने पीली-पीली, निस्तेज आँखों से मेरी ओर देखा। लगा, जैसे मेरे चेहरे को पढ़ रही हो। हमेशा खिली-खिली रहनेवाली बल्ला की देह मात्र एक गठरी में सिमट गई थी। मैंने रामप्रसाद और बलवंत को बाहर जाने का इशारा किया। टूटे-फूटे शब्दों में उसने कहा, ''दीदी, मैं जन्म लेते ही दादी को खा गई। विद्यारंभ के समय बाबा को। घर में अनहोनी आई तो मेरे कारण, बाहर भूकंप आया तो मेरे कारण। जाने किस मुहूर्त में मेरा जन्म हुआ था। मेरी बेटी के जन्म के सामय मुझे यही चिंता है कि कहीं उसे भी आजीवन इन्हीं उलाहनों के साथ न जीना पड़े। मैं तो नहीं रहूँगी, पर दीदी, मेरे आदमी को समझाना कि यह मनहूस नहीं है।'' उसने दूर खाट पर सोई हुई बेटी की ओर इशारा करते हुए कहा, ''सब अपने कर्मों का फल है। वह अच्छा इनसान है, वह समझ जाएगा कि मेरी बेटी मेरी मौत की जिम्मेदार नहीं है।''

''ऐसा ही होगा, बल्ला'', मैंने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, ''यह नन्ही सी जान तुम्हें सारे दुःखों से मुक्ति दिलाने आई है।''

''मेरे दिल से बोझ उतर गया दीदी, अब मैं चैन से मर पाऊँगी।'' कहते हुए उसने आँखें बंद कर लीं। उसके चेहरे पर निश्चिंतता का भाव देखकर मुझे अच्छा लगा। मैं बाहर आ गई। बाहर सिमनी ताई बलवंत के माँ-बापू को चाय पिला रही थीं। उसके काम में बलवंत की पहली पत्नी रेवा भी हाथ बँटा रही थी। सिमनी ताई ने मुझे भी चाय पीकर जाने को कहा, पर बल्ला से मिलने के बाद मेरा वहाँ ठहरने का मन नहीं था।

घर लौटकर मैंने माँ को बल्ला की हालत के बारे में बताया। मेरी आँखों से आँसू निकल पड़े। जाने कब मेरे प्रति बल्ला ने अगाध प्रेम पाल लिया था। पूरे कस्बे में और किसी पर भरोसा नहीं था उसे, इसलिए मुझे प्रेमपूर्वक बुलवा भेजा। मुझ पर एक बड़ी जिम्मेदारी थी। मैंने ड्राइवर को भेजकर बलवंत को बुलवा लिया। बलवंत इस आकस्मिक बुलावे पर हैरान था। मैंने उससे कहा, ''तुम बेटी को प्यार करते हो, बलवंत?'' ''बहुत ज्यादा जीजी, जो सुख मैं बल्ला को नहीं दे सका, वो इसे दूँगा।'' एक लंबी साँस लेकर कहने लगा, ''बल्ला ने ही तो मुझे पिता होने का सुख दिया है। मैं उसे भी बहुत चाहता हूँ।'' मैंने उसकी जीविका, माँ-बाप और उसकी पहली पत्नी; सबके बारे में जानकारी ली, ''तुम्हें ऐसा तो नहीं लगता न कि तुम्हारी बेटी की वजह से बल्ला की जान जा रही है?''

''नहीं तो, बल्ला की बीमारी के लक्षण तो बेटी के पेट में आने के पहले ही हो गए थे। उसका इलाज चल रहा था, पर वहाँ के डॉक्टर को बीमारी की पकड़ देर से हुई। बल्ला के गर्भवती होते ही मेरी पहली पत्नी का भी स्वभाव बदल गया है। वह कहती है कि उसकी संतान से वह भी माँ कहलाने का सुख भोगेगी।''

बलवंत सचमुच अच्छा इनसान था। मैंने उसे बेटी को अच्छे से पाल-पोसकर बड़ा करने की सलाह दी। अपना पता और फोन नंबर भी दिया और कहा, ''भविष्य में बच्ची के लिए कोई मदद की जरूरत हो तो बेहिचक मुझसे संपर्क करना।'' बलवंत चला गया।

शायद मुझसे मिलने के लिए ही बल्ला जीवित थी। दूसरे दिन तड़के ही उसकी मृत्यु की खबर आई। मैं उस समय सोकर उठी थी। एक तरह से अच्छा ही लगा कि जिस कष्ट में मैंने उसे देखा था, उससे मुक्त हो गई। जीवन भर वह अभिशप्त आत्मा बनी रही। जाने किस जन्म का दुःख काट रही थी; भगवान् अब उसकी आत्मा को शांति दे। नित्यकर्म से निवृत्त होकर मैंने बरामदे से देखा कि उसके घर के सामने भीड़ जुट रही थी। बल्ला से इस कस्बे का हर व्यक्ति जुड़ा हुआ था। सिमनी ताई यहाँ के सबसे पुराने बाशिंदों में से थीं, इसलिए उसके सुख-दुःख को सबने अपना माना था। मुझे खुद विश्वास नहीं हो रहा था कि मेरे साथ उसका जाने किस जन्म का रिश्ता था। घर में काम करनेवाले बाकी नौकर-चाकरों से पता चला कि सुबह के दस बजते-बजते उसे लेकर सभी घाट चले गए थे। सारे कर्मकांड समाप्त कर दूसरे दिन बलवंत मुझसे मिलने आया। बहुत दुःखी था, कहा, ''जीजी, कल से भागवत पाठ करा रहा हूँ। आप भी आएँ, बल्ला की आत्मा की शांति के साथ घर की शुद्धि भी आवश्यक है। कहते हैं, मंत्रों में बड़ी शक्ति होती है।''

मैंने कहा, ''ठीक है, मैं कल आ जाऊँगी। परसों मुझे वापस लौटना

है। मेरी केवल तीन दिनों की छुट्टी थी।''

दूसरे दिन हम सब सिमनी के घर गए। घर के एक बड़े कमरे में बल्ला की तसवीर को एक मेज पर रखा गया था, जिस पर फूलों की माला चढ़ाई हुई थी। एक दरी बिछी हुई थी, जिस पर बल्ला के मायके, ससुराल और पड़ोस के लोग बैठे हुए थे। माँ को ज्यादा देर नहीं रुकना था। इसलिए वह सिमनी ताई को सांत्वना के दो शब्द बोलकर, कुछ नगद देकर ड्राइवर के साथ लौट गईं। मैं कमरे में पीछे चली गई और दीवार से सटकर बैठ गई। बल्ला की तसवीर वाली मेज की बगल में ही उस की बेटी को गोद में लेकर रेवा बैठी हुई थी और बगल में बलवंत। बल्ला के गर्भ से सही, माँ कहलाने का हक तो इसे मिल ही गया था। कमरे से लगी हुई बालकनी में हवन कुंड था, जिसमें हवन की सामग्रियाँ डालते हुए मंत्रोच्चारण चल रहा था। कुछ लोगों को छोड़कर पीछे बैठी हुई औरतों में धीरे-धीरे खुसुरफुसुर आरंभ हो गई। कोई बल्ला के बारे में बात कर रहा था कि कैसे उसने तकलीफ में आखिरी साँसें लीं तो कोई उसकी बच्ची की परवरिश पर। बलवंत आँखें नीचे किए चुपचाप बैठा हुआ था। तभी किसी ने कहा, ''इस लड़की का भी नाम सोच लो, क्या कहकर पुकारा जाए?'' बलवंत की माँ ने कहा, ''कुछ भी पुकार लो, क्या फर्क पड़ता है। बल्ला की बेटी···अ···अ···कैसे!'' सभी सोचने लगे। इससे पहले कि कोई कुछ और नाम बता दे, मैं जोर से चिल्लाई, ''नहीं, कुछ भी नहीं रखना है। कोई ऐसा-वैसा नाम नहीं चलेगा।'' सिमनी ने उत्तेजित होकर पूछा, ''नाम में क्या रखा है, बीबी?''

''नाम में जीवन के सुख-दुःख की परछाईं छिपी होती है। तुमने बल्ला को 'बला' समझा था न ताई, सो जीवन भर वह विपदा की मारी रही। और जब नाम में कुछ नहीं रखा है तो फिर कुछ अच्छा ही नाम क्यों न रखें। यह मासूम तो इस बगिया की फूल है।'' इतनी देर से अनेक लोगों की नजर शायद मुझ पर नहीं पड़ी थी। अब सभी पीछे मुड़कर देख रहे थे। अपने गमगीन चेहरे को उठाकर बलवंत ने वहीं से कहा, ''तो आप ही बताओ जीजी, क्या रखूँ इस बच्ची का नाम?'' अनायास ही मेरे मुँह से निकल पड़ा, ''रजनीगंधा।'' बलवंत के चेहरे पर एक गहरी मुसकान थिरक गई, मानो यह प्रस्ताव पारित हो गया। मुझे लगा कि जैसे खुशबू बिखेरती हुई हवा की एक मद्धम लहर पार कर गई हो। अब तक बल्ला की जिस तसवीर पर दर्द की रेखाएँ छलक रही थीं, वह गायब हो गई थी। चिर शांति के प्रखर से देदीप्यमान हो रहे चेहरे पर बेटी का नाम सुनते ही एक चिर-परिचित मुसकान उभरी और लुप्त हो गई। लगा, जैसे वह प्यासी आत्मा तृप्त हो गई। मैंने झट अपना बैग उठाया और एक झटके से कमरे से बाहर हो गई। दूर तक अंदर के कमरे से आ रही मंत्रों की आवाज गूँज रही थी—न जायते म्रियते वा न हन्यते हन्यमाने शरीरे···।

डी-१५, सेक्टर-९, पी.ओ. कोयलानगर
जिला-धनबाद-८२६००५ (झारखंड)
दूरभाष : ०९४३१३२०२८८

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।

क्योंकि तुम ही हो

● शैलेंद्र कुमार भाटिया

उ.प्र. प्रांतीय सिविल सेवा में पी.सी.एस. अधिकारी, यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण, ग्रेटर नोएडा, गौतमबुद्धनगर में विशेष कार्याधिकारी पद पर तैनात।

ये बूँदें बदला ले रही हैं

आसमान से टपकती पानी की बूँदें
मिटाती हैं चिड़ियों की प्यास
उपजे फुनगियों की प्यास, और
इस धरा की प्यास।
धरा इन बूँदों को अपने कंठ
में रखती है, बचाकर
अपनों के लिए।
अपने इन बूँदों को खोदकर, बोर कर,
पाईप से निकालकर पीते और सींचते हैं मनचाहा।
अपनी जरूरतों से
ज्यादा बहाते ये मनुष्य
अब चिल्ला रहे हैं, इन बूँदों के लिए।
ये बूँदें अब बदला ले रही हैं,
अपने ऊपर हुए दोहन के विरुद्ध खड़ी ये बूँदें,
अब कंठ से बहुत दूर चली गई हैं,
इनके जाने से धरा की त्वचा सूख गई है,
उसमें दरारें पड़ने लगी हैं
ये दरारें भी अब किसान की दरारें
बनने लगी हैं,
यों बूँदें रो रही हैं, रुला रही हैं,
बूँदों ने यात्रा भी शुरू कर दी है,
कंटेनरों में भरकर पटरियों पर दौड़ रही हैं।

ये बूँदें अब भी रहना चाहती हैं पास
आओ आसमान से टपकती इन बूँदों को
सँजो लें, संरक्षित कर लें, सँभाल लें
कल के लिए, नहीं तो पानी की ये बूँदें
बार-बार बदला लेंगी।

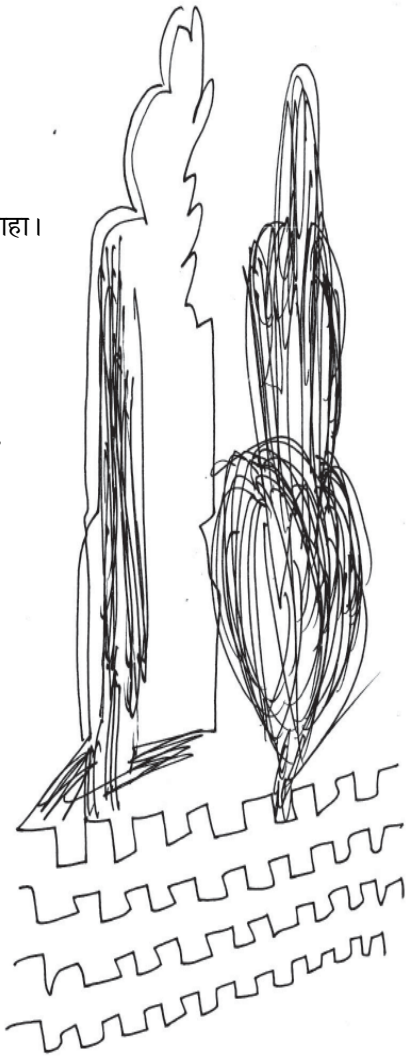

सफेद कागज

सफेद कागज
तुम सबसे निकट, मन के पास
दु:ख-सुख के गवाह
क्योंकि तुम ही हो
जो सबकुछ बरदाश्त करते हो,
चाहे विरह के कठोर पल हों
या उल्लास के क्षण
जैसी भी स्याही हो, सोख लेते हो।
न्याय के लिए प्रार्थना हो,
या गवाह की आवाज हो,
या बाबुओं की फाइलों के शृंगार हो,
तुम हमेशा पीड़ाओं के करीब होते हो,
व्यक्त होते हुए, व्यक्त करते हुए,
वक्तव्य लेते हुए
हमेशा साथ रहते हो
तुम्हारी कीमत बढ़ जाती है,
जब तुम्हें स्याहियों से रँगते हैं
गांधी, टैगोर या मंडेला।
या कूचियों से तुम्हारे ऊपर रंग भरते हैं
विंची, पिकासो या राजारवि।
नीलाम होते हुए तुम
अजायबघर के लिए प्रस्थान करते हो
गुलामी से स्वतंत्रता तक
गवाह बनते हुए नजीर के रूप में
बार-बार हम तुम्हें पलटते हैं,
एक सार्वभौमिक सत्य की तरह
तुम सफेद कागज, क्या सूर्य हो?

मकान नं. २ ए, सेक्टर-गामा-१
ऑफीसर्स कॉलोनी, गौतमबुद्ध नगर
ग्रेटर नोएडा (उ.प्र.)
दूरभाष : ०७०४२६३९३५९

कदंब कहाँ है

● अजयेंद्रनाथ त्रिवेदी

हिंदी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, जर्नलों में निबंध शोध आलेख प्रकाशित। संप्रति मुख्य प्रबंधक (राजभाषा), यूको बैंक।

देश के मौसम विभाग ने पिछले महीने भविष्यवाणी की थी कि इस बार मानसून दो दिन पहले ही केरल के दरवाजे पर दस्तक दे देगा। कोलकाता महानगर की उमस भरी गरमी में जीनेवालों के लिए यह भविष्यवाणी कम मोहक न थी। पर जैसा कि आमतौर पर सुनहरे सपनों के साथ होता रहा है, इस बार भी वैसा ही हुआ। उसी मौसम विभाग ने फिर जल्दी ही कहा कि नहीं, मानसून समय से पीछे चल रहा है तथा यह देर से आएगा और पूरी तरह बरसेगा भी नहीं। गरमी का आतंक अभी और रहनेवाला है, यह जानकर सभी उदास हुए। अखबारों ने समाचार बनाए, मानसून के आने में देरी से होनेवाले नुकसानों को लेकर संपादकीय लिखे गए। हमारे महानगर में अभी इन चर्चाओं का ज्वार उतरा भी नहीं था कि सुदूर पूर्वोत्तर भारत में बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाने का समाचार आ गया। गजब तेरी लीला है ऐ करतार! एक ही देश में कहीं लोग मानसून की आस में बैठे बेहाल हो रहे हैं तो कहीं मानसून कहर बनकर बरस रहा है—न जाने संसार: किममृतमय: विषमय:।

महानगरों की पसंद-नापसंद अपनी तरह की होती है, जिसके कारण ज्यादातर बेहद व्यक्तिगत होते हैं। वातानुकूलित परिवेश में रहनेवाले को गरमी से उतनी शिकायत नहीं होती, जितनी पंखे में सोनेवाले को होती है। जिसके पास बिजली के पंखे नहीं हैं, महानगर में उस आदमी की अपनी आवाज ही नहीं होती। ऐसे में वह क्या सुनाए और किसे सुनाए? जाड़े से महानगरों के समर्थ लोगों को कोई शिकायत होती ही नहीं। हालाँकि पर्याप्त गरम कपड़ों में लिपटे हुए धनी लोगों को शीत के प्रकोप पर बहस करते हुए अकसर देखा गया है—बादल बरसें तो गरमी से थोड़ी निजात मिले। पर दूर देहात में बादल की बाट जोहते किसानों की आँखों में झाँकें तो वहाँ एक दूसरी ही चाहत नजर आती है। यह धरती को परितृप्त देखने की चाहत है। धरती की परितृप्ति वर्षा से ही संभव है। वर्षा संभावना है तथा धरती संभवा। 'आकाशात् पतितं तोयं सागरं प्रति गच्छति' ऐसा कहकर भक्तिमार्गियों ने तथा द्यावापृथिवी की कल्पना प्रस्तुत करके वैदिक ऋषियों ने आकाश तथा पृथ्वी के जिस संयोग को अभिव्यक्ति दी है, वर्षा ऋतु में ही वह संयोग संभव होता है। कवि जयदेव ने 'गीतगोविन्दम्' का आरंभ वर्षा की चर्चा से 'मेघैर्मेदुरमंबरम् वनभुव:' कहकर अकारण ही नहीं किया है। कालिदास जब मेघ को संबोधित करते हुए त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति ऐसा कहते हैं तो वर्षा से भीगी धरती की उर्वरा की ओर ही संकेत कर रहे होते हैं।

वर्षा से यादों का घनिष्ठ संबंध है। यादें चाहे मधुर हों, तिक्त हों या काषाय, वर्षा में अनवरत बरसती हैं तथा मन को सरस करती चलती हैं। वर्षा ऋतु में कहीं तो बूँदों से होड़ लेती हुई आँखें बरसतीं हैं तो कहीं बादलों के गर्जन में भावुक मन काँप उठता है। बरसात में किसी का तरसता मन यदि परितृप्ति का फल चखता है तो कहीं किसी की विरहाग्नि वर्षा की फुहारों से धधक उठती है। मानवीय भावनाओं पर चाहे जो गुजरे, बरसात में धरती तो हरी-भरी हो ही जाती है। वर्षा का सुकुमार वृक्ष है—कदंब। पंडित विद्यानिवास मिश्र ने कहीं लिखा है—दूसरी ऋतुओं में इसकी (कदंब की) पहचान नहीं होती। बस पावस में इसकी पहचान होती है। और सच पूछिए तो पावस में ही हिंदुस्तान की भी पहचान होती है। वर्षा से जुड़ी अनेक आरंभिक स्मृतियाँ आज जाग रही हैं। यादों के इस झरोखे से छितनार कदंब के पत्रों से टपकती बूँदों का सौंदर्य झिलमिला रहा है। धारासार वर्षा के बूँद-बाणों से बचने हम अकसर अपनी गली के मोड़ पर खड़े कदंब की शरण में चले आते थे। कदंब बूँद-बाणों से हमारी कितनी रक्षा करता था। यह तो याद नहीं, पर बूँदों के आघात से टूटकर गिरते पके कदबों का स्वाद अभी भी जीभ पर है।

कदंब के पेड़ का यह बड़भाग है कि इसे श्रीकृष्ण का सायुज्य मिला है। शास्त्रों में उल्लेख है कि यमुना-तट के कदंब श्रीकृष्ण को बहुत प्रिय रहे हैं। रसखान कहते हैं कि यदि मुझे पक्षी योनि मिले तो मैं ब्रज के कदंब वृक्षों पर बसना चाहूँगा, जो खग हों तो बसेरौ करौ नित कालिंदी कूल कदंब की डारन। आखिर कहें भी क्यों नहीं? विद्यापति की पदावली इस बात की गवाही देती है कि इसी कदंब के नीचे खड़े नंद के नंदन बाँसुरी की टेर लगाकर श्रीराधा का आह्वान करते हैं—

नंदक नंदन कदंबक तरुतर धीरे-धीरे मुरली बजाउ।
समय संकेत-निकेतन बइसल बेरि-बेरि बोलि पठाउ॥

विश्व के विश्राम श्रीकृष्ण में कदंब के तले शरण ले रहे हैं। विरह

की इस वेला में उनको श्रीराधा का स्मरण हो रहा है और वे मुरली पर फूँक देकर श्रीराधा को पुकार रहे हैं। आखिर इस वृक्ष में कुछ तो बात होगी ही। कदंब के पेड़ की सघन छाया शरीर का ताप हर लेती है। पर यह काम तो कई वृक्ष करते हैं। इसमें कैसा गौरव! पर गौरव है भाई, है—इसकी छाया में कुछ खास गौरव है। कदंब की छाया वैशाख-ज्येष्ठ में तपते सूरज की बेचैन कर देनेवाली किरणों से शरीर को बचाती है, इसमें सचमुच इसका कोई गौरव नहीं है। इसका गौरव है पावस की उन्मन कर देनेवाले प्रभाव से तन तथा मन को आश्रय देने में। भारतीय परंपरा में कदंब का शाश्वत समादर न तो इसके फलों की मधुरता के लिए है और न ही इसकी किसी औषधीय विशेषता के लिए ही। इसका समादर श्रीकृष्ण-सायुज्य के लिए है। यह सायुज्य यमुना के पुलिनों का आधार पाकर अलौकिक हो उठता है। यही कारण है कि परम विराग की अवस्था में भी श्रीमधुसूदन सरस्वती का मन भी यमुना के किनारे बार-बार दौड़ता है। 'कालिंदी पुलिनेषु यत् किमपि तन्नीलं मनो धावति।' वे कह उठते हैं।

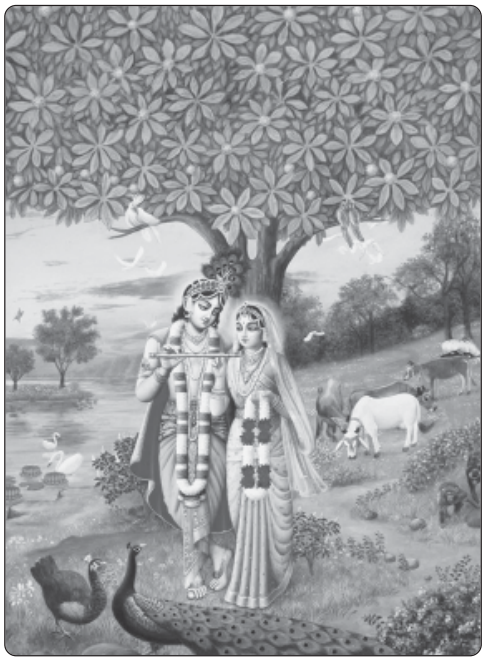

परंतु मेरी स्थिति कुछ और ही है। विगत कुछ दिनों से मेरा मन अपने शहर की भीड़-भाड़ में तब्दील हो गया, उस स्थान पर दौड़-दौड़कर चला जा रहा है, जहाँ कभी एक जलाशय के किनारे कदंब का पेड़ हुआ करता था। वह स्थान अब कदंब चौक कहलाने लगा है। हमारे उच्च विद्यालय को यों तो अनेक रास्ते जाते थे, पर बरसात के समय सिर्फ एक ही रास्ता बचता था। वह रास्ता हमारे शहर का बाई-पास था। तब आज की तरह भारी ट्रैफिक तो था नहीं, सो शहर के बीच से ही बसें तथा भारी यान निकल जाया करते थे। इस सड़क के दोनों ओर पुष्पवंत वृक्ष लगे थे। नागफनी के घेरे में लगाए गए ये पेड़ आवारा जानवरों का आहार होने से बच गए थे। इन पेड़ों में थे—अमलतास, गुलमुहर, कचनार तथा कनेर। गरमियों में इनसे सुवसित फूल झरते तथा सघन छाया बरसती। बरसात आती तो ये पेड़ हरे पत्तों के छत्र बन जाते। इसी सड़क के किनारे, जहाँ से हम अपने घर को मुड़ते थे, एक जलाशय हुआ करता था। जलाशय के किनारे शहर के पुराने पावरहाउस के भग्नावशेष से लगा ही खड़ा था वह कदंब।

शारदीय नवरात्र में जब बादल नि:शेष हो जाते थे, जलाशयों के स्वच्छ जल में आकाश की नीलिमा उतर आती थी। इस कदंब के नीचे हनुमानजी की मूर्ति रखी जाती थी। इस मूर्ति में पर्वताकार हनुमानजी राम-लक्ष्मण को अपने कंधों पर लेकर जाते हुए दिखाए जाते थे। केले के खंभों से मंडप सजाया जाता था तथा रंगीन कागज की तिलंगियों का वंदनवार बनता था। लाउडस्पीकर इस अवसर का एक आवश्यक शृंगार था। यह वह समय था, जब आई.टी. क्रांति का आभास भी हमें नहीं हुआ था तथा संगीत की सुरलहरियों के लिए हम ग्रामोफोन रिकॉर्ड के भरोसे थे। इन रिकॉर्डों को हम तवा कहते थे। बैटरीचलित ग्रामोफोन पर तवे को घूमते हुए देखने और इससे निकल रहे गीतों को पेड़ पर लगे लाउडस्पीकर से सुनने के लिए बाल-गोपाल की टोली सुबह से कदंब के नीचे जुट जाती। शारदीय नवरात्र के दौरान शाम को हनुमानजी की आरती होती तथा ढोलक-झाल पर पारंपरिक गीत गाए जाते। नवरात्र की समाप्ति के बाद हनुमानजी की मूर्ति का विसर्जन हो जाता और कदंब की छाया में फिर से प्रतिवेशी समाज की बैठक जमने लगती। कदंब तले हनुमान-पूजा की ख्याति बढ़ती गई। कुछ ही वर्षों के बाद यहाँ नाटक मंडली भी आने लगी, बिजली की सजावट होने लगी और इसी के साथ इस पूजा का पारंपरिक माहात्म्य भी लुप्त होता गया। हम भी बड़े हुए, रोजगार पाकर रोजी-रोटी की व्यवस्था में अपने शहर से दूर रहने लगे। पर बचपन का परिवेश स्मृति से कभी ओझल नहीं हुआ। आज भी शारदीय नवरात्रि निकट आते ही मन में कदंब तले की हनुमान-पूजा की याद हो जाती है।

पिछली यात्रा में छोटे भाई की बड़ी बेटी ने पूछ लिया था—बड़े पापा, इस कदंब चौक में कदंब कहाँ है? उसकी भोली जिज्ञासा ने मेरे मन को मथकर रख दिया। विगत ३५-४० वर्षों में हमारे शहर का भूगोल बिल्कुल ही बदल गया है। पुराना बाई-पास अब नाकाफी हो चला है। उसके किनारे खड़े पेड़ों का नामोनिशाँ नहीं बचा है। हमारे शहर का वह बाई-पास अब देर रात तक ट्रैफिक के शोरगुल में मदहोश रहता है तथा सुबह जल्दी ही जग जाता है। तेज गति से विशालकाय वाहन इस बाई-पास के सीने को चीरते हुए जब निकलते हैं तो धूल भी आकाश की ओर चल पड़ती है। इस धूल से नहाए पेड़ प्रेताविष्ट शरीर की तरह जल्दी ही सूख जाते हैं। कदम के पास के उस शांत जलाशय के चारों ओर इमारतें खड़ी हो गई हैं तथा वह जलाशय इमारतों से लगातार निकलनेवाले कचरे का भंडार बनता जा रहा है। इस कोलाहल में कोमल तन तथा भावुक मन कदंब सूखकर काँटा बन गया और किसी प्रत्यक्षदर्शी ने बताया, उसने उसी जलाशय में समाधि ले ली, जिसकी स्वच्छ जलराशि में वह कदंब कभी दिनभर अपना सौंदर्य निहारा करता था।

मैंने बेटी को समझाया—आज यहाँ कदंब का पेड़ नहीं है, पर जब मैं तुम्हारी तरह छोटा था तो यहाँ एक कदंब हुआ करता था। वह पेड़ आज भले ही नहीं है पर उसकी याद हमारी सामूहिक स्मृति में अब भी बनी हुई है। बेटी को कदंब के विषय में जानने की इच्छा हुई। उनसे अब क्या बताता कि भारत के संबंध में कदंब एक वनस्पति मात्र नहीं है। यह एक सूत्र है—वर्तमान को हमारे अतीत से जोड़नेवाला। कदंब आम-

जामुन की तरह फल के लिए नहीं जाना जाता और न ही यह शीशम-सखुए की तरह अपनी उपयोगी काठ के लिए ही जाना जाता है। कदंब जाना जाता है अपने स्निग्ध अनुरागी चरित्र के लिए। दुबली-पतली सी काया पर ऊँचा उठने की चाह, सीधा खड़ा होने का आग्रह; कदंब के पेड़ को अपनी जमात के अन्य पेड़ों से अलग पहचान देता है। कदंब महत्त्वाकांक्षी नहीं, कृपाकांक्षी है। इसमें वक्रता नहीं, सरलता है। कदंब को अपने पुष्पन-फलन के लिए पावस की प्रतीक्षा रहती है। यह पेड़ पीपल, वट तथा पाकड़ के पेड़ की तरह साम्राज्यवादी भी नहीं है, जो अपनी शाखाएँ-प्रशाखाएँ फैलाकर एक विशाल भूखंड घेर ले। यह दरवाजे पर भी उग तथा बढ़ सकता है तथा पिछवाड़े भी पनप सकता है। यह अरण्य का नहीं, जनपद का पेड़ है। इसे मानुष-गंध प्रिय है। इसकी छाँह में दुपहरी बिताना जितना सुखद है, रात को इसके पत्तों से छनकर आ रही चाँदनी में नहाना भी उतना ही मनोहर। पर सावन की फुहार में इसके घने पत्तों से रिसते जल की बूँदों का गिरना विलक्षण शोभा तथा सांगीतिक परिवेश का सर्जन करता है। कदंब की शोभा पावस में उत्कर्ष को प्राप्त होती है, जब इसके काषाय फलों में मधुरता भरने लगती है तथा उसका हरित वर्ण हिरण्य हो उठता है।

बालपन से जिस कदंब की स्मृति मानस में कहीं दबी पड़ी थी, आज जाग उठी है। इसी के साथ जाग उठा है मन में सुवासित वैष्णव भाव। एक लोकगीत की टेक, जिसे सुनकर मेरी माँ विभोर हो जाया करती थीं, अभी याद आ रही है—

झूला लगे कदंब की डार झूलें कृष्ण मुरारी ना
और रामा झूलें राधा प्यारी, गावें कृष्ण मुरारी ना··

पावस में कजरी गाने तथा झूला झूलने की परंपरा बहुत पुरानी है तथा यह हमारे लोकजीवन का अभिन्न अंग रही है। जनसंख्या वृद्धि तथा औद्योगीकरण के दबाव से झूले अब कम लगते हैं, पर कजरी गायन में झूले पड़ने तथा उनके साथ जुड़े विभिन्न क्रियाकलापों की सविस्तार चर्चा मिलती है। कजरी के पदों में महिलाओं का सखियों के साथ झूला झूलने के लिए निकलने, हँसी-ठिठोली करने, साज-शृंगार करने आदि के वर्णन मिलते हैं। इनमें अनेक पदों में कदंब का उल्लेख हुआ है। रसिकदास की एक कजरी याद आ रही है, जिसमें श्रीकृष्ण राधा को झूले का आमंत्रण दे रहे हैं। कदंब यहाँ भी उपस्थित हो गया है—

झूलन चलो हिंडोला ना वृषभानु नंदिनी।
झूला परौ है प्यारी सुंदर कदंब की डारी॥
सावन की तीज आई घटा घनघोर छाई।
पहिरौ परंग साड़ी मानो विनय हमारी॥
मुख चंद्र उजारी मृदु हास नंदिनी
झूलन चलो हिंडोला ना वृषभानु नंदिनी!

पावस ऋतु में कदंब की कमनीय डार (डाली) पर लटका झूला श्रीकृष्ण तथा श्रीराधा को झुला रहा है। पावस सार्वभौम तृप्ति का महोत्सव है। कदंब की छतनार डालें तथा उसपर लटके लाल-ललाम फल परितृप्त परिवेश के सूचक हैं। घनघोर वर्षा में कदंब के पुष्ट पत्रों से टपकती बूँदों को देखकर ऐसा लगता है कि कदंब धन-धान्य के पार्थिव यज्ञ में अपने पत्र रूपी स्रुवा (यज्ञाग्नि में घी डालने के लिए बना लकड़ी का बड़ा चम्मच सा उपकरण) से जलधार का उत्सर्ग कर रहा है। पृथ्वी की तृप्ति, पार्थिवों की तृप्ति इस ऋतु का संकल्प है। कदंब उस शिव-संकल्प में सहायक बना है। श्यामल मेघ इस ऋतु के सर्वस्व हैं। धारासार वृष्टि इस ऋतु का नर्तन है। महाकवि जयदेव कहते हैं कि इसी मेघ-मेदुर आकाश के नीचे तमाल-वन में राधाकृष्ण जगत् का कल्याण करने के लिए लीलावंत होते हैं। सारे चराचर जगत् को स्पंदनशील करनेवाली युगलमूर्ति को यह कदंब न जाने कब से स्पंदित कर रहा है। हमारे भक्त कवियों ने यह दिव्य लीला छककर गाई है। इसकी प्रतिध्वनि युगों-युगों से मानव-मन को उत्सवोन्मत्त करती आ रही है। मुझे लगता है, हर भावुक के मन रूपी वृंदावन में कदंब का एक वृक्ष अवश्य छिपा रहता है। कदंब के आश्रय में श्रीकृष्ण अपनी भुवन-मोहिनी वंशी पर फूँक मारते तथा हर साकांक्ष जन के मन में प्रेम का अंकुर उगाते हैं। यह प्रेम जितना पार्थिव लगता है, उससे कहीं ज्यादा दिव्यता है इसमें। क्योंकि यह प्रेम अबाध है, पात्र-निरपेक्ष भी। यह प्रेम लता-गुल्मों के लिए भी उतना ही सघन है, जितना मानव मात्र के लिए। इस प्रेम में यमुना भी नहाती है और पूतना भी। इस प्रेम की भाषा गौवें भी समझती हैं, पक्षी भी समझते हैं तथा गोप-गोपियों को भी यह समझ में आती है। यह प्रेम भाषा का नहीं, भाव का आश्रय ग्रहण करता है, तभी तो सभी इसे समझ पाते हैं।

कदंब हमारे परिवेश में श्रीकृष्ण की शाश्वत स्मृति का प्रतीक है। क्षीर सागर में यदि शेषनाग भगवान् विष्णु के अनंतशयन के आधार हैं तो मर्त्यलोक में कदंब श्रीकृष्ण की ललित लीलाओं का आश्रय है। हमारी लोककथा में विभिन्न रूपों में प्रतिष्ठित तथा लोकसाहित्य में अनेक प्रकार से वर्णित इस कदंब से हमारी पहचान बनी है। संस्कृति के संक्रमण की इस घड़ी में मेरे बचपन का कदंब भौतिक रूप में आज वहाँ नहीं है, जहाँ मेरी नन्ही दीपिका उसे खोज रही है। पर कदंब-चौक अवश्य विद्यमान है। कदंब की यह अनुपस्थिति नन्ही दीपिका की तरह अनेक-अनेक शिशुओं के मन में कदंब को पहचानने के लिए उकसा रही है। पहचान की यह उत्कंठा ही कदंब-भाव है। पहचान का यह आग्रह परंपरा से प्रसूत है, जिसमें विगत के अनुभव की संगति विद्यमान के यथार्थ के साथ बिठाने की चेष्टा की जाती है। संगति बिठाने का यह प्रयास ही हमारी संस्कृति को नव-नव कलेवर प्रदान करता जाता है। नन्ही दीपिका जब यह पूछती है कि बड़े पापा, इस कदंब चौक में कदंब कहाँ है तो मुझे लगता है, हमारी संस्कृति एक बार फिर से नवकलेवर ग्रहण कर रही है।

मानव संसाधन प्रबंधन विभाग,
यूको बैंक, प्रधान कार्यालय
१० बी.टी.एम. सरणी, कोलकाता-७००००१
दूरभाष : ९८७४४५९७६७

शिद्दत-ए-एहसास

● रीता गुप्ता

कमरे में दमघोंटू घुटन छाई जा रही थी। दर्द अपनी सीमाएँ चीर सहस्र बाहुओं से कंठ अवरुद्ध करने पर आमादा था। वैसे भी वहाँ जीना कौन चाहता था। पर एक-दूसरे को मरता भी नहीं देखा जा रहा था। हर आती साँस बेमतलब और बेमानी थी। क्या करना था उन अनचाही साँसों का। रोम-रोम चीख-चीखकर नकार रहा था, पर बेशर्म साँस फिर भी हर पल आकर खड़ी हो जाती। निर्लज्ज हो, हर पल जीने को विवश कर जाती। दो लोग मिलकर संघर्ष कर रहे थे कि किसी तरह जिंदगी को ठुकरा दिया जाए, पर जिंदगी खुद-ब-खुद हर क्षण गले पड़ी जा रही थी।

सुपरिचित लेखिका। 'मुट्ठी भर अक्षर' तथा 'बूँद बूँद सागर' (लघुकथा संग्रह) प्रकाशित तथा पत्र-पत्रिकाओं में कई लेख तथा कहानियाँ प्रकाशित।

सब्र और बरदाश्त ने जब अपनी हदों का पूर्ण अतिक्रमण कर दिया तो अल्पना उठ खड़ी हुई, एक भरपूर नजर सामने तड़पते हर्ष पर डाली और कार की चाभी ले तेजी से निकल पड़ी। कहा जाए तो दौड़ ही पड़ी, हर्ष अपने नाम का अर्थ खोता हुआ विषाद और नैराश्य भाव से जाती हुई अल्पना को देखता रहा। उसमें इतनी भी जिजीविषा शेष नहीं थी कि मौत को गले लगाने जा रही अपनी पत्नी अल्पना को रोक ले। प्यार का यह भी एक चरमोत्कर्ष भाव ही है कि प्रिय की वेदना यदि किसी तरह दूर होती है, तो बस हो ही जाए, चाहे वह मौत को गले लगाने से हो। जाती हुई अल्पना ने पलटकर भी नहीं देखा। कितनी हड़बड़ी है उसे मुझे छोड़कर जाने की, हर्ष ने सोचा या शायद नहीं सोचा। हर पल साँसों का कारावास जीता व्यक्ति शायद इतना नहीं सोचता होगा।

अल्पना तेजी से बरामदा पार करती हुई पोर्टिको तक जा पहुँची, हड़बड़ी में भी उसने वहाँ मौजूद अदृश्य खून के कतरे को कूदते हुए पार किया, जो सिर्फ १३ दिन पहले ही वहाँ धार बन बह रहा था। उसका खून, जिसे उसने एक-एक बूँद दूध पिला निर्मित किया था। हर्ष ने भी लक्षित किया इस बात को कि १३ दिन पहले जहाँ अंकित का दुर्घटनाग्रस्त मृत शरीर रखा गया था, अल्पना ने उस पर पाँव नहीं रखा। मानो वह अभी तक वहीं सोया पड़ा है। 'अंकित' उसकी एकमात्र संतान, जो घर के सामने की सड़क पर एक अनजान मोटर साइकिल वाले के धक्के से यों चल बसा मानो सिर्फ इसी खातिर वह इस दुनिया में आया था। जब यही नियति थी तो २० वर्ष तक ही अंकित क्यों रहा, यह दुर्घटना तो उसके साथ ७० साल की उम्र में भी हो सकती थी। वह तो मेडिकल की पढ़ाई कर रहा था। १०-१२ दिनों तक दोस्त-रिश्तेदार सब घेरे रहे। आज अचानक जब सिर्फ वे दोनों ही बचे तो शायद अंकित का न होना ज्यादा खल गया।

अल्पना आवेश में कार निकालकर सड़क पर फुल स्पीड पर चल पड़ी। इससे पहले सिर्फ तीन या चार बार ही उसने कार चलाई होगी। अंकित ही तो सिखाया करता था, क्यों चला गया बिना सिखाए, यह सोचते-सोचते उसने गति और तेज कर दी। रात आधी से ज्यादा बीत चुकी थी कि बीच सड़क पर अंकित स्काई ब्लू शर्ट और नेवी ब्लू जींस में खड़ा दिखा। जो तेजी से हाथ हिला शायद कार रोकने के लिए कह रहा था। चौंकती हुई अल्पना ने तेजी से ब्रेक पर पाँव दबाया, ''आंटी, आधी रात को आप कार चलाकर कहाँ जा रही हैं?'' शीशा नीचे करते हुए अल्पना ने देखा कि यह अंकित नहीं, उसका दोस्त शुभ्र है। शुभ्र ने निढाल होती अल्पना को सँभाला और घर तक पहुँचा गया। पता नहीं क्यों, पर लौटती हुई अल्पना का मन उतना उद्वेलित नहीं था। उसने एक बार भी यह ध्यान नहीं दिया कि शुभ्र आखिर इतनी रात गए वहाँ क्या कर रहा था। उसे तो ऐसा ही महसूस हुआ कि वह अंकित ही होगा, जिसने उसने घर छोड़ा। आज १३ दिनों के बाद उसे अपने कान्हा को देखने की इच्छा हुई।

हर्ष वैसे ही जीवित-मृत की बीचवाली स्थिति में लौटती हुई अल्पना को देख रहा था। परंतु अल्पना तेजी से पूजावाले कमरे में चली गई। १३ दिनों के बाद यह कमरा खुला था, इस बीच उसने कभी आकर शिकायत भी नहीं की थी कि कान्हा ने अंकित को क्यों बुला लिया। धम्म से बैठती हुई अल्पना ने गौर किया कि १३ दिन पहले के चढ़ाए फूल आज भी ताजा लग रहे थे। कान्हा की मूर्ति मनमोहनी मुसकराहट बिखेरती उसे सम्मोहित कर रही थी। उसके दुःख और विषाद की कहीं परछाईं परिलक्षित नहीं थी। पूजाघर एक सकारात्मक ऊर्जा से तरंगित था। फिर अभी अंकित से मिलने का आभास, अल्पना में एक आस भरी स्फूर्ति से नवजीवन का संचार कर गई। कुछ क्षण पहले मृत्यु को गले लगाने को आमादा इनसान, वही पूजा घर के फर्श पर गहरी नींदें ले रहा

हो, अपने आप में एक आश्चर्यजनक बात थी।

सुबह अगरबत्ती की खुशबू जब नथुनों से टकराई तो हर्ष आँखें मलता, उलझे बाल, अस्त-व्यस्त कपड़ों में गिरता हुआ सा उठा और खुशबू की दिशा में खुद को घसीटता चल पड़ा। पूजाघर के दरवाजे पर उसने अचंभित भाव से देखा, अल्पना नहा-धो स्वच्छ साड़ी में हाथ जोड़े कान्हा के समक्ष ध्यानमग्न है। अचानक हर्ष की तंद्रा टूटी कि यह कैसी माँ है, इसे क्या हुआ? हर्ष को खड़ा जान, अल्पना उठकर आई और उससे लिपटते हुए बोली, ''रात सपने में अंकित आया था। बोल रहा था कि वह कहीं नहीं गया है। अंकित यहीं है हमारे साथ, कल उसी ने तो मुझे वापस घर पहुँचाया था।''

हर्ष अल्पना की हालत देख और भी टूट गया, उसे एहसास हो गया कि यह अपना संतुलन खो रही है। उसके बाद तो अल्पना ऐसे जीने लगी मानो कुछ हुआ ही न हो। अंकित के बारे में ऐसे बातें करती जैसे वह यहीं-कहीं हो। अंकित की पसंद की डिशेस बनाती। हर्ष जहाँ मुश्किल से दो-चार कौर निगल पाता, वहीं अल्पना स्वाद लेकर खाती। सोकर जब उठती तो ऐसा मालूम होता कि वह बेटे से मिलकर आ रही हो, अंकित की इतनी बातें करती। सांत्वना देने आनेवाले भौंचक हो, अल्पना की हालत देख दु:खी हो जाते, पर अल्पना दु:खी होना छोड़ चुकी थी।

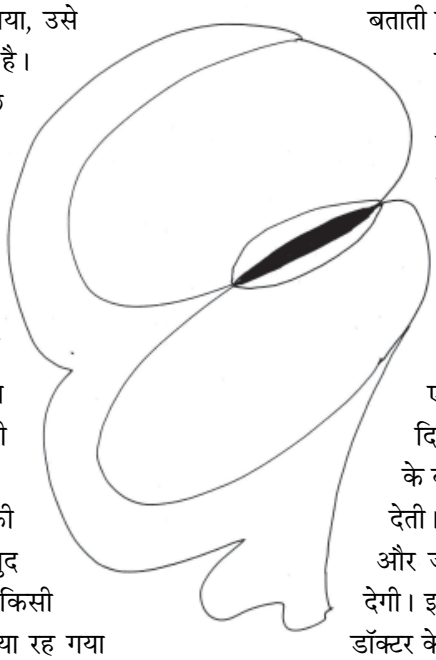

उस दिन अंकित का जन्मदिन था, हर्ष की हालत रात से ही काफी बिगड़ रही थी। अल्पना खुद जाकर डॉक्टर को बुला लाई थी। शायद नींद की किसी दवा का असर था कि हर्ष उस दिन देर तक सोया रह गया था। किसी से बातें करती अल्पना की आवाज से ही उसकी नींद टूटी थी, घिसटते हुए उठा तो देखा, पूजाघर में अल्पना जन्मदिन का पूरा माहौल बनाए कान्हाजी की मूर्ति से बतिया रही है। केक, मिठाई, फल और कई व्यंजन···

''हर्ष आओ, अंकित का जन्मदिन मनाते हैं, पहले नहाकर आओ'', हर्ष विक्षिप्त होती पत्नी को देखता रह गया। इसे क्या हो गया है? कैसे इतना खुश हो रही है, हर्ष के अंदर बहुत कुछ दरक रहा था। पर अल्पना अपनी रौ में जन्मदिन मना रही थी। अंकित के दो-चार अच्छे मित्र भी उदास भाव से वहाँ बैठे थे।

''जानते हो हर्ष, अंकित वापस आना चाहता है। कल उसने मुझसे सपने में कहा, वह आने को बहुत तड़प रहा है। चलो, अच्छा है न, हमारा बेटा वापस आ जाएगा।

''देखो बच्चो, इस बार हम अंकित का जन्मदिन उसके बिना मना रहे हैं] अगले साल वो हमारे साथ होगा, मुझे उसने बताया है।''

हर्ष का सर्वांग सिहर गया, अल्पना कैसी बहकी बातें कर रही है? आँसू पोंछते हुए वह वहाँ से हट गया और बैठक में जाकर अपनी साली, रंगोली को फोन किया कि उसकी बहन किस तरह का व्यवहार कर रही है। थोड़ी देर के बाद रंगोली का फोन उसके मोबाइल पर आया, ''जीजाजी, मैंने दीदी से अभी बात की, आपने सच कहा, वह बातें तो बिल्कुल बे-सिर-पैर की कर रही है, पर रो नहीं रही है। यह बात मुझे सुकून दे रही है। मैं अगले महीने आने का प्रयास करती हूँ। कोशिश करती हूँ कि माँ वापस दीदी के पास चली जाएँ। आप लोगों को किसी की देखभाल की जरूरत है।'' दो दिनों में हर्ष की सास वापस आ गई, वह भी अल्पना की हालत देख दु:खी हो रही थी। अल्पना दिनभर अपनी माँ से अंकित के लौट आने की संभावनाओं पर ही चर्चा करती थी। वैसे उसका ज्यादातर वक्त पूजाघर में अपने कान्हा के संग ही बीतता। आए दिन बताती कि यदि अंकित का लौटना नहीं लिखा है, तो उसके कान्हा कभी इतने मुसकराते नहीं रहते।

एकाध महीने में रंगोली भी आ गई, आकर उसने महसूस किया कि माँ और जीजाजी चूँकि दीदी की बात से असहमत रहते हैं तो वह दु:खी हो जाती है, सो उन्होंने उसकी बातों में हाँ-में-हाँ मिलानी शुरू कर दिया। रंगोली को भी विश्वास है कि अंकित आएगा। यह जान अल्पना चहक उठी। पर रंगोली मन-ही-मन सोचती रहती थी कि एक असंभव बात, एक अनहोनी बात को कितने दिनों तक जीने के लिए दिलासा का हथियार बनाया जा सकता है। उसके खुद के बच्चे युवा हो चुके थे, छोटे रहते तो एक दीदी को दे देती। क्या गोद लिया जाए, पर इस वय में, जब दीदी ४४ और जीजा ५० के करीब हैं। कोई भी संस्था क्यों गोद देगी। इसी उधेड़बुन में वह अल्पना को लेकर एक लेडी डॉक्टर के पास परीक्षण हेतु पहुँच गई। जब डॉक्टर ने बताया कि अल्पना का गर्भाशय किसी युवती के गर्भाशय के समकक्ष ही संतानोत्पत्ति के लायक है तो दोनों बहनों के मन में आशा की नई किरण जाग गई। माँ ने जब यह सुना तो बहुत नाराज हुईं कि रंगोली अल्पना के केस को और बिगाड़ रही है, ऐसी हरकतों को बढ़ावा देकर। हर्ष ने तो अपना सिर ही पीट लिया कि अभी अंकित को गुजरे कुछ महीने भी नहीं गुजरे हैं और यह सब बेहूदगी।

अल्पना जहाँ जिंदगी के नवनिर्माण की ईंटें जमा करने की जद्दोजेहद में लगी थी, वहीं हर्ष के अंदर का बाप विछोह की विखंडित दीवारों तले टूट रहा था। अल्पना जहाँ अंकित के पुनर्जन्म और लौटने के स्वप्न में लिप्त रहती, वहीं हर्ष पुत्र का दिवंगत होना स्वीकार नहीं कर पा रहा था, उसके खोने का दर्द कहीं बहुत भीतर तक उसे छलनी कर रहा था। अपने कान्हा की मुसकराहट से आश्वस्त अल्पना भविष्य को लेकर अति उत्साह और विश्वास में जी रही थी। एक असंभव को संभव करने की हर मुश्किल पार करने को प्रयासरत थी। वह देख रही थी कि जितना वह अंकित को लौटा लेने की स्वप्निल तसवीर साकार करने की गुत्थी सुलझाने में व्यस्त हो रही है, उतना ही हर्ष अपनी बिगड़ी तकदीर

सीने में जब्त करने में असफल हो, अपनी जीवन डोर कमजोर करने में लगा है। रंगोली अपनी दीदी को हर हालत में खुश या आशान्वित देख प्रसन्न थी। लोग अल्पना को 'पागल' कहने लगे थे, जो अपने एकमात्र पुत्र के जाने के बाद भी भजन गाती भाव-विभोर रहती, सजती-सँवरती; सब करती, पर रोती नहीं।

अंकित के जाने के कुछ ही महीने बाद मौत ने फिर कुंडी खटखटाई थी, अबकी बारी हर्ष की थी। पर यह किसी के लिए भी अप्रत्याशित नहीं था, सब जानते थे कि हर्ष ने स्वयं जीना छोड़ा था, यहाँ मौत बदनाम नहीं हुई थी। अल्पना विस्फारित सजल नयन से जिंदगी के उस नए अनुच्छेद को घूरती रह गई थी।

फिर एक दिन वह असंभव संभावना में परिवर्तित होता महसूस हुआ। जाते हुए हर्ष से अल्पना ने उसके अंश को अपने गर्भ में समाहित करने में सफलता प्राप्त कर ली थी। हाँ, डॉक्टर ने पुष्टि कर दी कि अल्पना माँ बननेवाली है। अपनी उम्र, हालत, परिस्थितियों को पछाड़ते हुए उसने अपने अंकित को अपने भीतर रोपित कर लिया था। बड़ी ही सहजता से उसने हर्ष का जाना स्वीकार कर लिया था। उसे पागल समझनेवाले उसकी अदम्य इच्छाशक्ति के आगे नतमस्तक थे। नानी-दादी बननेवाली उम्र में उसने एक पुत्र को जन्म दिया। ऑपरेशन थिएटर से बाहर आने पर उसने देखा कि रंगोली, उसकी माँ सहित, अंकित के बहुत सारे मित्र और मीडिया-प्रेस के बहुत सारे लोग भी खड़े थे। अंकित के दोस्तों को देखते हुए अल्पना ने कहा, ''मैं कहती थी न, अंकित का नाम अपने मोबाइल से न हटाओ, लो मैं अंकित को ले आई।''

डी-८ आदर्श नगर
कुसमुंदा कोलेरी, पी.ओ. कुसमुंदा
जिला—कोरबा-४९५४५४ (छत्तीसगढ़)
दूरभाष : ०९५७५४६४८५२

तुम जाने-पहचाने

कविता

● भीम प्रसाद प्रजापति

भूख

भूख प्रबल कितनी थी
मौजूद सुरों से
असुरों सा व्यवहार किया,
मन में छिपी हुई वेदना
घास की रोटी का आहार किया,
भूख प्रबल कितनी थी!

नित नए गढ़े सपने जिसने
तोड़ा रण में उसने-उसने,
खा अहंकार का बीड़ा
तन-मन से इनकार किया,
भूख प्रबल कितनी थी!

क्रंदन मन में ठनक रहे
योद्धा जितने जनक रहे,
अश्रुधारा में बह गए
फिर मातृभूमि से प्यार किया,
भूख प्रबल कितनी थी।

था सीने में दंभ जिसे
पत्थर की तरह वो रहे घिसे,
साँसों की लहरी जब तक
तलवारों से संहार किया,
भूख प्रबल कितनी थी!

मेख

हे पतझड़ के मेख!
तू क्षितिज को देख।
सूखी हुई धरा की मेदा
तुम अंबर को क्यों न भेदा,
तुम ऐसे क्यों खड़े हुए

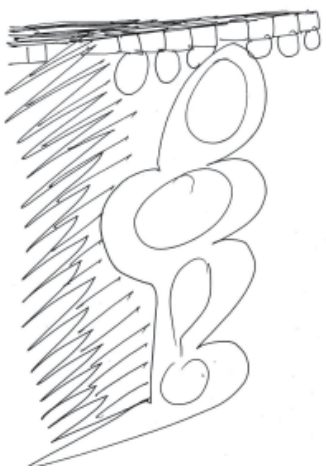

असमंजस में पड़े हुए,
वट के भार बने हो कैसे
घन में जूँ हुए हों जैसे,
ना कर थोड़ी भी अनदेख
हे पतझड़ के मेख!
तू क्षितिज को देख।

तू भी तो है
इसी धरा का अंकुर
बजते रहते सायं-सबेरे
पाँवों में नूपुर,
भूल चुकी शहनाई
वेदना अपनी
सहती रहती हवा के झोंके
दे सुर अपनी,
तुम जाने-पहचाने
फिर भी बदले भेस,
हे पतझड़ के मेख!
तू क्षितिज को देख।

ग्राम : बिरवा, पो. लबकनी
जिला-देवरिया-२७४२०२ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९८३८५२२१३

आह बुरी निर्धन की बच

● निर्मल विनोद

: एक :

धूप का सायबान है दुनिया,
कोई ऊँचा मचान है दुनिया।

भोले हिरनों की जान लेती है,
सच में तीर औ कमान है दुनिया।

मोम की नाक है, कभी तो कभी,
मर्म जो बेधे, बाण है दुनिया।

कैसी-कैसी तो बोलियाँ बोले,
मत कहें, बेजबान है दुनिया।

सब-के-सब हैं किराएदार जहाँ,
लंबा-चौड़ा मकान है दुनिया।

दाग चादर पे लग ही जाते हैं,
कोयले की खदान है दुनिया।

यों तो घर की जमीन जैसी है,
दूर का आसमान है दुनिया।

ये किसी की सगी नहीं 'निर्मल',
ये परायी दुकान है दुनिया।

: दो :

नाच रही है बोतल देख
सोना है या पीतल देख।

पत्ती-पत्ती चंचल देख,
झूम रहा है पीपल देख।
वक्त की जालिम ऊखल देख,
सिर पर पड़ते मूसल देख।

रात का काला कंबल देख,
सुबह का उजला आँचल देख।

भीड़ भरे चौराहों से,
जंगल को चल चीतल देख।

रातों में जुगनू झिलमिल,
सुबह नदी की झलमल देख।

जल से छिटकी जल में डाल,
मछली कितनी बेकल देख।

आह बुरी निर्धन की बच,
कुदरत देती है फल देख।

हिम पर चलते पाँव जलें,
ओस तृणों पर शीतल देख।

मखमल-मखमल कोमल रूप,
उज्ज्वल मलमल, आँचल देख।

मैली आँखों वो न दिखे,
निर्मल आँखों 'निर्मल' देख।

: तीन :

ये मन-पारा एक तरफ,
दिल बेचारा एक तरफ।

ख्वाब तुम्हारा एक तरफ,
ख्वाब हमारा एक तरफ।

आपका शिकवा सर-माथे,
दर्द हमारा एक तरफ।

एक तरफ दुनियादारी,
अपनी दुनिया एक तरफ।

कोई मुर्शिद मिल जाता,
मैं हो जाता एक तरफ।

: चार :

कतरे को सागर की कोई,
चाह मिलन के वर की कोई।

उसकी रहमत की छाया है,
बात भला क्या डर की कोई।

छूट गया पीछा वहमों से,
बात हो क्यों बेपर की कोई।

क्या करिएगा गूँगी बहरी,
मूरत संगमरमर की कोई

पेड़ों पर आए हैं शगूफे,
याद किसे पतझर की कोई।

चलने की तैयारी में हूँ,
अब चिंता क्या घर की कोई।

आऊँगा, पहचान बता दे,
'निर्मल' तू घर-दर की कोई।

सा अ

सुशील निवास, १-सी, हरिसिंह नगर,
रिहाड़ी कॉलोनी, निकट सेठी स्वीट्स,
जम्मू-१८०००५
दूरभाष : ०९४१९१३९३११

राम झरोखे बैठ के

पान और पत्थर फेंकने की प्रवृत्ति

● गोपाल चतुर्वेदी

ज्ञानी विद्वान् मानें या न मानें, अपना अनुभव है कि इधर दो ही चीजें प्रगति पर हैं—आरक्षण के प्रस्ताव और पत्थर फैंकने की आदत। हमें विश्वास है कि सियासी दल कभी अतीत के अन्याय, कभी निर्धन-कल्याण की आड़ में सिर्फ वोट का शिकार करते हैं। हमें शक है कि सरकारी नौकरियों में आरक्षण से समानता और समरसता लाकर अब आरक्षण का संभावित वार निजी क्षेत्र पर है। यदि वहाँ दाल न गली तो अपना सुझाव है कि आरक्षणपंथियों को कमाऊ खेलों पर निशाना साधना चाहिए। रिजर्वेशन के बाद से सरकार ने करप्शन में दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की की है। कार्य-कुशलता का तो खैर कहना ही क्या! क्रिकेट जैसे कमाऊ खेलों में अभी काफी स्कोप है। राष्ट्रीय टीम सवर्णों की भरमार से दिनोदिन कमजोर हो रही है। उसका स्तर सुधारने को आरक्षण अनिवार्य है।

आदर्श के मुखौटे लगाने में हमारा सानी नहीं है। बालों की टोपी, जिसे 'विग' कहा जाता है, उसे तो गंजे रात-बिरात उतार भी देते हैं, पर मुखौटे की तो कुछ को ऐसी लत है कि पत्नी भी उनकी असली शक्ल को शायद ही पहचान पाए।

हमें ऐसे उसूल के उपदेशकों पर गर्व है। जीवनपर्यंत यह मुगालते की महानता का चेहरा लगाते हैं। वह भी सिर्फ अपना उल्लू सीधा करने को। कमाल यह है कि इन पर किसी को संदेह तक नहीं होता है। उल्टे कोई ऐसा दुस्साहस करे तो अराजक उसकी हड्डी-पसली एक कर दे। जो न उद्योगपति है न पूँजीपति, केवल जनसेवा के 'मुखौटा' जुगाड़पति है, उनकी आय करोड़ों में है। ऐसा कैसे और क्यों है, जैसे सवाल कोई नहीं उठाता है। इस पर तुर्रा यह कि वे स्वयं को गरीबों का मसीहा सिद्ध करने में जुटे हैं। उन्होंने गरीबों को ऐसा डटकर नरेगा-मनरेगा का चूना लगाकर असहाय बनाया है कि सबकी वृत्ति 'अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम' की हो गई है। श्रम-परिश्रम से उन्हें परहेज है। वे कहीं भी कटोरा लेकर बैठने को तत्पर हैं। सेवा के जुगाड़पतियों का दावा है कि उन्होंने करोड़ों निर्धनों का कल्याण किया है। यदि शारीरिक पंगुता परिश्रम का पर्याय है तो उनके दावे को कौन झुठला सकता है?

इसी दौरान किसी अन्य क्षेत्र में तरक्की हुई है तो वह एक-दूसरे पर पत्थर फेंकने का धंधा है। कुछ ने तो अपनी महारत से इसे कला का दरजा दे दिया है। प्यार से भी बोलें तो वह दूसरे पर पत्थर फेंकने लगते हैं। उनके पड़ोसी की प्रशंसा के अंदाज पर गौर करें, 'शर्माजी का क्या कहना! लड़की के घर से भागने से उनके माथे पर शिकन तक नहीं है। चिंतन में इतने उदार हैं कि वह लौटे तो गले लगा लें और फिर किसी प्रेमी के साथ फरार होने की सलाह दें।' जैसे कन्या सामाजिक क्रांति की सूत्रधार है। दहेज प्रथा की ईंट-से-ईंट बजा रही है।

कोई सोचे कि यदि ऐसे किसी से नाराज होकर पत्थर फेंकेंगे तो उसका हश्र क्या होगा? मौखिक पत्थरबाजी में इनका मुकाबला नहीं है। यों सामाजिक मीडिया जैसे ट्विटर आदि में कई इनको टक्कर देने में समर्थ हैं। क्या पता, दूसरे पर सतत कीचड़ उछालना उनका पूर्णकालिक पेशा हो। ऐसों के प्रहार अधिकतर सियासी होते हैं, किसी-न-किसी राष्ट्रीय नेता के खिलाफ। सदाचार और राष्ट्रीय आदर्शों के एक गिरगिटी महारथी तो रात-दिन सिर्फ दूसरों पर पत्थर फेंकने में इतने व्यस्त हैं कि अपनी पिद्दी यूनियन टैरिटरी का दायित्व जाने कब निभाते हैं?

वह खबर बनाने की कला में माहिर हैं। इसकी उन्होंने एक आसान तरकीब खोजी है। हमेशा अपने से बड़े नेता पर निशाना साधो और सुर्खियों में छा जाओ। गौबल्स के तरीके से कचरे-अधकचरे आरोप का कंकड़ लगातार फेंकते रहो। उनका विश्वास है कि बार-बार एक ही झूठ को दोहराना भी कभी-कभी उसे सच बना देता है। काजल की कोठरी के वासी स्वयं को ऐसा दूध का धुला बताते हैं कि जैसे ईमानदारी का गुण ऊपरवाले ने उनको बक्श कर दूसरों को देना बंद कर दिया है।

कभी-कभी संदेह होता है कि घरेलू आबादी में जो कौए कम हो रहे हैं, कहीं वे काँव-काँव में ऐसे सक्रिय प्रतियोगियों के सामने टिक न पाने की आत्मग्लानि से निराश होकर खुदकुशी तो नहीं कर रहे हैं? फिलहाल, सोशल मीडिया में ऐसे कई धुरंधर हैं, जिन्होंने अनवरत पत्थर फेंकने को चरित्र हनन का माध्यम बना लिया है। लोग तो यहाँ तक कहने लगे हैं कि सोशल मीडिया का ईजाद पत्थर फेंकने के लिए तो नहीं हुआ है? इनमें से कुछ कालू अंग्रेजों ने तो हास्य तक को अश्लील बनाने में सफलता पाई है। सामाजिक संदर्भ में भी एक-दूसरे पर पत्थर फेंकने में उन्होंने काफी लोकप्रियता अर्जित की है।

ऐसे लोगों का दृष्टिकोण काफी संतोषजनक है। वे संवेदनशील हैं। किसी का दिल दुखाने से उन्हें परहेज है। इसलिए कोई सामने हो तो वह उसकी प्रशंसा करते हैं। किसी की पीठ दिखी नहीं कि उसकी चारित्रिक चीरफाड़ शुरू हो जाती है। जो कुछ देर पहले सच का सुकरात था, वह झूठ का शकुनि बनता है। जिसने कुछ समय पूर्व हर फैली

झोली को भरने का यश अर्जित किया था, वह यकायक कंजूसी का ऐसा कुंभकर्ण है, जो किसी की मदद की गुहार सुनकर खर्राटे भरने लगता है। उसे पैसे बचाने की गहरी निद्रा से जगाने का हर प्रयास व्यर्थ है।

ऐसे विरोधाभासी और अतिवादी वक्तव्यों में सच का कितना अंश है, यह निर्णय सुननेवाले की शोध-प्रतिभा पर निर्भर है। अधिकतर इस शाब्दिक शल्य-चिकित्सा का भरपूर मजा लेते हैं। पर-निंदा में अहिंसक आनंद है। न दूसरों के कहने से कोई दानवीर कर्ण का अवतार बनता है, न कंजूसी का। पर स्थापित सामाजिक खंबों पर पत्थर फेंकने का अपना सुख है। महँगाई के जमाने में यह मुफ्त ही नहीं, अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने का कारगर साधन भी है। एक पल को यह गुमान क्या बुरा है कि हम उस आलोच्य शिखर पुरुष से कितने बेहतर हैं? हमारी ख्याति भले उससे कम है, पर कोई कपड़ों पर कैंची चलाकर हमें नंगा तो नहीं कर रहा है, यही सुख काफी है।

ऐसे शायद नहीं जानते हैं कि उनकी पीठ दिखते ही इसी अंदाज में उन्हें भी छलनी किया जाएगा। पत्थर फेंकने की लत इतनी लोकप्रिय है कि छोटे-बड़े, गरीब-अमीर, स्त्री-पुरुष, सब इसको समान रूप से अपनाते हैं। खाना जीवन की अनिवार्यता है, चरित्र हनन मन की। पीठ में शब्दों का छुरा भोंकने को सब प्रस्तुत हैं। बस किसी की पीठ दिखने का इंतजार है। कुछ के लिए यह काल्पनिक पेंटिंग का कैनवस है तो कुछ के लिए अतिशयोक्ति अलंकार के सार्थक प्रयोग का स्वर्णिम अवसर। अपने खास हुनर के प्रदर्शन से कोई क्यों चूके?

इस राष्ट्रीय शौक का प्रशिक्षण बचपन से ही प्रारंभ हो जाता है। पप्पू इसके शानदार उदाहरण हैं। हमारे मोहल्ले के बिजली के खंभों पर लगे बल्बों पर पहले वह गुलेल से निशाने का अभ्यास करते थे। कामयाब भी रहे, फिर उन्हें लगा कि उनके हाथों में शक्ति है। निश्चय में दृढता है। अर्जुन को सिर्फ चिड़िया की आँख दिखती थी, पप्पू को केवल खंभे के बल्ब। वह जेब से पत्थर निकालते हैं। आँखें बल्ब पर केंद्रित हैं, हाथ निशाने की ताक में। अचानक खंभे की आवाज के साथ बल्ब के अवशेष सड़क पर बिखर जाते हैं। वह अगले बल्ब के हनन को अग्रसर हैं।

मोहल्ले के कुछ पुराने वासी पप्पू के पिता से उनकी इन विध्वंसक हरकतों की शिकायत करते हैं। पिताश्री उन्हें समझाते हैं, 'भविष्य का क्रांतिकारी है पप्पू। जब गली-कूचों और झोंपड़पट्टी में अँधेरा है तो यह प्रकाश की असमानता उसे बरदाश्त नहीं है। उसकी बल्ब-तोड़ मुहिम व्यवस्था के इसी अन्याय के विरुद्ध है। सोचिए, इससे हमारी-आपकी खिड़कियों के काँच तो सही-सलामत हैं। सरकारी बल्ब तो न आपके हैं, न हमारे। वह तो आज नहीं तो कल नए लगने ही लगने हैं।

मोहल्ले के कुछ पुराने वासी पप्पू के पिता से उनकी इन विध्वंसक हरकतों की शिकायत करते हैं। पिताश्री उन्हें समझाते हैं, 'भविष्य का क्रांतिकारी है पप्पू। जब गली-कूचों और झोंपड़पट्टी में अँधेरा है तो यह प्रकाश की असमानता उसे बरदाश्त नहीं है। उसकी बल्ब-तोड़ मुहिम व्यवस्था के इसी अन्याय के विरुद्ध है। सोचिए, इससे हमारी-आपकी खिड़कियों के काँच तो सही-सलामत हैं। सरकारी बल्ब तो न आपके हैं, न हमारे। वह तो आज नहीं तो कल नए लगने ही लगने हैं।

उनकी गर्व-मिश्रित पप्पू-प्रशंसा से आहत एक सज्जन उन्हें आड़े हाथों लेते हैं, 'सरकार का पैसा कौन मंत्री-मेयर का है? वह भी तो कर की शक्ल में हमारी ही जेब से जाता है। अपने होनहार क्रांतिकारी की लगाम कसिए, वरना आपके जीवन के घर का चिराग ही अँधेरा न कर दे।'

पप्पू के पिता असहाय और विवश हैं। वे करें तो क्या करें? पप्पू परिवार के पहले पुत्र-रत्न हैं, दो सगे भाइयों के बीच अकेला घी का लड्डू। एक भाई के दो लड़कियाँ हैं, दूसरे के पप्पू। अतिशय लाड़-प्यार वैसा ही है, जैसे बिना किसी शारीरिक श्रम के मिष्टान्न का सेवन। एक से दिमाग बिगड़ता है, दूसरे से तन को मधुमेह लगता है। अब पप्पू अपनी मरजी के मालिक हैं। पिता का कर्तव्य केवल उनकी हर ऊल-जलूल हरकत को दूसरों के सम्मुख सही साबित करना है, वरना वह भी समझते हैं कि अपने आजाद देश में क्रांति का क्या औचित्य है? पर पप्पू अपने आधे-अधूरे आदर्शों के आगे उनकी सुनते कहाँ हैं? माँ को पत्थर-फेंकू, इस औलाद में कल का नेता नजर आता है। उनका अनुभव बताता है कि शिक्षित बेकारों से अक्षर ज्ञानी लीडर क्या बुरा है? पढ़े-लिखे चप्पल चटकाते घूमते हैं। वह पत्थर फेंकू कॉलेज यूनियन के चुनाव से शुरुआत कर चंदा चुराएगा, आस-पास के दुकानदारों को हड़काएगा। माँ को यकीन है कि एकाध बार जेल भले चला जाए, पर पप्पू आर्थिक अभाव के दौर से कभी नहीं गुजरेगा। जेलयात्रा उसकी सफलता का प्रथम सोपान है। नेता का हत्या या भ्रष्टाचार में जेल जाना उसकी जनसेवा की गतिविधियों में शामिल है। यह उसकी राष्ट्र-हित की कारगुजारी का अहम हिस्सा है। पिता से कोई पूछे तो वह कई इस प्रकार के नेताओं या नामी राजनैतिक परिवारों के नाम गिनाने को तत्पर हैं, जैसे पप्पू माँ की छत्रच्छाया में आगे बढ़ने को।

पप्पू के अध्यापकों का विचार है कि शारीरिक पत्थरबाजी तुलनात्मक दृष्टि से शाब्दिक प्रहारों से कहीं घटिया कृत्य है। शब्दों के पत्थर एक-दूसरे पर पीठ पीछे फेंकना शिक्षित व्यक्तियों के मनोरंजन का शाकाहारी साधन है, जबकि राजकीय संपत्ति और व्यक्ति पर पत्थर का निशाना साधना हिंसा और अराजकता का प्रत्यक्ष लक्षण है।

हमें डर है कि यह इन अध्यापकों के निजी आघातों से प्रेरित निष्कर्ष न हो? क्या पता, उनका कितने पप्पुओं और पत्थरों से पाला पड़ा है। कौन कहे, यह सच है कि उससे परे? यदि ऐसा नहीं होता तो हमारे बुद्धिजीवी और नेता एक खास यूनियन के युवाओं के राष्ट्र विरोधी नारों को अभिव्यक्ति की आजादी से क्यों जोड़ते? उसके प्रमुख तथाकथित अपराधी को नायक बनाकर देशभर में क्यों घुमाते? संभव है कि ऐसी वारदातें इन नेताओं के अपने सियासी स्वार्थ का नतीजा हैं। इनकी भ्रामक उक्तियों और वक्तव्यों पर अब हम जैसे सामान्य इनसानों की अधिक

आस्था नहीं है। न इनके आदर्श बचे हैं, न उसूल। सत्ता के खातिर ये हर त्याग को प्रस्तुत हैं। आत्मसम्मान हो या सिद्धांत, कुछ पाने को सबकुछ त्याज्य है।

पर बुद्धिजीवी तो इस श्रेणी के नहीं हैं। वह तो ज्ञानी हैं। उन्होंने इतिहास भी पढ़ा है और भविष्य भी बाँचा है। मनुष्यता में विश्वास का ढिंढोरा भी पीटा है। अपने मन में उनका सम्मान है। हम सोच नहीं पाते हैं कि जो वस्तुनिष्ठ चिंतन के अग्रज हैं, वह किसी पक्ष के गलत समर्थन की हरकत क्यों करेंगे? कहते हैं कि जहर को जहर ही मारता है। हमसे एक बुद्धिजीवी ही अपनी बिरादरी की पोल खोलते हैं। वे बताते हैं कि बुद्धिजीवी भी कोई देवदूत न होकर सामान्य इनसान हैं। कुछ तो खास पढ़े-लिखे भी नहीं हैं, बस फिजूल की फूँ-फाँ से ख्याति कमाकर और किसी प्रोफेसर की पुत्री से ब्याह रचाकर दहेज में प्राध्यापकी पाए हैं। आज ऐसा रोब गाँठते हैं कि जैसे अध्ययन-ज्ञान के एवरेस्ट पर विराजमान हैं और बाकी विद्वान् जमीन के कीड़े-मकोड़े हों।

पोल-खोलू का ज्ञान है कि हमारी बुद्धिजीवी बिरादरी सिर्फ एक-दूसरे पर पत्थर फेंककर जीती है। इनकी असलियत देखनी है तो पुरस्कार के लिए घिघियाते, साक्षात् फर्शी लगाते या दुम हिलाते देखिए, आपका मुगालता दूर हो जाएगा। उनकी मान्यता है कि बाजार युग के बुद्धिजीवी भी बिकाऊ हैं। जिसने पहले इन्हें पद, प्रतिष्ठा और पावर देकर खरीदा था, कुछ दिनों से वे उसके नमक का हक निभा रहे हैं। इनमें सब प्रगतिशील, यानी निजी प्रगति को समर्पित हैं। कौन, कैसे, कब बदल जाए? बस इन्हें उचित अवसर या प्रलोभन की तलाश है।

हम हैरान हैं। कभी प्रजातंत्र का आधार—शासक-परिवार आज भरोसे के काबिल नहीं है, कहीं यह बुद्धि के बुद्ध। इन परिस्थितियों में कौन है, जो पत्थर फेंकू प्रवृत्तियों का परदा फाश करे? समाज में ऐसा क्या परिवर्तन आ गया है कि किसी की जेब में पत्थर है तो किसी के मुँह में। दोनों बस इस ताक में हैं कि कब किस पर और कहाँ इनका उपयोग किया जाए? छात्रों को वरदीवाले या वाइस चांसलर ऐसा मौका नहीं देते हैं, तो आपस में ही जेब का माल लुटाने को कमर कसे हैं। कितनी पीठों ने कितनी बार पत्थर के शाब्दिक वार झेले हैं, इसका कोई हिसाब तक नहीं है। हम इसी चिंता में पान की दुकान तक आ पहुँचते हैं।

पान का चलन वर्तमान का फैशन नहीं है। पान की दुकानें इधर पान के अलावा सब बेचती हैं और पानवाले दूसरी उपभोक्ता सामग्री से ग्राहकों को चूना लगाते हैं। हमारा पारंपरिक पानवाला अब भी पान बेचता है। हम वहाँ जाकर खड़े ही हुए थे कि नारे लगाती, पत्थर फेंकती और सचिवालय की ओर जाती भीड़ तथा पुलिस में टकराव हो गया। पुलिस ने लाठियाँ चलाईं, भीड़ ने पत्थर और पानवाले ने जुबान। 'सब पान न खाने का नतीजा है। पान खाते होते तो वाणी अनुशासन रहता। लपर-लपर जुबान न चलाते। पान जमता तो मनन-चिंतन होता, आंदोलन नहीं। कोई कंकड़-पत्थर से पानी की तोप का मुकाबला करता है भला? वह तो गनीमत है कि डंडा चला, गोली नहीं।'

कभी-कभार अनपेक्षित व्यक्तियों से अपेक्षित प्रश्नों का उत्तर मिल जाता है। संभव है कि पानवाले ने ठीक ही कहा है। किवाम-जर्दे का पान खाकर मुँह बंद रखना ही श्रेयस्कर है। खोला तो कपड़ों पर दाग लगने का खतरा है। यों भी पान खाकर आदमी मौन में मगन रहता है। चलना जुबान का स्वभाव है, बिना पान पर चर्चा चले नहीं तो क्या चले? कभी किसी की कीर्ति का कीमा बनता है, कभी किसी के चरित्र का। हर व्यक्ति में अहं का ऐसा सूरज है कि उसे लगता है कि दुनिया उससे ही रोशन है।

इस श्रेष्ठता-बोध के साथ जीनेवालों को दूसरे कैसे सुहाएँ? खासकर जबकि अधिकतर उसके चक्कर न काटें। सामने पड़ने पर सभ्यता का ताला उसे नियंत्रित रखता है, पीठ दिखते ही उसे अपने अहं के काल्पनिक अपमान का बदला लेना है। जब जुबान पर पान का बंधन नहीं है तो वाणी नियंत्रण कैसे हो? क्या पानवाले का आकलन सही है? कहीं यह पान न खाने का दुष्परिणाम तो नहीं है? क्या पान के घटते प्रयोग से कंकड़-पत्थर फेंकने का रोग बढ़ा है? इन प्रश्नों का उत्तर पानवाले ने दिया है। पर उसे अपनी दुकान चलानी है। और कहेगा भी क्या? हमारी आश्वस्ति उसकी प्राथमिकता क्यों हो? हमारी जिज्ञासा बरकरार है। पत्थर फेंकने का चलन इधर क्यों बढ़ा है? क्या हम भविष्य में पप्पुओं की फौज खड़ी करने पर आमादा हैं?

९/५, राणा प्रताप मार्ग
लखनऊ-२२६००१

इस अंक के चित्रकार

२४ अप्रैल, १९७२ में जनमे चित्रकार बालकृष्ण पुरोहित की रचनाएँ एवं रेखांकन प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। कमलेश्वर साहित्य सम्मान एवं कलेक्टर से जर्नलिज्म में पुरस्कार। संप्रति दैनिक भास्कर में उप-संपादक।

संपर्क : २८३, शास्त्री नगर, शास्त्री सर्कल के पास,
जोधपुर (राजस्थान)
दूरभाष : ९७८३४१४०७९

गाजीपुर में स्वामी विवेकानंद

● संजय कृष्ण

योद्धा संन्यासी स्वामी विवेकानंद ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के गाजीपुर में चार महीने तक प्रवास किया। गाजीपुर में उनके बचपन के एक मित्र रहते थे—सतीश चंद्र मुखर्जी। वे गाजीपुर के गोराबाजार में रहते थे। विवेकानंद यहीं ठहरे थे। एक-दूसरे मित्र रायबहादुर गगनचंद्र, जो अफीम कंपनी में अधिकारी थे, के द्वारा ही उन्हें यहाँ के संत पवहारी बाबा के बारे में जानकारी मिली थी। उनसे मिलने ही वे आए थे। उन दिनों विवेकानंद इधर ही भ्रमण कर रहे थे। प्रयाग और बनारस होते हुए गाजीपुर पहुँचे थे। बनारस में मलेरिया ने पकड़ा। कमर दर्द से वे पहले से ही परेशान थे। गाजीपुर आए तो लंबी प्रतीक्षा के बाद उन्हें पवहारी बाबा के दर्शन हुए, बीच-बीच में उनसे वार्त्तालाप भी हुआ और शंका का समाधान भी। आए तो थे दो-चार दिन के लिए ही, लेकिन यहाँ की स्वास्थ्यप्रद जलवायु और पवहारी बाबा के आग्रह ने उन्हें रोक लिया। पवहारी बाबा से मिलने के लंबे समय बाद उन्होंने एक छोटी सी पुस्तिका 'पवहारी बाबा' लिखी। तब तक पवहारी बाबा दुनिया से विदा ले चुके थे; क्योंकि पुस्तक में उनके समाधिस्थ होने का भी समाचार है। विवेकानंद २७ की उम्र में उनसे मिले और वे १३ साल और जीवित रहे। ४० की अवस्था में १९०३ में विवेकानंद भी देश-दुनिया में अपने गुरु का विचार पहुँचा और मठों की स्थापना कर इस लोक से विदा हुए।

विवेकानंद ने यह पुस्तिका १९०३ से पहले ही लिखी होगी। तब तक पवहारी बाबा भी संसार छोड़ चुके थे। स्पष्ट है कि वे पवहारी बाबा की खोज-खबर लेते रहे।

विवेकानंद ने पुस्तिका अंग्रेजी में लिखी थी। हिंदी में यह पहली बार १९५० में आई। पुस्तक के कारण देश-दुनिया में लोग पवहारी बाबा को जानने लगे। वैसे पवहारी बाबा का न नया धर्म चलाने में विश्वास था, न मठ बनाने में और न शिष्य बनाने में। इसलिए वे गुफा से बाहर कहीं गए नहीं। जो लोग इस संत के बारे में सुनते, वे यहाँ आते। बाबा गुफा से बाहर होते तो दर्शन हो जाते, नहीं तो गुफा द्वार को ही प्रणाम कर चले जाते। बाबा योगी भी थे और भक्त भी। उनके बारे में कई तरह की किंवदंतियाँ उनके जीते-जी प्रचलित हो गई थीं। आश्रम में ही उन्होंने एक गुफा बनवा रखी थी और उसी में वे साधनारत रहते थे। उनके बाहर निकलने की तिथि कोई निश्चित नहीं रहती, लेकिन पूर्णिमा से लेकर संक्रांति तक हवन होता था। इस बीच वे गुफा में नहीं जाते थे। कुछ दिनों तक विवेकानंद आश्रम में ही रहे। आश्रम के भीतर एक बगीचा था, तरह-तरह के पेड़-पौधे लगे थे। नीबू के पेड़ों की भी बहुतायत थी, जिसका सेवन विवेकानंद करते थे। विवेकानंद यदि पवहारी बाबा से न मिले होते और उन पर पुस्तिका न लिखी होती तो वे एक स्थानीय संत बनकर रह जाते। हालाँकि पवहारी बाबा चाहते भी नहीं थे कि वे जगप्रसिद्ध हों। ऐसी लोकेषणा उनमें नहीं थी।

विवेकानंद जनवरी १८९० से लेकर अप्रैल तक गाजीपुर में रहे। उनके पहले रवींद्रनाथ टैगोर गाजीपुर में प्रवास कर चुके थे। गुरुदेव भी यहाँ करीब छह मास रहे, सन् १८८८ के मार्च से लेकर जुलाई तक। विवेकानंद यहाँ उनके जाने के दो साल बाद आए। वैसे दोनों के जन्म में दो साल का ही अंतर है। रवींद्रनाथ टैगोर का जन्म ७ मई, १८६१ को हुआ था और विवेकानंद का १२ जनवरी, १८६३ को। दोनों समकालीन थे। दोनों कलकत्ते के ही दो नजदीकी मोहल्लों शिमला और जोड़ासाको में पले-बढ़े थे। पर दोनों में कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं था, न कोई वार्त्तालाप। रवींद्रनाथ टैगोर ने गाजीपुर में जब प्रवास किया तो उस समय उनकी उम्र २७ साल थी और कैसा संयोग कि जब विवेकानंद गाजीपुर में आए तो उस समय उनकी भी उम्र २७ साल ही थी। पर विवेकानंद ने इसका कोई जिक्र नहीं किया। जाहिर है, गाजीपुर के भद्र बंगालियों से रवींद्रनाथ के प्रवास की चर्चा तो विवेकानंद ने सुनी ही होगी। पर किसी पत्र में इसका जिक्र नहीं है।

विवेकानंद अपने गाजीपुर प्रवास के दौरान मित्रों, गुरु भाइयों एवं अग्रजों को करीब १५ पत्र लिखे। संत और गाजीपुर की आबोहवा के बारे में जानकारी दी। पत्रों में कहीं विवेकानंद लिखा, तो कहीं नरेंद्र, कहीं नरेंद्रनाथ। पहला पत्र उन्होंने शुक्रवार, २४ जनवरी, १८९० को प्रमदादास को लिखा। पता था—बाबू सतीशचंद्र मुखर्जी, गोरा बाजार,

गाजीपुर। वे यहाँ तीन दिन पहले पहुँचे थे, यानी २१ जनवरी को। पत्र देखिए, 'मैं तीन दिन हुए, सकुशल गाजीपुर पहुँच गया। यहाँ मैं अपने एक बालसखा बाबू सतीशचंद्र मुखर्जी के यहाँ ठहरा हूँ। गंगाजी पास में ही बहती है, परंतु उसमें स्नान करना कष्टसाध्य है, क्योंकि कोई सीधा रास्ता वहाँ तक नहीं जाता। रेत में चलना बहुत कठिन है।' आगे लिखा है—'मेरी बड़ी इच्छा थी कि मैं वाराणसी आता, परंतु अभी तक बाबाजी (पवहारी बाबा) के दर्शन नहीं हुए। यही मेरे आने का अभिप्राय है। इसलिए कुछ दिनों का विलंब होना अनिवार्य है।'

दूसरा पत्र ३० जनवरी, १८९० को बलराम बोस को लिखा और गाजीपुर की स्वास्थ्यप्रद जलवायु का उल्लेख किया—'…वैद्यनाथ का जल अत्यंत खराब है, हजम नहीं होता। इलाहाबाद अत्यंत घनी बस्ती है। वाराणसी में जब तक रहा, हर समय ज्वर बना रहा, वहाँ इतना 'मलेरिया' है। गाजीपुर में, खासकर जहाँ मैं रहता हूँ, वहाँ की जलवायु स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभदायक है।' आगे सूचना दी कि पवहारी बाबा का निवासस्थान देख आया हूँ। चारों तरफ ऊँची दीवारें हैं, देखने में साहबों का बँगला जैसा है, अंदर बगीचा है। पुनश्च के अंतर्गत विवेकानंद वहाँ की आर्थिक स्थिति का जिक्र करते हैं। बताते हैं कि यहाँ मकान का किराया १५ से २० रुपए है, चावल महँगा है, दूध रुपए में १६ से २० सेर है, अन्यान्य वस्तुएँ सस्ती हैं। और हाँ, यह भी कि 'वाराणसी अत्यंत मलेरियाप्रधान शहर है।' दरअसल, यह पत्र बलराम बोस को लिखा गया और उन्हें गाजीपुर में रहने के लिए सारी बातें बताई गईं कि गाजीपुर कैसा है, कितना महँगा है या सस्ता है। दरअसल, बलराम बोस भी गाजीपुर आना चाहते थे, इसलिए विवेकानंद ने पत्र के माध्यम से ये सब जानकारी मुहैया कराई। विवेकानंद ने भी लिखा कि आप यदि कुछ दिन गाजीपुर में रहें तो अच्छा है। आपके रहने के लिए बँगले की व्यवस्था सतीश कर सकेगा और गगनचंद्र राय नामक एक और व्यक्ति, जो आबकारी कार्यालय में बड़े बाबू हैं, अत्यंत ही सज्जन, परोपकारी तथा मिलनसार हैं। ये लोग सबकुछ व्यवस्था कर देंगे। दरअसल, बलराम भी किसी बीमारी से ग्रस्त थे। स्वास्थ्य लाभ के लिए ही उन्हें गाजीपुर आमंत्रित कर रहे थे, पर ऐसा हो न सका। जुलाई के एक पत्र में विवेकानंद बलराम के असामयिक निधन पर गहरा शोक जताते हैं। जब बलराम के निधन की खबर मिली तो विवेकानंद भागे-भागे कलकत्ता गए।

अगले दिन ३१ जनवरी को वे प्रमदादास मित्र को फिर पत्र लिखते हैं—बाबाजी से भेंट होना अत्यंत कठिन है, वे मकान से बाहर नहीं निकलते, अपनी इच्छानुसार दरवाजे पर आकर भीतर से ही बातें करते हैं। लोगों का कहना है कि भीतर गुफा, यानी तहखाना जैसी एक कोठरी है, जिसमें वे रहते हैं, वे क्या करते हैं, यह वे ही जानते हैं, क्योंकि कभी किसी ने देखा नहीं है। एक दिन मैं वहाँ जाकर बैठा-बैठा कड़ी सर्दी की मार खाकर लौटा था। रविवार को वाराणसी धाम के लिए प्रस्थान करूँगा, यहाँ के लोग मुझे नहीं छोड़ रहे हैं, नहीं तो बाबाजी के दर्शन की अभिलाषा मेरी समाप्त हो चुकी है। फिर लिखते हैं—यह स्थान

सुपरिचित लेखक। 'झारखंड के पर्व-त्योहार, मेले और पर्यटन स्थल' (पुस्तक), 'होती बस आँखें ही आँखें' में नागार्जुन पर लंबा लेख प्रकाशित। 'हिंदी पत्रकारिता : विविध आयाम' पुस्तक में हिंदी पत्रकारिता पर शोधपूर्ण लेख संकलित। पत्र-पत्रिकाओं में सौ से अधिक लेख-रिपोर्ट, समीक्षा आदि प्रकाशित। संप्रति दैनिक जागरण, राँची से संबद्ध।

अत्यंत स्वास्थ्यप्रद है, बस इतनी ही इसकी विशेषता है। नरेंद्र।

स्वामी विवेकानंद बाबा का दर्शन न होने से उकता गए थे। गाजीपुर से कुर्था का आश्रम थोड़ी दूर है। आने-जाने में परेशानी संभव है। कुछ दिन बाद ही बाबा का दर्शन होता है। उनसे खासे प्रभावित भी होते हैं।

७ फरवरी के पत्र में लिखते हैं, बाबाजी देखने में वैष्णव प्रतीत होते हैं। उन्हें योग, भक्ति, विनय की प्रतिमा कहना चाहिए। किसी को मालूम नहीं कि वे क्या खाते-पीते हैं। इसीलिए लोग उन्हें पवहारी बाबा कहते हैं। एक बार जब वे पाँच साल तक गुफा से बाहर नहीं निकले तो लोगों ने समझ लिया कि उन्होंने शरीर त्याग दिया है, किंतु वे फिर उठ आए। पर इस बार वे लोगों के सामने निकलते नहीं और बातचीत भी द्वार के भीतर से ही करते हैं। इतनी मीठी वाणी मैंने कहीं नहीं सुनी, वे प्रश्नों का सीधा उत्तर नहीं देते, बल्कि कहते हैं—'दास क्या जाने।' अगले दिन, ८ फरवरी के पत्र में बाबाजी से मिलने का जिक्र काफी उल्लास के साथ विवेकानंद करते हैं। बड़े भाग्य से बाबाजी से साक्षात्कार हुआ। वास्तव में वे एक महापुरुष हैं। बड़े आश्चर्य की बात है कि इस नास्तिकता के युग में भक्ति एवं योग की अद्‌भुत क्षमता के वे अलौकिक प्रतीक हैं। मैं उनकी शरण में गया और उन्होंने मुझे आश्वासन दिया है, जो हरेक के भाग्य में नहीं। बाबाजी की इच्छा है कि मैं कुछ दिन यहाँ ठहरूँ, वे मेरा कल्याण करेंगे।'

पवहारी बाबा विवेकानंद से २३ साल बड़े थे। यानी जब वे मिले तो उनकी उम्र ४० की रही होगी। इस उम्र तक बाबा काफी लोकप्रिय हो गए थे। एक बार स्वामी विवेकानंद ने पवहारी बाबा से पूछा कि संसार की सहायता करने के लिए अपनी गुफा से बाहर क्यों नहीं आते। बाबा ने एक नकटे साधु की एक कहानी सुनाई और कहा कि तुम्हारी क्या ऐसी इच्छा है कि मैं भी इसी प्रकार के एक और संप्रदाय की स्थापना करूँ? विवेकानंद तार्किक थे और पवहारी बाबा ज्ञानी। एक बार फिर इसी प्रश्न को घुमाकर जब विवेकानंद ने पूछा तो कहा कि तुम्हारी क्या ऐसी धारणा है कि केवल स्थूल शरीर द्वारा ही दूसरों की सहायता की जा सकती है? क्या शरीर के क्रियाशील हुए बिना केवल मन ही दूसरों के मन की सहायता नहीं कर सकता?

एक अवसर पर जब विवेकानंद ने पूछा कि ऐसे श्रेष्ठ योगी होते हुए भी होमाद्रि क्रिया तथा रघुनाथजी की पूजा आदि कर्म, जो साधना की केवल प्रारंभिक अवस्था के लिए समझे जाते हैं, क्यों करते हैं? बाबा ने बहुत ही सहज ढंग से विवेकानंद की इस शंका का समाधान

किया, तुम यही क्यों समझ लेते हो कि प्रत्येक व्यक्ति अपने निज के कल्याण के लिए ही कर्म करता है? क्या एक मनुष्य दूसरों के लिए कर्म नहीं कर सकता? विवेकानंद ने बाबा के कई चमत्कारों का भी जिक्र किया है।

विवेकानंद यहाँ कुछ दिनों के लिए आए थे और दर्शन की अभिलाषा के कारण वे यहाँ चार महीने तक टिके रहे। मार्च १८९० को उन्होंने स्वामी अखंडानंद को पत्र लिखा। पत्र से जाहिर होता है, वे गाजीपुर शहर छोड़, बाबा के यहाँ ही ठहरे थे। लिखा है—मैं इस समय यहाँ के अद्‌भुत योगी और भक्त पवहारीजी के पास ठहरा हूँ। वे अपने कमरे से कभी बाहर नहीं आते। दरवाजे के भीतर से ही बातचीत करते हैं। कमरे के अंदर एक गुफा में वे रहते हैं। कहा जाता है कि वे महीनों समाधिस्थ रहते हैं। अपना बंग देशभक्ति और ज्ञान प्रधान है, वहाँ योग की चर्चा तक नहीं होती। जो कुछ है, वह केवल विचित्र श्वास साधन इत्यादि का हठयोग, वह तो केवल एक प्रकार का व्यायाम है।

इसीलिए मैं इस अद्‌भुत राजयोगी के पास ठहरा हूँ। दूसरे पैराग्राफ में अपने कुछ गुरु भाइयों की शंका का समाधान किया है। उन्हें लगा कि यह अब रामकृष्ण परमहंस को छोड़ कोई और गुरु कर रहे हैं। स्वामीजी ने शंका निवारण करते हुए लिखा है, 'मेरा मूलमंत्र है कि जहाँ जो कुछ अच्छा मिले, सीखना चाहिए। इसके कारण मेरे बहुत से गुरुभाई सोचते हैं कि मेरी गुरुभक्ति कम हो जाएगी। इन्हें मैं पागलों तथा कट्टरपंथियों के विचार समझता हूँ, क्योंकि जितने गुरु हैं, वे सब एक उसी जगद्‌गुरु के अंश तथा आभासस्वरूप हैं। यदि तुम गाजीपुर आओ तो गोराबाजार में सतीश बाबू या गगनबाबू से मेरा ठिकाना पूछ लो। अथवा पवहारी बाबा को तो यहाँ का बच्चा-बच्चा जानता है। उनके आश्रम में जाकर पूछ लेना कि परमहंस कहाँ रहते हैं। लोग तुम्हें मेरा स्थान बता देंगे। मुगलसराय के पास दिलदारनगर नामक एक स्टेशन है, जहाँ से तुम्हें ब्रांच रेलवे द्वारा तारीघाट तक जाना होगा। तारीघाट से गंगा पार करके तुम गाजीपुर पहुँचोगे। अभी तो मैं कुछ दिन गाजीपुर ठहरूँगा।'

विवेकानंद बाबा से दीक्षा भी लेना चाहते थे, लेकिन स्थितियाँ ऐसी आ जातीं कि संकल्प को स्थगित करना पड़ता। वे बाबा से हठयोग सीखना चाहते थे, ताकि उनकी कमर का दर्द दूर हो सके। यह अभिलाषा भी उनकी पूरी नहीं हुई। दूसरी इच्छा थी कि बाबा से कुछ आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करें। यह भी पूरी नहीं हुई। इससे विवेकानंद काफी निराश हो गए। निराशा इस स्तर तक पहुँच गई कि उन्होंने संकल्प ले लिया कि अब किसी बाबा से नहीं मिलना है। विवेकानंद का ध्येय दूसरा था और पवहारी बाबा का दूसरा। विवेकानंद ने खुद अपनी ही पुस्तिका में उनके बारे में लिखा है—'भारत के अन्य अनेक संतों के सदृश पवहारी बाबा के जीवन में भी कोई विशेष बाह्य क्रियाशीलता नहीं दिखाई पड़ती थी। 'शब्द द्वारा नहीं बल्कि जीवन द्वारा ही शिक्षा देनी चाहिए और जो व्यक्ति सत्य धारण करने के योग्य हैं, उन्हीं के जीवन में वह प्रतिफलित होता है।' उनका जीवन इसी भारतीय आदर्श का एक और उदाहरण है। इस श्रेणी के संत, जो कुछ वे जानते हैं, उसका प्रचार करने में पूर्णतया उदासीन रहते हैं, क्योंकि उनकी यह दृढ धारणा होती है कि शब्द द्वारा नहीं, वरन् केवल भीतर की साधना द्वारा ही सत्य की प्राप्ति हो सकती है। उनके निकट धर्म सामाजिक कर्तव्यों की प्रेरक शक्ति नहीं है, वरन् इसी जीवन में सत्य का प्रखर अनुसंधान एवं सत्य की उपलब्धि है। वे काल के किसी एक क्षण में अन्यान्य क्षणों की अपेक्षा अधिक क्षमता स्वीकार नहीं करते। अतएव अनंत काल के प्रत्येक क्षण के एक समान होने के कारण वे इस बात पर जोर देते हैं कि मृत्यु की बाट न जोहकर इसी लोक में तथा प्रस्तुत क्षण में ही आध्यात्मिक सत्यों का साक्षात्कार कर लेना चाहिए। उनकी एक विशेषता यह थी कि वे जिस समय जो काम हाथ में लेते थे, वह चाहे कितना ही तुच्छ क्यों न हो, उसमें पूर्णतया तल्लीन हो जाते थे। वे जिस प्रकार पूर्ण अंत:करण से श्रीरघुनाथजी की पूजा करते थे, उसी एकाग्रता तथा लगन के साथ एक ताँबे का लोटा भी माँजते थे। उन्होंने हमें कर्म रहस्य के संबंध में यह दीक्षा दी थी कि जौन साधन तौन सिद्धि, अर्थात् ध्येयप्राप्ति के साधनों से वैसा ही प्रेम रखना चाहिए, मानो वे स्वयं में ध्येय हों, और वे स्वयं इस महान् सत्य के उत्कृष्ट उदाहरण थे। वे प्रत्यक्ष रूप से कभी उपदेश नहीं देते थे, क्योंकि ऐसा करना तो मानो आचार्यपद ग्रहण करने तथा स्वयं को मानो दूसरों की अपेक्षा उच्चतर आसन पर आरूढ़ कर लेने के सदृश हो जाता। परंतु एक बार जब उनके हृदय का स्रोत खुल जाता था, तब उसमें से अनंत ज्ञान की धारा निकल पड़ती थी। पर फिर भी उनके उत्तर सीधे न होकर संकेतात्मक ही हुआ करते थे। उनके एक ही आँख थी और अपनी वास्तविक उम्र से वे बहुत कम प्रतीत होते थे। उनकी आवाज इतनी मधुर थी कि हमने वैसी आवाज अभी तक नहीं सुनी।'

विवेकानंद ने खुद अपनी ही पुस्तिका में उनके बारे में लिखा है—'भारत के अन्य अनेक संतों के सदृश पवहारी बाबा के जीवन में भी कोई विशेष बाह्य क्रियाशीलता नहीं दिखाई पड़ती थी। 'शब्द द्वारा नहीं बल्कि जीवन द्वारा ही शिक्षा देनी चाहिए और जो व्यक्ति सत्य धारण करने के योग्य हैं, उन्हीं के जीवन में वह प्रतिफलित होता है।'

विवेकानंद ने उनकी एक और विशेषता का उल्लेख नहीं किया है। पवहारी बाबा की लिखावट बहुत सुंदर थी। उनके हस्तलिखित ग्रंथ उनके आश्रम में पड़े हैं। इस तुच्छ लेखक को वह ग्रंथ देखने का मौका मिला। ग्रंथ में खूबसूरत डिजाइनदार किनारे और प्रसंगानुसार चित्र सजे हुए हैं। चित्र भी बाबा ने खुद ही बनाए थे। उन्हें देखकर उनके कलाबोध को समझ सकते हैं और एक संत के भीतर कितना उम्दा कलाकार भी था, चित्र इसकी चुगली करते हैं।

द्वारा—ध्रुव तिवारी का मकान, तपोवन गली,
कोकर, राँची-८३४००१ झारखंड
दूरभाष : ०९८३५७१०९३७

राह

मूल : **जगदीश मल्लीपुरम**

अनुवाद : **आई. जानकी**

हसिया जैसे घुमावदार पहाड़ी राह से कुरवय्या उतर रहा था। उसके पीछे उसके गाँववाले चल रहे थे। दूर से देखने पर मानो पहाड़ से कोई अजगर लिपटा हो, ऐसा प्रतीत होता था।

अरहर, भुट्टा, कोचई, जौ, बाजरा और राह के दोनों ओर की गई खेती, हरे-भरे लहलहाते पेड़-पौधे; पहाड़ के नीचे से देखनेवालों को खूबसूरत नजारा नजर आता था। यह राह पहाड़ से उतर दूर-दराज शहर की ओर जानेवाली सड़क से जा मिलती है। आई.टी.डी.ए. ने पहाड़ी नाले पर बाँध बनाया। बाँध का पानी नीला, चमचमाता व खूबसूरत दिखाई पड़ता था।

'हम सुबह-सुबह चल पड़े, क्या मालूम, वो मिले-न-मिले।' संगमैसु ने शक जताया।

'नहीं मिला तो कोई बात नहीं, हम साप्ताहिक बाजार देख लौट जाएँगे।' उसके साथ चलते व्यक्ति ने जवाब दिया। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों एक-न-एक दिन अवश्य मिलेगा, कहाँ जाएगा। राह चलते लोग आपस में बतिया रहे थे।

ये राह वर्षों पहले घनघोर पहाड़ी जंगल की पगडंडी से थी। राह के दोनों ओर सफेद अर्जुन, बीजा, आम, महुआ, कटहल जैसे तरह-तरह के वृक्षों की छाँह से शीतल रहा करती थी। इसी राह से होकर लोग इन पहाड़ियों की चोटी तक पहुँचा करते थे। कभी-कभी स्थानीय लोग पहाड़ी हिंसक जानवर का शिकार कर इस राह की बगल से उसे चीर-फाड़कर मांस पकाकर खाया करते थे। कुरवय्या सोचता चल रहा था।

इसी राह के बाजू में शोंडोडु ने शराब बेचने की दुकान खोल ली थी। पहाड़ के नीचे गाँव का बनिया उससे दोस्ती कर भोले-भाले पहाड़ी लोगों को ऋण देने का धंधा प्रारंभ किया। ब्याज के रूप में वह पहाड़ी उपज फूलझाड़ू, इमली, महुआ, कटहल, माड़िया, जौ, बाजरा, कावड़-कावड़ भर लोगों से धरवा लिया करता था।

रबर फूल, लालचूड़ी, मोतीमाला, सूई धागा, आईना, कंघी, सुगंधित तेल, पावडर वगैरह-वगैरह इसी मार्ग से चल पहाड़ी घरों तक पहुँचे थे। फलस्वरूप पहाड़ी लोगों के हाथ से पहाड़ के नीचे की उपजाऊ जमीन छिन गई।

कुरवय्या बनिया के पास आया।

घर के मुख्य द्वार के दोनों ओर ऊँचे चबूतरे, घर में सीमेंट का फर्श, लोहे की छड़ोंवाली खिड़कियाँ, बंद दरवाजे में बड़ा ताला; ये सब इस पहाड़ी क्षेत्र ने पहले-पहल इसी घर में देखा था। घर के बीचोबीच आँगन, आँगन के चारों ओर बंद अँधेरे कमरे, उसमें पहाड़ी उपज भरकर कमरे की छत छूते कई-कई पंक्तियों में रखी बोरियाँ, महकता चारों ओर का वातावरण।

'कौन···कौन है बे,' चीखता बनिया घर के बाहर आया। ऊँचा, मोटा, काला शरीर, शरीर पर घने रोम। वह गले में सोने का हार पहने हुए था। हार के नीचे से गले में जनेऊ लटक रहा था।

'मेरा बेटा लड़की भगा लाया है, बिरादरी में भोज कराना होगा।' कुरवय्या धीरे-धीरे मानो अपने आपसे कह रहा हो।' फुसफुसाकर कहा।

'कितना चाहिए?' पूछा बनिया ने।

'कितना कहूँ? मेरी बीबी बीमार थी, तब मैं तुमसे १०० रुपए उधार ले गया था। आज तक वो उधार न चुका पाया, उधर मेरी बीबी भी न रही। अब लड़के की शादी है। कम-से-कम तीन सौ तो खर्च होंगे।' कुरवय्या ने कहा।

बनिया अंदर गया। घर-आँगन में दीवार से लगे आदमकद आईने के सामने खड़ी होकर बनिया की बेटी शृंगार कर रही थी, उसने अपने आँचल को सँवारा, चेहरे पर पाउडर लगाकर माथे पर बिंदी लगाई। कुरवय्या उसे ध्यान से देख रहा था।

'उसे क्या देख रहा है।' बनिया की आवाज सुन कुरवय्या ने घबराकर बनिया की ओर घूमकर देखा।

'क्या तू उसे नहीं पहचानता। वो मेरी बेटी अर्थात् तेरी भानजी है। आ-आ अंदर आ।' बनिया ने कहा।

इस बार आईने के सामने कुरवय्या खड़ा था। कंधे से लगकर सिर के बाल मुड़ गए, कमर से बँधा लँगोट, हाथ में ले लट्ठ। जीवन में पहली बार कुरवय्या ने अपने आपको आईने में देखा था। बनिया ने उसे

पैसे दिए, उसने रुपए कमर में खोंस लिये। उन पैसों से उसने एक गाय खरीदी। गाय का मांस और साँभर-चावल बनवाकर उसने बिरादरी में बेटे की शादी का भोज करवाया।

उस वर्ष छह पेड़ों में इमली फला। उसके खेत में उपजा अरहर और भुट्टा चार-चार कावड़ भरकर, ढोकर खुद ले जाकर वह बनिए के घर दे आया। इस वर्ष बनिए से लिये गए ऋण का उसने ब्याज पटा दिया है। यह याद रखने के लिए उसने एक मोटी डोरी में गाँठ बाँध, झोंपड़ी की छत के बाँस से डोरी बाँध दी। इस तरह हर वर्ष एक गाँठ के हिसाब से बारह गाँठ डोरी में पड़ीं। एक दिन कुरवय्या को बनिए ने बुलाया, 'अरे यार कुरवय्या, मुझे सात हजार रुपए दे दे, उधार पटाना है।'

कुरवय्या आश्चर्यचकित हो गया, पर बनिए से आँख मिलाने का साहस न कर पाया। वह नीचे जमीन ताकता खड़ा रहा। 'क्यों रे, जवाब नहीं दे रहा।' बनिया गरजा।

कुरवय्या ने सिर उठाया। वही घर, वही दीवार, बनिया कुछ और मोटा हो गया था। दीवार पर आईना, पर आईने के सामने बनिए की बेटी के स्थान पर दामाद खड़ा बाल सँवार रहा था। वहीं आँगन में पहाड़ी उपज भरी पड़ी बोरियों पर उसका नाती खेल रहा था। पर कुरवय्या वैसा का वैसा ही था। नहीं-नहीं उसकी कमर झुकने लगी थी। कमर में लँगोट, कान में खोसा बीड़ी, अधनंगे बदन की हड्डियाँ स्पष्ट झलक रही थीं।

'अरे यार, क्यों यों ही खड़ा है, आ-आ, इस कागज पर यहाँ एक अँगूठा लगा दे।' बनिया ने कहा।

अँगूठा लगाना अर्थात् अपनी बस्ती के कई लोगों की तरह अपनी जमीन से हाथ धो बैठना। उसने चुपचाप कागज पर अँगूठा लगा दिया। दिन पूरी तरह ढल चुका था। चारों ओर अँधेरा छा गया था।

□

राह चल रहे लोगों में सबसे वयोवृद्ध कुरवय्या ही था। औरतें, युवक और वृद्ध सब पहाड़ से उतर मैदानी राह पहुँच चुके थे। अभी-अभी वे सब जिस राह से चलकर आए थे, वह कभी पगडंडी थी, बाद में इसे बी.सी.सी. रोड बना दिया गया, उसके बाद साहूकार जैसे धनवान लोगों के लिए गाड़ी चलाने योग्य इसे चौड़ा किया गया, उसके बाद सरकारी योजनाओं के तहत अब यह शहर मुख्य मार्ग से जा मिलनेवाली डामर की सड़क बन गई है।

पहाड़ से उतरे लोग पेड़ की छाँव में रुके, 'जंगल में पेड़ की छाँव तलाशने के दिन आ गए' कहता कुरवय्या पेड़ के तने से लगकर बैठ गया। 'दादा, तू चल नहीं पाएगा। मत आ, हमने तुझे मना किया था। तू नहीं माना।' शरीर से चू रहा पसीना पोंछते तोयकोडु ने कहा।

'मैं तुम सबमें एक हूँ। मेरा तुम्हारे साथ आना जरूरी है।' कुरवैय्या ने जवाब दिया। गाँव की समस्या जैसे गाँव में बिजली के खंभे हों, गाँव में पक्की सड़क हो, गाँव में बस सुविधा हो, सरकारी बैंक से ऋण लेने जैसी माँगों को लेकर गाँव के लोग आज से पहले बहुत बार इस तरह सरकारी कार्यालय समूह बनाकर कई-कई बार चक्कर लगा चुके हैं। पर आज उनका कुछ और ही इरादा था। आज वे मंडल कार्यालय अध्यक्ष से सवाल-जवाब करने जा रहे थे। जो कुरवय्या का पोता था। उसका नाम तविटय्या है। वो गाँव के लोगों को विश्वास में लेता गया और अपना कद बढ़ाया। गाँव के लोगों को याद है। जब उसने अपने पैरों तले जमीन बना ली। लोगों को धोखा दिया। कुरवय्या को इस बात का दु:ख है कि वह उसका पोता है।

□

उस दिन गाँव के बड़े-बूढ़े और युवा सब बैठकर विचार कर रहे थे कि गाँव की देवी की पूजा का उत्सव कैसे मनाया जाए? कुछ लोग रस्सी से बुनी खटिया पर बैठे थे, कुछ निवाड़वाली खटिया पर, कुछ प्लास्टिक कुरसी पर। वहाँ बैठे ज्यादातर लोग पहाड़ी जमीन पर खेती कर जीवनयापन करनेवाले थे। कुछ स्थानीय सरकारी संस्थानों में काम करनेवाले शिक्षक, सेल्समैन, पुलिस जवान; सरकारी शाला निवास-गृह में खाना बनानेवाले रसोइए और पहरेदार वगैरह थे।

वे सब कौन कितना चंदा दे सकता है, कुल कितना चंदा जमा होगा, हिसाब लगा रहे थे। व्यक्तिगत चंदे के अलावा गाँव में बोवाई-कटाई के समय एक साथ बहुत काम रहता है। मजदूर नहीं मिलते। उन दिनों गाँव के लोग छोटे-छोटे समूह में बँट ठेका लेकर काम करते हैं। इस तरह ठेका काम स्वरूप मिली मजदूरी में से औसतन कितना धन चंदा हेतु वसूल किया जाए। उक्त बातों पर लोग विचार-विमर्श कर रहे थे।

'माँ को बलि देनेवाले गाय-बकरे का खर्च मैं उठाऊँगा।' तविटय्या कुरसी से खड़ा होकर बोला। वह क्यों अपनी जगह से खड़ा हुआ और क्या कह रहा है। पलभर वहाँ बैठे लोग समझ न पाए। तविटय्या ने अपनी बात दुहराई। उसकी बातें सुन लोग चकित रह गए। तविटय्या जी.सी.सी. में सेल्समैन की नौकरी किया करता था।

हर व्यक्ति और ठेके में से औसतन लिये जानेवाले चंदे से भी उत्सव का खर्च पूरा न पड़ रहा था। वहाँ बैठे लोगों से कुछ ज्यादा चंदा देने मात्र से वे नाराज हुए जा रहे थे। ऐसे में इतना ज्यादा खर्च करने की बात तविटय्या कह रहा था। लोग आश्चर्यचकित ही नहीं, शक की निगाहों से उसकी ओर देखने लगे।

'हम अपने गाँव में दस साल में एक बार देवी का त्योहार मनाते हैं। ऐसे में 'हाय पैसा, हाय खर्च' कहकर सिर पीटना ठीक नहीं। आप लोगों में से खुशी-खुशी जो चंदा देना चाहते हैं दें, वरना न दें, मैं देवी पूजा उत्सव की जिम्मेवारी लेता हूँ।' तविटय्या ने सिर्फ कहा ही नहीं, यथा सही प्रकार उत्सव हो, इसकी जिम्मेवारी भी उठाई, उत्सव के समय शौक रखनेवालों को जी-भरकर शराब भी पिलाई। ग्रामदेवी पूजा के त्योहार के बाद लोग तविटय्या पर शक करना छोड़ उसकी इज्जत करने लगे।

एक रात पहाड़ी नाले के उस पार झोंपड़ी में सो रहे लोगों को पुलिस दलवालों ने खींच ले जाकर हवालात में बंद कर दिया। दूसरी

सुबह तविटय्या गाँववालों को साथ ले जाकर पुलिस थाने गया। एस.आई. साहब से मिल समझौता करवाना चाहा। एस.आई. ने एक न मानी। तविटय्या एम.आर.ओ. साहब के पास विनती-पत्र लेकर गया, फिर भी बात न बनी तो स्थानीय विधायक को लेकर मंत्रीजी से मिला, तब जाकर गाँव की जेल में बंद लोगों को बेल पर छोड़ा गया।

'तविटय्या न होता तो हमारा क्या होता।' पुलिस थाने से छूटे लोग तविटय्या के एहसान के तले दब गए।

उक्त घटना के बाद तविटय्या स्थानीय समस्याओं को लेकर सरकारी कार्यालय घूमा करता। गाँव के वृद्ध एवं विधवाओं को सरकारी पेंशन दिलाने में सफल रहा। कोई युवा कॉलेज छोड़ यों ही घूमता उसे दिख जाता तो उसे समझा-बुझाकर विद्यालय भेजा करता। गाँव के गरीब माता-पिता बच्चे की फीस न भर पाते, बच्चे का स्कूल जाना छूट जाता तो तविटय्या अपनी जेब से बच्चे की फीस भरा करते थे।

तविटय्या ने गाँव पगडंडी को चौड़ी सड़क बनाने का सरकारी ठेका लिया। सूखे के समय लोगों को मजदूरी मिली। इतना ही नहीं, सप्ताह के अंत में वह लोगों को मात्र मजदूरी के पैसे ही नहीं, मुरगा मांस और शराब भी खिलाया-पिलाया करता था। तविटय्या ने कोशिश कर गाँववालों को सरकारी अनुदान दिलवाया, ताकि गाँव में झोंपड़ियों के स्थान पर टिनवाले सीमेंट के पक्के मकान बनें। गाँव के लोग घर की छत छाने जब जंगल से लकड़ी काट रहे थे तो फॉरेस्ट वालों ने उन्हें पकड़ लिया, तब तविटय्या ने फॉरेस्ट वालों को गाँव बुलाकर अपने खर्चे से पार्टी और घूस देकर लोगों को छुड़ाया। अब गाँव का बच्चा-बच्चा तविटय्या के एहसान तले दब गया। तविटय्या जैसा व्यक्ति गाँव में कम-से-कम एक होना चाहिए। गाँव के लोग कहने लगे थे।

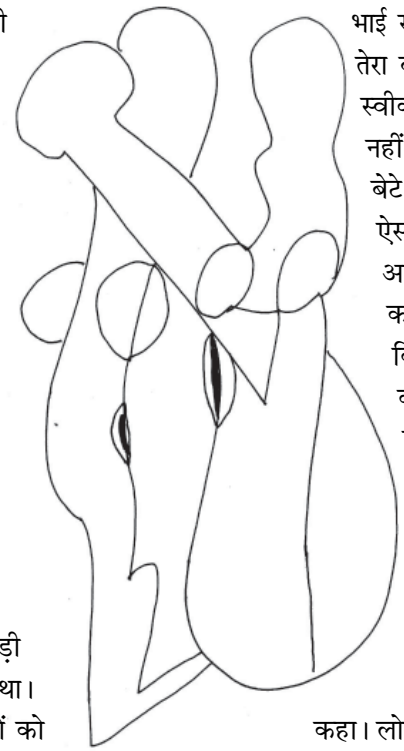

उक्त घटना के बाद तविटय्या सरकारी पहाड़ी लकड़ी कटवाकर बेधड़क शहर भेज दिया करता था। एक दिन तविटय्या ने गाँव के बड़े-बूढ़े और युवाओं को बुलाकर सभा की, कहा, 'मैं नौकरी छोड़ देना चाहता हूँ।' लोग एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। उन्हें कुछ समझ ही न आया। तविटय्या ने आगे बात बढ़ाते हुए कहा, 'आप सबकी अनुमति हो तो मैं चुनाव लड़ना चाहता हूँ, मैं एम.पी. टी.सी. के चुनाव में खड़ा होना चाहता हूँ।'

तविटय्या अब तक लोकप्रिय हो चुका था। किसी ने उसका विरोध नहीं किया। थोड़ी देर बाद एक ने धीरे से कहा, 'सारा गाँव यही चाहता है।' एक के बाद दूसरे ने, दूसरे से तीसरे ने उसका समर्थन किया।

'बेटा, तू नौकरी छोड़ देगा, तुझे याद है कि भूल गया, ये नौकरी तुझे कैसे प्राप्त हुई।' बेसुरी बूढ़े ने कहा। सब बूढ़े की ओर देखने लगे। वह बीड़ी पी रहा था। उसने बीड़ी बुझाई। कान में खोंसी, मुँह में जमा थूक पी थूका, उसके बाद अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कहा, 'तेरे दादा ने मात्र ४०० रुपए बनिए से उधार लिये थे। वो लगातार ब्याज पटा भी रहा था, फिर भी बनिए ने ४०० रुपए के स्थान पर ७००० रुपए बताकर तेरे दादा से अँगूठा लगवाकर तुम्हारी जमीन छीन ली। यह अन्याय तेरा बाप सह न पाया, लालझंडा पकड़ घने जंगल की ओर भाग गया और भाइयों से जा मिला। तेरे बाप ने पुलिस के डंडे खाए, भूखा-प्यासा रहा, जंगल-जंगल घूम-घूमकर आंदोलन करता रहा। दिन-पर-दिन आंदोलन उग्र रूप धारण करने लगा।

'आंदोलन क्रांति में न बदल जाए, इसलिए सरकार समझौते पर उतर आई। फलस्वरूप हम सबको हमारी खेती पुनः प्राप्त हुई। सरकार ने 'पहाड़ी लोगों की जमीन दूसरी जाति का कोई न खरीद सकता है, न बेच सकता है, ऐसा नियम बना दिया। आंदोलन सफल होने के बाद सरकार ने प्रस्ताव रखा कि जंगल और विद्रोह मार्ग छोड़ जो भाई समाज में रहेगा, उसे सरकार सरकारी नौकरी देगी। तेरा बाप गाँव आकर रहने लगा, पर सरकारी नौकरी न स्वीकारी। तेरे दादा कुरवय्या ने कहा, तुझे सरकारी नौकरी नहीं चाहिए तो कोई बात नहीं, कम-से-कम तू अपने बेटे के लिए यह नौकरी सुरक्षित करवा ले। तेरे पिता ने ऐसा ही किया, इसी वजह से तुझे सरकारी नौकरी मिली। आज तू इस नौकरी को छोड़ देगा, कह रहा है ?' बूढ़े ने कहा। बेसुरी बूढ़े ने उन दिनों घटित घटना का वर्णन किया। वहाँ उपस्थित बढ़े-बूढ़ों को उन दिनों के संघर्ष की यादें ताजा हो गईं। कुरवय्या को अपने बेटे की याद आई। उसने कितने दुःख सहे, याद कर उसका मन भारी हो गया। वो चुपचाप वहाँ से उठकर चला गया।

'मुझे सब मालूम है। याद भी है, फिर भी गाँव का एक व्यक्ति सरकार में रहे तो गाँव का भला होगा। मैंने चुनाव लड़ने का निर्णय लिया है। वो भी आप सब स्वीकार करें तो।' तविटय्या ने कहा। लोगों ने उत्साहपूर्वक उसका समर्थन किया।

चुनाव के दिन आ गए। तविटय्या ने नौकरी छोड़ दी और एम.पी.टी.सी. पद हेतु चुनाव में खड़ा हुआ। वह गाँव-गाँव घूमकर प्रचार करता। भाषण में अपने पिता के त्याग का जिक्र करता। वह कहता, मैं अपने पिता की तर्ज पर चलना चाहता हूँ, पर मेरे पिता ने सरकारी नीतियों के खिलाफ आंदोलन किया था। मैं सरकार में रहकर पहाड़ी निवासियों के हित में काम करना चाहता हूँ। कृपया आप मेरा विश्वास करें और मुझे मौका दें।' लोगों ने तविटय्या का विश्वास किया। वह चुनाव जीत गया। अब वह अपने क्षेत्र का मंडल अध्यक्ष बन गया।

गाँव के लोग खुशी से झूम गए। उन्होंने उत्सव मनाया। तविटय्या हमारा है, अब हमारे क्षेत्र की उन्नति होगी। हमारे यहाँ युवा को रोजगार

मिलेगा। गाँववालों का आत्मविश्वास बढ़ गया। पहले वे जब काम से सरकारी दफ्तर जाया करते थे। कर्मचारी की चापलूसी कर काम करवाया करते थे। अब वे सरकारी दफ्तर में कर्मचारी पर दबाव डाल काम करवाने लगे।

चुनाव जीतने के बाद कुछ दिन तविटय्या ने अपने क्षेत्र में विकास का काम करवाया। गाँव के बेरोजगार युवाओं को वह प्रोत्साहित कर सरकारी ठेका दिलवाया करता था। जिस युवा के पास धन न होता, उसे ऋण देकर ठेका दिलवाता। काम सँभल होने के बाद जब युवा उधार पटाने आता, वह अपना प्रतिशत जोड़कर ऋण वसूल लेता, फिर भी लोग उससे खुश ही रहते। वह अपने साथ सामनेवाले को भी फायदा पहुँचा रहा है।

एक दिन संध्या तविटय्या मोटरसाइकिल पर गाँव आया। उसके पीछे एक अनजान व्यक्ति बैठा हुआ था। गाँव के लोगों ने तविटय्या और साथी का दिल खोलकर स्वागत किया। लोगों ने गाँव के बीच खाट बिछाकर उसे बैठाया, कच्चा नारियल तोड़ पानी पीने को दिया, 'अरे-अरे, यह मेरा गाँव है। तुम सब मेरे अपने हो। इस तरह मुझे सम्मान देने की जरूरत नहीं।' कहता हुआ उसने नारियल पानी पिया। तविटय्या ने उसके सामने बैठे लोगों पर एक नजर डाली और कहना प्रारंभ किया, 'आज मुझे तुम सबकी सहायता की आवश्यकता है।' लोगों ने एक-दूसरे की ओर प्रश्न भरी नजरों से देखा। तविटय्या ने बात आगे बढ़ाई, 'मुझे कुछ धन की आवश्यकता है।'

लोग चकित रह गए। उनमें से एक ने अचरज भरे स्वर में पूछ लिया, 'धन की आवश्यकता है और तुम हमारे पास आए हो?'

'हाँ-हाँ, मैं आपके पास ही आया हूँ।' उसने इत्मीनान से अपनी कमर के पीछे खाट पर हाथ टिकाकर बैठते हुए लोगों की ओर ध्यान से देखते हुए कहा।

अब आगे वह क्या कहनेवाला है। लोग उत्कंठित भाव से उसकी ओर देख रहे थे।

'मैंने लोन लेकर एक डेयरी फार्म खोलने का निर्णय लिया है। मैंने कुछ पैसे खर्च किए हैं और पैसों की जरूरत है।' बूढ़ा कुरवय्या बीड़ी पीता, लकड़ी टेकता वहाँ आकर खड़ा हुआ। वहाँ किस विषय पर चर्चा हो रही है। उसे कुछ समझ न आया। वह ध्यान से सुनने लगा। उसने बीड़ी बुझाकर कान में खोंस ली।

वहाँ बैठे लोगो में से एक ने सबके बदले पूछा।

इसी प्रश्न का तविटय्या को इंतजार था, वह उत्साहपूर्वक कहने लगा, 'बताता हूँ, बताता हूँ, यह गाँव मेरा है। मैं आप सबका हूँ। आप सब मेरा विश्वास करते हैं। कम-से-कम मैं तो ऐसा ही मानता हूँ।'

किसी ने आपत्ति नहीं जताई।

'मैं सोच रहा हूँ। आप लोगों की जमीन का पट्टा ले जाऊँ और उस पर कुछ धन ऋण लूँ। आप अपनी-अपनी खेती में जोतते-बोते रहें, जब मेरा धंधा चल निकलेगा। मैं एक-एक कर ऋण चुका दूँगा। जो पट्टा पुस्तक आपके घर में रखी है, वह बैंक में सुरक्षित रहेगी। अगर आप मेरा विश्वास करते हैं तो दें, वरना...' जान-बूझकर उसने वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

लोगों ने सहज ही अपनी जमीन की पट्टा-पुस्तक तविटय्या को दे दी। तविटय्या ने अपनी साख के बलबूते बैंक से ज्यादा-से-ज्यादा ऋण ले लिया।

दिन-महीने-महीनों से साल गुजर गए। गाँव में डेयरी फार्म नहीं खुला। गाँव के लोग अपनी-अपनी जमीन जोतते रहे। फसल उगाते रहे। हारी-बीमारी या बच्चों की पढ़ाई में पैसों की जरूरत आड़े समय आती कुछ लोग तविटय्या के पास गए। उन्होंने अपनी जमीन का पट्टा पुस्तक माँगी।

'मेरा काम नहीं हो पाया है। मेरा धन फँस गया है। ऋण डेयरी का सारा काम धरा रह गया है। कोई-न-कोई अड़ंगा लगा रहा है।'

तविटय्या के पास गए लोगों को कुछ समझ न आ रहा था। वह एक-दूसरे का मुँह ताकते यों ही खड़े रहे। 'सच हो सकता है, यह हमारा आदमी है। हमसे झूठ नहीं कहेगा।' कुछ ने सोचा।

'एक काम करते हैं। आड़े वक्त आप मेरे पास आए हैं। वैसे भी वह पहाड़ी-पथरीली जमीन जब पानी बरसे तब फसल देती है, वरना नहीं। हम उस पर जितनी मेहनत करते हैं। उस हिसाब से हमें फसल नहीं प्राप्त होती। अकसर हम उस जमीन को बेच देने की सोचते हैं, पर हम पहाड़ी लोगों से कोई जमीन खरीदने के लिए तैयार नहीं होता। मैं आपकी जरूरत को समझ सकता हूँ। मैं उस जमीन के बदले आपको कुछ धन देकर जमीन मैं रख लेता हूँ।'

तुरंत तविटय्या का प्रस्ताव मान लिया। कुछ लोगों ने कुछ दिन सोच-विचार करने के बाद तविटय्या के पास जाकर जमीन के बदले पैसे ले लिये।

□

पेड़ की छाँव में कुछ देर सुस्ताने के बाद लोग चल पड़े।

'हम जा तो रहे हैं, क्या मालूम तविटय्या मिले न मिले।' उनमें से एक ने शंका जताई।

'अब तो इतनी दूर आ गए हैं।' दूसरे ने कहा।

उस दिन साप्ताहिक बाजार होने की वजह से मंडल कार्यालय में बहुत भीड़ थी। वहाँ का वातावरण बहुत गरम था। तविटय्या के गाँववाले वहाँ पहुँच जाने के कारण और वहाँ का वातावरण गरमा गया। लोगों ने मंडल अधिकारी कार्यालय में है या नहीं, पता लगाया।

'सरकार ने डेयरी फार्म हेतु अनुमति दे दी है। बहुत दिनों बाद कार्यालय आए हैं। अधिकारी उसी काम में व्यस्त हैं।' कार्यालय में पता चला। लोग सीधे तविटय्या के कमरे में जा घुसे। एक साथ उसके गाँव के लोग उसके कमरे में आ गए, देख तविटय्या चकित रह गया। वह कुछ कागजों में दस्तख्त कर रहा था।

'क्या बात है? तुम सब मिलकर यहाँ क्यों आए हो?' उसने सिर उठाए बिना पूछा।

'हमसे पूछ रहे हो, क्या तुम्हें नहीं मालूम?' एक ने कहा।

'जब तक तुम नहीं बताओगे, मुझे कैसे पता चलेगा?' उसने कहा।

'तो सुनो, हमें सबकुछ पता चल गया है। हमारी जमीन पर तुमने बैंक से जो ऋण लिया था, सरकार ने वह ऋण माफ कर दिया। तुमने हमारे पैसे हमें देकर जमीन खरीद ली। हमें तुमने जो पैसे दिए, वह पैसे काटकर एक एकड़ का दस हजार के हिसाब सें हमें रुपए दो या हमारी जमीन हमें लौटा दो।' मंडंगी बूढ़ी ने तविटय्या के सामने खड़े होकर स्पष्ट कह दिया। दरअसल, एक स्वच्छंद संस्था प्रतिनिधि गाँव आया था, उसने गाँव में सभा की, सरकार ने पहाड़ी लोगों की जमीन पर दिया ऋण माफ कर दिया है। गाँववालों को बता दिया।

बुढ़िया का साहस देख पल भर तविटय्या हकबकाकर चुप रह गया। कुछ देर बाद बोल, 'अब वह जमीन मेरी है, मैं उससे बैंक ऋण लूँ और बैंक ऋण माफ करे, इससे तुम्हें मतलब?'

तविटय्या साफ मुकर जाएगा, इस बात का वहाँ आए लोगों को अंदाजा था। वहाँ आई महिलाएँ तविटय्या को शाप देने व चीखने-चिल्लाने लगीं। पुरुष वाद-विवाद पर उतर आए। बिगछ़ते माहौल को देख तविटय्या ने अटेंडर को घंटी बजाकर बुलाया और कहा, 'इन सबको कमरे के बाहर ढकेल दो—चार-पाँच लोगों ने मिलकर अटेंडर को ही कमरे से बाहर ढकेल दिया। तविटय्या ने फोन करना चाहा। लोगों ने फोन तार तोड़ दी। अब तविटय्या डर गया।

कुरवय्या के मन में तूफान चल रहा था। पहाड़ी निवासी की किस्मत में क्या हमेशा छला जाना ही लिखा रहता है। इसके पहले हमें बाहरी लोगों ने छला। आज अपना ही छल रहा है। कुरवय्या गुस्से में लोगों के बीच से चलकर तविटय्या के पास आया, 'क्यों रे तविटी, तू हमारा है, हमारे साथ है, कहता था। हमारे साथ चलने का दिखावा करता रहा और अपने लिए अलग राह चुन ली। पर याद रख, जहाँ चाह हो, वहाँ अनगिनत राह खुद-ब-खुद खुल जाती हैं। हम भी देख लेंगे कि तू हमें छलकर, हमें नकारकर वह डेयरी फार्म कैसे खोलेगा, कैसे चलाएगा।' कुरवय्या अपनी बात कह कमरे से बाहर निकल गया। गाँव के लोग उसके पीछे निकल गए। सब कमरे का दरवाजा बंद कर कमरे के बाहर दीवार जैसे खड़े हो गए।

'हमारी जमीन या धन हमें देगा या नहीं? स्पष्ट जवाब मिलने तक हम इसे नहीं छोड़नेवाले।' उन्होंने कहा।

उनके सामने पहाड़ मानो उन्हें दृढ निश्चयी होने का आशीर्वाद दे रहा था। वे जिस राह से होकर आए थे, वह भी उनके साथ थी।

बुढा कॉलोनी
फेस-३, एम.आई.जी. १/२५०
विजयनगरम्-५३५००३ (आं.प्र.)

दर्द बाँट लो

कविता

● तन्वी सिंह

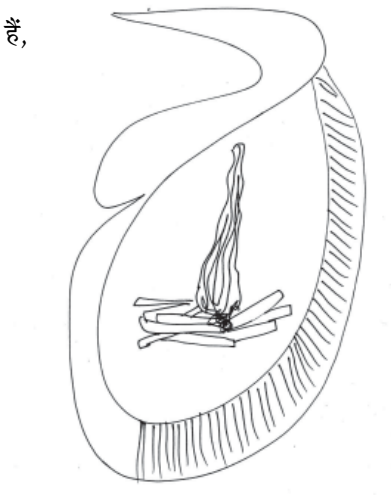

हमने देखी हैं वो कश्तियाँ भी,
जो किनारा ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कही लहरों में खो जाती हैं,
हमने देखी हैं वो आँखें भी,
जो जाने कितने ख्वाब देखते-देखते सो जाती हैं,
हमने देखी हैं वो मासूम निगाहें भी,
जो किसी की याद में जाने कितना रो जाती हैं,
हमने देखी हैं वो खामोशी भी,
जो कुछ न कहते हुए भी हर बात कह जाती हैं,
हमने देखी हैं वो बाँहें भी,
जो जाने कितनी लाशों से लिपटी होती हैं,
हमने देखे हैं वो हाथ भी,
जो आखिरी साँस खत्म होने पे उन्हें जला देते हैं,
हमने देखे हैं वो भूखे पेट भी,
जिसकी भूख मिटाने की खातिर लोग अपना जमीर भुला देते हैं,
हमने देखी है वो गरीबी भी,
जो रोटी न मिलने पर खुद को भूखा सुला देते हैं,
हमने देखी है बच्चों की वो मासूमियत भी,
जो दो पैसों की खातिर अपना बचपन गँवा देते हैं।

एहसास हो जाए गर हमें हर इनसान के दर्द का,
इंतजार खत्म हो जाए उनका किसी हमदर्द का,
ऐसा नहीं है कि इनसानियत मर गई है,
बस ऊपर उसके, बुराई अपना घर कर गई है।
अपने स्वार्थ में इतने मशगूल हो गए हैं हम
कि खुद की पहचान धुलने लगी है,
खो गए हैं अपनी ही जिंदगी में ऐसे
लोगों का दर्द बाँटना भूलने लगे हैं।
हर किसी के अंदर बैठा है एक सच्चा इनसान
वक्त है, अब भी उसे जगा दो,
बची है अब भी इनसानियत यहाँ,
बढ़ाओ अपने हाथ और पूरी दुनिया को दिखा दो।

माले हाऊस, महावीर कालॉनी
जैन आरा मशीन के पास
आनपारा मोड़, बीना परसाई रोड,
सोनभद्र-२३१२२५ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९६७०३०१७०१

कहानी

चिराग जो बुझ गए

● रघुराज सिंह कर्मयोगी

विजय प्रतीक्षा कर रहा था कि उसने पुलिस की भरती के लिए आवेदन किया है, उसका बुलावा आ जाए। इसके लिए वह हर रोज दौड़ लगाता। प्रातः अलसभोर कम-से-कम पाँच कि.मी. नहर के किनारे-किनारे दौड़ता हुआ निकल जाता! इसके बाद व्यायामशाला जाकर एक घंटे तक कसरत करता रहता। नौ बजे के बाद वह घर लौटता।

एक दिन दरवाजे पर डाकिए ने दस्तक दी तो उछल पड़ा। लिफाफा लेकर खोलकर देखा तो वास्तव में पुलिस में भरती के लिए जो प्रतियोगिता होनी थी, उसके लिए बुलावा-पत्र था। पुलिस में भरती होकर जनता के दुःख-दर्द बाँटने का उसका बड़ा मन था। इसलिए दो महीने पहले ही उसने तैयारी करनी शुरू कर दी। उसका मानना था कि पुलिस ही एक ऐसा संगठन है, जो कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में भी परिणाम देती है। नदी में कोई डूब गया हो तो उसे निकलवाने की व्यवस्था करना। शहर के यातायात को दुरुस्त करना हो तो हर चौराहे पर पुलिस हाजिर। चोर, डाकुओं, बलात्कारियों को सबक सिखाना हो या किसी बड़े आयोजन को सफल बनाना हो तो पुलिस के बिना संभव नहीं। अब थोड़े-बहुत असामाजिक कर्मचारी तो हर संगठन में होते हैं, ऐसे कुछ लोगों की बदौलत ही पुलिस बदनाम है।

मगर इतना तय है कि पुलिस जाग रही होती है, तभी जनता निश्चिंत होकर सोती है। इसलिए अन्य संगठनों में जाने के बजाय वह पुलिस में भरती होने के लिए दृढ संकल्पित था। स्वास्थ्य परीक्षण की तिथि से १० दिन पहले ही उसे बुलावा-पत्र मिल गया था। अब तो उसके पैर जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। निर्धारित तिथि से एक दिन पहले तैयार होकर चलने को हुआ तो माँ ने अंदर से आवाज दी, ''बेटा, मैंने तेरे लिए आलू-गोबी की सूखी सब्जी के साथ घी के पराँठे बनाकर टिफिन में रख दिए हैं। शाम को काम आएँगे, खा लेना।''

''माँ, आपको परेशान होने की आवश्यकता नहीं थी, किसी भी ढाबे पर खा लूँगा। ढेर सारे सस्ते होटल मिल जाते हैं। जो तीस-पैंतीस रुपए में भरपेट भोजन खिलाते हैं।'' विजय ने कहा। जो नहा-धोकर, कंघी करते हुए माँ के पास तक चला आया था।

''खिला देते होंगे। मगर उसमें माँ का प्यार कहाँ!'' माँ ने कहा तो विजय के शरीर में रोमांच की फुरफुरी सी दौड़ गई। टिफिन लेकर उसे बैग में रखा और माँ-बापू के पैर छूकर बाहर आ गया।

थोड़ी दूर चला था कि मुख्य सड़क पर आ गया। सैकड़ों वाहन स्टेशन से आ-जा रहे हैं। जैसे ही विजय ने एक ऑटोवाले को रुकने का संकेत किया, वह रुक गया और बोला—

''कहाँ जाना है बाबू?''

''रेलवे स्टेशन तक।''

''पचास रुपए लगेंगे।''

''यार, पचास रुपए तो ज्यादा हैं। चालीस में सौदा पक्का।'' विजय ने कहा तो थोड़ी सी ना-नुकर के बाद पैंतालीस में तय हो गया।

विजय उसमें बैठ गया। दो लड़के पहले से ही बैठे थे। शायद उन्हें भी स्टेशन ही जाना था। थोड़ी देर तक चुपचाप बैठने के बाद उनमें बातचीत प्रारंभ हुई। पता चला कि वे भी पुलिस में भरती होने के लिए अजमेर जा रहे हैं।

ख्वाजा की नगरी आध्यात्मिक पवित्रता के लिए देश-विदेश में विख्यात है। मेओ कॉलेज वहाँ की शान है, जिसमें पहले अंग्रेज एवं राजा-महाराजाओं के बच्चे पढ़ा करते थे। अब एस.पी., कलेक्टर, बड़े-बड़े अधिकारी, व्यापारी और मंत्रियों के बच्चे पढ़ने आते हैं। शिक्षा ग्रहण करके अजमेर का नाम और यादें अपने साथ ले जाते हैं।

पृथ्वीराज चौहान की राजधानी भी अजमेर थी। तब इसे 'अजयमेरू' के नाम से जाना जाता था। आना सागर, फाई सागर दौलताबाग यहाँ के दर्शनीय स्थान हैं। पुलिस की भरती के लिए वहाँ स्वास्थ्य परीक्षण प्रतियोगिता रखी गई थी। इसमें लंबाई, चौड़ाई, वजन का आकलन और सामूहिक दौड़ का कार्यक्रम तय था।

तीनों आपस में बातचीत करते-करते अस्थायी यात्रा-मित्रों के रूप में घुल-मिल गए। समय से पहुँचना था, लेट न हो जाएँ, इसलिए विजय ऑटोवाले से बोला—

''भैया, जरा ऑटो को तेज चलाओ।''

''मैं आपको ट्रेन छूटने से दस मिनट पहले स्टेशन पहुँचा दूँगा।'' ऑटोवाले ने कहा। वह अच्छी तरह जानता था कि ऑटो को बेहताशा दौड़ाने के बजाय संयम से चलाना उचित है।

अभी कल ही की घटना है। एक ट्रक फ्लाई ओवर ब्रिज से नीचे की तरफ उतर रहा था! मोटर साइकिल सवार पुल के दूसरी तरफ से सड़क पार करना चाहता था। मोटर साइकिल वाला साइड से थोड़ा मुड़ा ही था कि ट्रक उसके ऊपर चढ़ गया और स्वर्गवासी बन गया।

''विजय, ऑटोवाले पर तेज चलाने के दबाव मत डालो। चालीस-पचास की गति पर्याप्त होती है। उसे शांति से चलने दो।'' नरेंद्र ने कहा, जो उसके साथ ही रिक्शे में बैठा था।

''दुर्घटना से देर भली।'' ऑटोवाला बोला।

''मगर यार देर हो गई और ट्रेन छूट गई तो समझ हमारी जिंदगी की शाम हो जाएगी। तेरी तरह हमें भी जीवन भर ऑटो चलाना पड़ेगा।'' श्याम ने कहा।

''ऑटोवाला सामान्य गति से चल रहा है, उसे चलने दो। अभी समय है। गाड़ी छूटने से पहले पहुँच जाएँगे।'' तीनों आश्वस्त हुए। स्टेशन आते ही ऑटोवाले ने पोर्च से पहले खड़ा कर दिया। किराया चुकाकर तीनों ट्रेन पर पहुँच गए। गाड़ी तैयार खड़ी मिली। देखा तो सभी डिब्बे खचाखच भरे हैं। पैर रखने को भी जगह न थी। पूरी गाड़ी प्रतियोगी यात्रियों से भरी है।

डिब्बे के प्रवेश-द्वारों पर दोनों तरफ जो हैंडिल लगे होते हैं। उन पर भी तीन-तीन लड़के लटके हुए हैं। नरेंद्र, श्याम और विजय; जिस स्टेशन से ट्रेन में सवार होना चाहते थे। वहाँ से माधोदूर तक का रेल-पथ विधुतीकृत है। रेल प्रशासन ने यात्रियों की सुरक्षा के लिए स्टेशन पर लिखवा दिया है—ऊपर बिजली के तारों में चालीस हजार बोल्ट का करंट दौड़ रहा है। यात्री डिब्बों के ऊपर बैठकर यात्रा करने का खतरा मोल न लें, जान जा सकती है।

अत: उनमें से किसी का साहस ट्रेन की छत पर बैठने का न हुआ। आगे बढ़े तो इंजन के एकदम पीछेवाले डिब्बे में भीड़ अधिक न थी, फिर भी बैठने को उन्हें सीट न मिली। इसलिए उसमें घुस गए और खड़े-खड़े यात्रा करने पर विवश होना पड़ा।

दस-पंद्रह वर्षों से रेलों का किराया बढ़ाया नहीं है! जनता सड़क परिवहन के बजाय रेलों में यात्रा करना उचित समझती है, क्योंकि रेलों की दुर्घटनाएँ कम होती हैं। वह यात्रियों को सुरक्षित यात्रा का भरोसा देती हैं। अत: बसों के बजाय ट्रेनों में भीड़ ज्यादा ही रहती है।

ट्रेन के ड्राइवर ने ट्रेन चलाने के लिए हॉर्न बजाया। जिससे यात्री सावधान हो जाएँ! उधर गार्ड ने सीटी बजाकर चलने का संकेत दिया और हरी झंडी दी। एक बार पुन: ड्राइवर ने अंतिम बार हॉर्न दिया। गाड़ी धीरे-धीरे सरकने लगी। विजय को तसल्ली हुई।

विजय डिब्बे में खड़ा हुआ था। उसने सीटों पर बैठे दो यात्रियों से प्रार्थना की, ''भाईसाहब, जरा सरककर बैठें तो मैं भी बैठकर यात्रा कर सकूँगा। अन्यथा खड़े-खड़े पैरों का मलीदा बन जाएगा।''

एकबारगी दोनों यात्रियों ने विजय को तेज निगाहों से घूरा। उनके दिमाग में न जाने क्या खिचड़ी पकी कि दोनों थोड़ा-थोड़ा खिसक गए और बैठने के लिए मौन स्वीकृति दे दी। विजय उनके साथ समाहित हो गया। ट्रेन थोड़ी सी चली थी कि हाँफकर खड़ी हो गई। किसी ने जंजीर खींच दी।

ड्राइवर के माथे पर शैव रेखाएँ खिंच गईं। उसने सहायक को सिस्टम ठीक करने को कहा। गार्ड ने वाकी-टाकी पर पूछा तो चालक ने जवाब दे दिया कि किसी यात्री ने जंजीर खींच दी है। सहायक डिब्बों को देखता हुआ गया। उसने देखा तो चौथे डिब्बे में जंजीर खींची गई थी। सो उसे ठीक कर इंजन पर आ गया।

थोड़ी देर बाद गाड़ी पुन: चल दी। अब वह साँड़ की तरह सीधी भागी जा रही थी। किसी ने चैन न खींची। शाम को अजमेर आ जाना था। उससे पहले ट्रेन को सुरंग से गुजरना पड़ता है। अब विद्युतीय सेक्शन नहीं था, पैसेंजर ट्रेन थी। स्टेशनों पर रुकती तो लड़कों की भीड़ घटने की बजाय बढ़ जाती।

प्रतियोगी लड़कों का इतना साहस बढ़ गया कि डिब्बों में जगह न होने के कारण विवश होकर छतों पर चढ़ गए। किसी को भान तक न हुआ कि आगे संकट मुँह खोले खड़ा है। अचानक सुरंग आ गई। छतों पर बैठे लड़के सुरंग की छत से टकरा गए और बड़ी संख्या में नीचे गिरकर मारे गए। चारों तरफ कोहराम मच गया। ड्राइवर को पता चला तो उसने गाड़ी रोक दी।

रेल प्रशासन को गार्ड ने सूचना दी। चारों तरफ से लोग सहायता को दौड़ पड़े। घायल और मृतक यात्रियों को अस्पताल लाया गया। जहाँ उनका उपचार किया गया। मंत्री तक दौड़े आए और राहत कोष से लाखों रुपए देने की घोषणा की। मगर किसी ने सच ही कहा है, 'दुर्घटना से देर भली'। प्रतियोगी थोड़ा सा सचेत होते तो उक्त घटना न घटती और पुलिस की भरती प्रतियोगिता में शामिल हो जाते। उनके सपने अधूरे रह गए। माँ-बाप के सपने पूरे न हो सके।

तीसरा एवेन्यू
१२/१०५७-बी, आदर्श कॉलोनी
डड़वाड़ा, कोटा-३२४००२
दूरभाष : ०८००३८५१४५८

युद्ध और आघात

सन् २०१३ के उत्तरार्ध में जेहादियों द्वारा सीरिया के सशस्त्र विरोध पर नियंत्रण के बारे में चर्चा की गई है। जब इस बात के पर्याप्त प्रमाण थे कि आई.एस.आइ.एस., जिसे पूर्व में इराक में अल कायदा के नाम से जाना जाता था, की शक्ति में लगातार वृद्धि होती जा रही थी। मेरे अखबार 'इंडिपेंडेंट' द्वारा मध्य-पूर्व के लिए 'मैन ऑफ द ईयर' के नामांकन के लिए कहा गया, और मैंने अल-बगदादी का नाम चुना, जो सन् २०१० में आई.एस.आइ.एस. का नेता बन गया था। कुछ ही दिनों बाद ३ जनवरी, २०१४ को आई.एस.आइ.एस. फालुजा में घुस गया और सरकार उसे पुन: अपने नियंत्रण में लेने में असमर्थ रही। यह इतना खतरनाक नहीं था जितना कि यह हो सकता था, क्योंकि इराक के प्रधानमंत्री अनबर प्रांत में विद्रोह का प्रतिरोध करनेवाले सुन्नियों द्वारा घातक हमले होने पर जोर दे रहे थे, ताकि ३० अप्रैल को होनेवाले संसदीय चुनाव में 'मि. सिक्यूरटी' के रूप में शिया बहुसंख्यकों को उनके पक्ष में मत देने के लिए डराया जा सके और सरकार द्वारा किए गए भ्रष्टाचार व सेवाओं में कमी की अनदेखी की जाए। इस शहर को पुन: नियंत्रण में लेने में विफल होना एक सोची-समझी चुनावी रणनीति थी और इस पर आक्रमण चुनाव के बाद होना था।

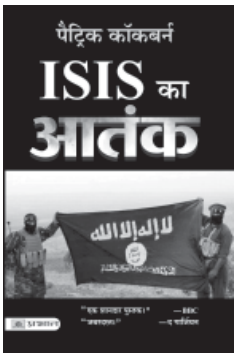

लेकिन तब जानकार इराकियों ने मुझे बताया कि फालुजा पर पुन: नियंत्रण न हो पाने तथा अनबर तथा उत्तरी इराक में अन्यत्र आई.एस.आइ.एस. को दबाने में नाकामी का अर्थ यह नहीं था कि इस दिशा में प्रयास नहीं किया गया था। इराकी सेना के पंद्रह डिवीजनों में से पाँच अनबर में तैनात थीं और उन्हें बहुत नुकसान हुआ था। सैनिकों को ए.के. ४७ राइफलों के सिर्फ चार क्लिपों के साथ मोरचे पर भेजा गया था; उन्हें भूखे रहना पड़ता था, क्योंकि भोजन पर खर्च किए जानेवाले पैसों का उनके कमांडरों द्वारा गबन कर लिया जाता था। तेल समृद्ध इराक में सेना की गाड़ियों में तेल की कमी थी। कुछ बटालियनों में सैनिकों की क्षमता उनकी स्थापित क्षमता का एक-चौथाई मात्र ही रह गई थी। ''सेना अनबर में बहुत ही बुरी तरह से परास्त हुई थी।'' एक इराकी मंत्री ने किसी समय अप्रैल में मुझे बताया था।

जब इन चेतावनियों के बावजूद मुझे एक महीने या उससे थोड़े समय बाद यह सुनकर धक्का लगा कि १० जून को लगभग बिना किसी लड़ाई के मोसुल का पतन हो गया। अभी तक इराकी फौज के वित्तीय धोखाधड़ी की जितनी भी अपमानजनक कहानियाँ सुनी थीं, जिनमें कमांडरों द्वारा रिश्वत और घपले से और ज्यादा समृद्ध होने के लिए पद खरीदे जाने की बातें की जाती थीं, वे सब सही साबित हुईं। सामान्य सैनिक हो सकता है कि मोसुल से भाग गए होंगे, लेकिन उतनी तेजी से नहीं, जितना कि उनके जनरल भागे थे, जिन्हें बाद में सिविल पोशाकों में कुर्दिश की राजधानी इरबिल में देखा गया। पिछले साल ही यह स्पष्ट हो गया था कि आई.एस.आइ.एस. सैन्य कुशलता और आदर्शवादी कट्टरपन के डरावने मिश्रण पर काम कर रही थी। उत्तरी व पश्चिमी इराक पर नियंत्रण अत्यंत दक्षता के साथ नियोजित किया गया था, जिसमें कमजोर निशानों को चुनना और पूरी तरह से सुरक्षित स्थानों को छोड़ना शामिल था, या आई.एस. आई.एस. के शब्दों में, ''चट्टानों पर साँप की तरह रेंगना था।''

यह स्पष्ट हो गया था कि पश्चिमी सरकारों ने इराक और सीरिया की स्थिति को भाँपने में गलती की। दो साल तक इराकी राजनीतिज्ञ हर किसी को यह चेतावनी देते रहे थे कि यदि सीरिया का गृहयुद्ध जारी रहता है तो इससे इराक की स्थिति अस्थिर हो जाएगी। जब मोसुल का पतन हुआ तो सभी ने इसके लिए मलिकी को जिम्मेदार ठहराया, जिस पर निश्चित रूप से इसकी जवाबदेही आती है; लेकिन इराक की पराजय का वास्तविक कारण इराक की सीमा के भीतर चल रहा युद्ध था। सीरियाई सुन्नी विद्रोह के कारण भी ईराक में समान विस्फोटक स्थिति बन गई थी। मलिकी ने सुन्नी बाहुल्य प्रांतों को विजित देश के रूप में लिया, लेकिन ईराकी सुन्नी सीरिया के सुन्नियों की चेतावनी और प्रोत्साहन के बिना उठ नहीं पाते।

आई.एस.आइ.एस. का उत्थान, इसके सामान्य सुन्नी विद्रोह के प्रति प्रतिरोधी सेना के रूप में इसके काम करने का परिणाम था और इसे अभी भी पलटा जा सकता था। लेकिन सन् २०१४ की गरमियों में जिस तरह के आक्रमण का इसने नेतृत्व किया, उसने अमरीका के सन् २००३ के आक्रमण से अस्तित्व में आए नियंत्रित राज्य का संभवत: हमेशा के लिए अंत कर दिया।

मोसुल का पतन बाहरी विश्व को अचंभित करनेवाली मध्य-पूर्व में घटित होनेवाली अप्रिय और अनपेक्षित घटनाओं की शृंखला में एकमात्र नवीनतम घटना है। यह क्षेत्र विदेशी हस्तक्षेप के लिए हमेशा से ही कमजोर भूमि रहा है; लेकिन मध्य-पूर्व की स्थिति को भाँपने में पश्चिमी विफलता के अनेक कारण नवीनतम और आत्म-पीड़न या यंत्रणा हैं। सन् २००१ में ९/११ के आक्रमण के प्रतिक्रियास्वरूप गलत देशों को निशाना बनाया गया, जब इराक और अफगानिस्तान की शत्रु देश के रूप में पहचान की गई थी, जहाँ सरकारों को उखाड़ फेंकने की जरूरत थी। तब तक ये दोनों देश अल कायदा का समर्थन करने और आक्रमण के पीछे के आदर्शों को

सराहने में सबसे ज्यादा संलिप्त थे। सऊदी अरब और पाकिस्तान की मुख्यत: उपेक्षा कर दी गई और उन पर किसी तरह का संदेह नहीं किया गया। इन दोनों के अमरीका के साथ लंबे संबंध रहे हैं और ९/११ की घटना के बाद भी वे अप्रभावित रहे। अब भले ही सऊदी अरब सीरिया और विश्व में कहीं भी जेहादियों को दिए जा रहे समर्थन से अपना हाथ खींच रहा हो, क्योंकि उसके अपने ही राज्य में इसके विरोध में उभर रही प्रतिक्रियाओं से वह डर गया है। हो सकता है कि पाकिस्तान के प्रधानमंत्री नवाज शरीफ इस बात पर जोर दे रहे हों कि वे पाकिस्तान की सुरक्षा सेवा को अतिवादी तत्त्वों से मुक्त कराने के लिए अपनी हर संभव कोशिश कर रहे हों। लेकिन जब तक अमरीका और पश्चिम में उसके सहयोगियों को यह बात समझ में नहीं आती कि इसलामी उग्रवाद को प्रोत्साहित करने में इन देशों की प्रमुख भूमिका है, जेहादियों को अलग करने की लड़ाई में वास्तविक प्रगति तब तक नहीं हो सकती है।

ऐसा नहीं है कि सिर्फ सरकारों ने ही गलती की है। सुधारकों को और क्रांतिकारियों ने भी इसे सही तरह से नहीं समझा, जिन्होंने सन् २०११ के 'अरब स्प्रिंग' के विद्रोहों को इस क्षेत्र से पुराने सत्तावादी शासन के अंत को शंखनाद के रूप में लिया। बहुत ही संक्षिप्त समय के लिए संप्रदायवाद और तानाशाह बिखरता हुआ लगा। अरब जगत् धार्मिक घृणा से मुक्त साहसपूर्ण ढंग से नए भविष्य के मुहाने पर खड़ा था, जहाँ राजनीतिक शत्रु अपने मतभेदों को लेकर लोकतांत्रिक चुनाव लड़ते थे। तीन साल बाद क्षेत्र में सफल क्रांति विरोध और बढ़ते सांप्रदायिक हिंसा के सामने लोकतांत्रिक आंदोलन के पीछे हटते ही यह उत्साह भी कमजोर पड़ता लग रहा था। यह बात विश्लेषण के योग्य है कि पुलिस राज्य और आई.एस.आइ.एस. जैसे जेहादी आंदोलनों का विकल्प मानी जानेवाली प्रगतिशील क्रांति इतने व्यापक रूप से क्यों विफल रही ?

सन् २०११ के लोकप्रिय विद्रोह और क्रांतियाँ इतिहास की किसी भी अन्य क्रांतियों की तरह सही थीं; लेकिन जिस तरह से उन्हें देखा गया, विशेषकर पश्चिम में, वह प्राय: गंभीर रूप से उलटा-पुलटा था। क्रांतिकारी बदलाव की प्रकृति अप्रत्याशित है। यह स्वीकार करने योग्य है कि आनेवाले दिनों में यदि किसी नई क्रांति का मुझे आभास होता है तो उसी तरह मुखबरत सुरक्षा पुलिस के प्रमुख को भी ऐसा आभास होता होगा। इसे होने से रोकने के लिए वह हर संभव प्रयास करेगा। वास्तविक क्रांतियाँ तब होती हैं, जब विभिन्न लक्ष्यों पर केंद्रित घटनाएँ और लोग हुस्नी मुबारक या बशर अल-असद जैसे सामान्य शत्रु को निशाना बनाने के लिए अनपेक्षित और आश्चर्यजनक रूप से एक साथ आ जाते हैं। सन् २०११ के विद्रोह की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जड़ें बहुत ही जटिल हैं। उस समय हर किसी के सामने यह पूर्णत: स्पष्ट नहीं था। यह इस बात का आंशिक परिणाम था कि विदेशी टिप्पणीकारों ने नई सूचना तकनीक को अत्यंत बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया। प्रदर्शनकारी, जो अन्य किसी चीज में भले ही कुशल न हों, लेकिन प्रचार में बहुत कुशल थे, को विद्रोह को इस रूप में प्रस्तुत करने में लाभ नजर आया कि इससे किसी भी प्रकार का कोई खतरा नहीं है। जिन्होंने इसे 'वेलवेट क्रांति' के रूप में पेश किया। इसकी पृष्ठभूमि में प्रमुख रूप से अंग्रेजी बोलनेवाले सुशिक्षित ब्लॉगर और ट्वीट करनेवाले लोग थे। इसका उद्देश्य पश्चिम की जनता को यह संदेश देना था कि नए क्रांतिकारी सहज रूप से उनके ही समान हैं और सन् २०११ में मध्य-पूर्व में जो कुछ हो रहा था, वह वर्ष सन् के पूर्वी यूरोप के पश्चिमी समर्थक और कम्युनिस्ट विरोधी विद्रोह के ही समान था।

किसान चार वर्षों के सूखे के कारण बरबाद हो गए थे। वे शहरों के बाहरी कस्बों में चले गए थे। संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के अनुसार, २० से ३० लाख सीरियाई अत्यधिक गरीबी की दशा में जी रहे थे। छोटी-छोटी उत्पादक कंपनियाँ तुर्की और चीन से कम कीमत पर सामान के आयात के कारण व्यापार से बाहर होती जा रही थीं।

विपक्षियों की माँगें व्यक्तिगत स्वतंत्रता तक ही सीमित थीं। सामाजिक और आर्थिक असमानताओं से संबंधित शायद ही कभी कोई मुद्दा घोषित किया गया हो, ऐसा कभी नहीं हुआ, जब इसके कारण यथास्थिति बने रहने के विरोध में आम लोगों में क्रोध बढ़ रहा था। सीरिया विद्रोह से पूर्व दमिश्क के केंद्र में दुकानों और रेस्तराँ का कब्जा हो गया था; जबकि सीरिया की आम जनता की तनख्वाहें बढ़ती कीमतों के सामने जस की तस थीं।

किसान चार वर्षों के सूखे के कारण बरबाद हो गए थे। वे शहरों के बाहरी कस्बों में चले गए थे। संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के अनुसार, २० से ३० लाख सीरियाई अत्यधिक गरीबी की दशा में जी रहे थे। छोटी-छोटी उत्पादक कंपनियाँ तुर्की और चीन से कम कीमत पर सामान के आयात के कारण व्यापार से बाहर होती जा रही थीं। आर्थिक उदारवाद, जिसकी विदेशी राजधानियों में बड़ी प्रशंसा हो रही थी, वह तेजी से राजनीतिक दृष्टि से सशक्त कुछ लोगों के हाथों में ही सिमटता जा रहा था। यहाँ तक कि मुखबरत और खुफिया पुलिस के सदस्य भी २०० डॉलर प्रतिमाह पर गुजारा करने का प्रयास कर रहे थे। एक अंतरराष्ट्रीय संकट समूह की खबर में इस बात का रेखांकित उल्लेख किया गया कि सीरिया के शासक वर्ग को सत्ता विरासत में मिली है, न कि उन्होंने इसे हासिल किया है।''' और शहरी धनाढ्य वर्ग के तौर-तरीकों की नकल की जा रही है। यही बात मिस्र, लीबिया और इराक में समानांतर तरीके से काम करनेवाले अर्द्ध-राजतंत्रीय परिवारों और उनसे जुड़े लोगों के साथ भी सत्य होती है। पुलिस-राज्य द्वारा मिलने वाली सुरक्षा के प्रति आश्वस्त होकर उन लोगों ने बाकी जनसंख्या, विशेषकर कम वेतन पर नियोजित, अति-शिक्षित और असंख्य युवकों की कठिनाइयों की अनदेखी कर दी, जिनमें से कुछ लोगों को यह लगा कि उन्हें अपना जीवन सुधारने का अब कोई अवसर ही नहीं मिलेगा।

मध्य-पूर्व की नई सुधारवादी सरकारों के मन में, चाहे वह सन् २००५ का इराक हो या सन् २०११ का लीबिया, यह साधारण भ्रम था कि एक

बार जब पुलिस राज्य के स्थान पर लोकतंत्र की स्थापना हो जाती है तो उनकी अधिकांश समस्याओं का समाधान हो जाएगा। देश में प्रताड़ित या निर्वासित होकर किसी तरह अपना अस्तित्व बनाए विपक्षी आंदोलनों को इस तरह की धारणा द्वारा आश्वस्त किया गया था कि विदेशी संरक्षकों को आश्वस्त करना आसान था। जो भी हो, चीजों को इस तरह देखने का नुकसान यह हुआ कि सद्दाम, असद और गद्दाफी का चरित्र-चित्रण इतना बुरा हो गया कि पुराने शासन से नए शासन में शांतिपूर्ण परिवर्तन के लिए किसी भी समझौते पर पहुँचना बहुत ही कठिन हो गया।

इराक में सन् २००३ में बॉथ पार्टी के पूर्व सदस्यों को पार्टी से निकाल दिया गया, जिससे जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग आहत हुआ और उनके पास लड़ने के सिवाय और कोई भी विकल्प नहीं बचा। उस वार्त्ता में असद को महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने की अनुमति दी गई थी। इस पर सीरिया के विपक्षियों ने सन् २०१४ में जेनेवा की शांति वार्त्ता में भाग लेने से मना कर दिया, यद्यपि सीरिया की अधिकांश जनसंख्या उन क्षेत्रों में रहती थी, जिनमें असद का नियंत्रण था। निष्कासन की इस नीति द्वारा अधिकांश रूप से विरोध कर रहे लड़कों को नौकरी की गारंटी देना था। लेकिन इससे जातीयता, सांप्रदायिकता एवं जनजातीय विभाजन और गहरा गया, जिसने गृहयुद्ध के लिए आवश्यक तत्त्व उपलब्ध कराए।

क्रांति के बाद अस्तित्व में आई वे क्या चीजें हैं, जो इन राज्यों को एक साथ बाँधे रख सकती हैं? पश्चिम में राष्ट्रीयता को उसके लिए अनुकूल नहीं माना जाता है, जहाँ भूमंडलीकरण और मानवतावादी हस्तक्षेप के समय इसे जातिवाद और सैन्यवाद के मुखौटे के रूप में देखा जाता है, लेकिन सन् २००३ में इराक में हस्तक्षेप और सन् २०११ में लीबिया में हस्तक्षेप उन्नीसवीं शताब्दी के साम्राज्यवादी कब्जे की तरह ही था। विदेशी शक्तियों की सहायता से राष्ट्र-निर्माण की बेतुकी बात की जा रही थी, जिसके पीछे उनके मन में स्पष्ट रूप से अपना स्वार्थ था, ठीक वैसे ही जैसे कि ओटोमन साम्राज्य के निर्माण के समय में ब्रिटेन ने किया था और जिसका लॉयड जॉर्ज ने दिखावा किया था। उन अरब नेताओं, जिन्होंने ६० के दशक में सत्ता पर नियंत्रण प्राप्त किया था, ने इसे उचित ठहराने के लिए यह कहा था कि वे शक्तिशाली राज्यों को समर्थ बनाएँगे और अंतत: यथार्थ में राष्ट्रीय स्वाधीनता मिलेगी। वे पूरी तरह से विफल भी नहीं रहे। सन् १९७३ में तेल की कीमतें बढ़ाने में गद्दाफी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और बशर के पिता हाफिज अल-असद, जिन्होंने दो वर्ष पहले सीरिया की सत्ता पर कब्जा किया था, ने एक ऐसे राज्य का निर्माण किया, जो लेबनान में प्रभुत्व की लड़ाई में इजराइल के साथ निरंतर संघर्ष में स्वयं ही अपना अस्तित्व बनाए रख सके। इन सरकारों के विरोधियों तथा क्रूर तानाशाहों की प्रमुख कार्य-सूची थी, ये सत्ता पर अपनी पकड़ को उचित ठहराने के लिए चिंतित थे, उनके लिए राष्ट्रीयता प्रचार का हथकंडा मात्र थी। लेकिन बिना राष्ट्रीयता के वहाँ भी जहाँ राष्ट्र की एकता का कोई महत्त्व नहीं था, राज्यों के पास ऐसी कोई विचारधारा नहीं होती है, जिससे वे अपने धार्मिक संप्रदायों और जातीय समूहों के मुकाबले में अपनी निष्ठा को केंद्र में रख सकें।

अपनी यथा स्थिति में सुधार लाने की दृष्टि से नाकाम अरब देशों के बागियों तथा सुधारकों की आलोचना करना आसान है। क्यूबा की क्रांति या विएतनाम के स्वतंत्रता संघर्ष से तुलना करने पर उनकी काररवाइयाँ भ्रमित और निष्प्रभावी लगती हैं। लेकिन वह राजनीतिक भूक्षेत्र, जिस पर उन्हें पिछले बीस वर्षों से काम करना पड़ रहा था, वह विशेष रूप से पेचीदा था। सन् १९९१ में सोवियत संघ के विघटन का अर्थ था कि सत्ता पर सफल नियंत्रण के लिए सिर्फ-और-सिर्फ अमरीका का समर्थन या उसकी सहनशीलता ही निर्णायक थी। १९५६ के स्वेज संकट के दौरान, मिस्र की स्वाधीनता के लिए वासर मॉस्को की ओर मुड़ गया, लेकिन जब सोवियत छोटे-छोटे राज्यों में बिखर गया, तब मॉस्को और वाशिंगटन के बीच मिस्र को तो कहीं स्थान नहीं मिल पा रहा था। सन् १९९० में सद्दाम ने बताया कि कुवैत पर उसके आक्रमण का एक प्रमुख कारण यह था कि भविष्य में इस तरह की काररवाई करना इराक के लिए संभव नहीं होगा, क्योंकि तब इराक को अमरीका का निर्विरोध सामना करना पड़ेगा। इस संदर्भ में उसका राजनयिक आकलन प्रमुख रूप से गलत साबित हुआ; लेकिन उसकी भविष्यवाणी सच निकली, कम-से-कम तब तक, जब तक अफगानिस्तान और इराक में वाशिंगटन द्वारा अपने लक्ष्य की प्राप्ति में विफल हो जाने तक अमरीकी सैन्य शक्ति के प्रति धारणा गलत साबित नहीं हुई।

हो सकता है कि सीरिया और इराक की बिगड़ती हुई स्थिति अब इतनी आगे पहुँच गई हो कि सचमुच में एक राज्य की पुन: स्थापना नहीं की जा सकती है। इराक बिखर रहा है। उत्तर के तेल समृद्ध शहर किरकुक पर कब्जा करने के बाद, जिसे वे लंबे समय से अपनी राजधानी होने का दावा करते रहे हैं, कुर्द इसे या अन्य विवादास्पद क्षेत्र को कभी भी समर्पित नहीं लौटाएँगे, जहाँ से उनका जातीय रूप से सफाया कर दिया गया हो। इसी बीच इराक के मध्यवर्ती और उत्तरी सुन्नी बहुल अरब मुख्य भूमि पर से इराकी सेना के विघटन के साथ ही उनका नियंत्रण कमजोर पड़ गया। हो सकता है कि सरकार राजधानी और सुदूर दक्षिण के शिया बहुल प्रांतों पर अपनी पकड़ बनाए रखे; लेकिन पूरे देश में सुन्नी बहुल गाँवों और कस्बों में अपनी सत्ता को पुन: स्थापित करने में बहुत कठिनाई होगी। इराक के उपराष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार डॉ. सफा रसूल हुसैन ने मुझे बताया कि जब आई.एस.आइ.एस. के १०० लड़ाके किसी क्षेत्र पर कब्जा करते हैं तो सामान्य रूप से वे अपने बलों के पाँच या दस गुना ज्यादा लोगों की भरती करते हैं। वे मोरचे पर लड़नेवाले लड़ाकू नहीं होते हैं और हो सकता है कि वे सिर्फ अपने परिवारों की रक्षा के लिए इसमें भरती हुए हों; लेकिन इससे आई.एस.आइ.एस. की संख्या में तेजी से वृद्धि होती है।

(श्री पैट्रिक कॉकबर्न द्वारा लिखित एवं प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'ISIS का आतंक' से साभार)

गुलाबी मोती

मूल : **एमिलिया पार्डो बजान**

अनुवाद : **भद्रसैन पुरी**

मेरे एक अभागे मित्र ने मुझसे यह कहा—

''यह ऐसा आदमी है, जो अपने आपको सारा दिन बंद करके काफी पैसा कमाने के लिए देर तक काम करता है, ताकि जिस औरत को वह प्यार करता है, उसकी चंचलता की संतुष्टि कर सके—औरत, जो थोड़ा जमा करके एक विशेष राशि से अपने मन की मौज को संतुष्ट करने के आनंद को समझ सकती है। जिसको उसने केवल आशाहीन स्वप्न समझा, अपने मन की उन्मत्त कल्पना में असंभव इच्छा जाना, उसने प्रयत्न करने के लिए मुझे एड़ी मारी, ताकि उसकी इच्छा को सत्य में परिवर्तित कर सकूँ। मेरा विचार था कि मेरा काम और मेरा प्यार उसे वह दे, जिसको लेने के लिए उसके हाथ इच्छुक हैं। कितना आनंददायक था कि मैं उसकी हैरानी, उसकी प्रशंसा और आनेवाली कृतज्ञता के लिए अपने गले में पड़ी उसकी बाँहों के बारे में सोचने लगा।

''जब अपने हाथ में पकड़े और पैसों से भरे अपने बटुए को मैंने देखा तो मेरा मन हर्षित पूर्वज्ञान से भरा हुआ था, तब मुझे केवल यही डर था कि जौहरी को कोई दूसरा ग्राहक न मिल गया हो। मैं लूसीला की प्रसन्नता को देखना चाहता था कि जब मैं उसके हाथ पर दो अति उत्तम गुलाबी मोती रखूँ, जिनकी उसे बड़ी चाहना है और जिनको उसने मेरे बाजू पर झुककर दुकान की खिड़की में घूरा था। ऐसे दो पूर्ण मोती, जो आकार और रंग में एक से हों, ढूँढ़ना कठिन था और मैंने सोचा कि किसी धनी औरत ने पहले ही खरीदकर उन्हें अपनी गहनोंवाली डिबिया में सुरक्षित रख लिया होगा। यदि ऐसा हुआ तो इसका विचार ही मुझे इतना दु:खी कर देगा कि मेरा दिल धड़कने लगेगा। और मैंने राहत की रुकी चेतना को अनुभव किया, जब मैंने दो सुंदर मोती हीरों में जड़े, सफेद मखमल की डिबियों में पड़े देखे, जिसके एक ओर हीरों का हार था और दूसरी ओर सोने के कंगनों का गुच्छा।

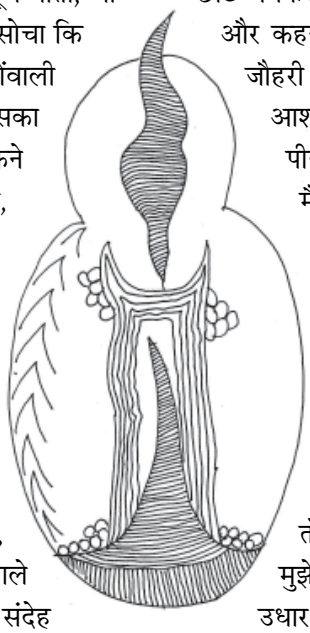

''मुझे पूरी आशा थी कि मेरी भावना के लिए अच्छी कीमत माँगी जाएगी, परंतु जब मैंने पूछा कि वह क्या कीमत लेने को तैयार है तो उसका उत्तर सुनकर मैं विस्मित हो गया। मैंने जो कुछ बचाया था, उससे भी अधिक मुझे उन दो छोटी चीजों में, जो मटर के दानों से बड़ी नहीं थीं, लगाना पड़ेगा। मैं हिचकिचाया, क्योंकि मेरे जैसे साधनोंवाले आदमी का रत्न खरीदना प्रतिदिन का धंधा नहीं था। मुझे संदेह हुआ कि जौहरी कहीं मेरी अज्ञानता से लाभ तो नहीं उठा रहा और इस विश्वास से हास्यास्पद कीमत माँग रहा था कि ऐसी चीजों की कीमत का अंदाजा नहीं लगा सकता था और जब मैं मामले पर विचार कर रहा था, मैंने दुकान की खिड़की से बाहर झाँका और अपने पुराने सहपाठी और उन दिनों के घनिष्ठ मित्र गोनजागा ललोरेंट को देखा। उसके जाने-पहचाने चेहरे को देखना और उसे अंदर बुलाना एक ही विचार था। शोभायमान गोनजागा के अतिरिक्त गुलाबी मोतियों के मामले में अच्छा परामर्श देनेवाला दूसरा कौन हो सकता था; उसे फैशन के मामलों का अच्छा ज्ञान था और वह यह भी जानता था कि संसार में धनी और शिष्टाचारी लोग, जिनमें वह लोकप्रिय है और बहुधा पूछा जाता है, क्या करते थे। मैं उसके आने के लिए कभी उचित रूप से कृतज्ञ नहीं हो सका, क्योंकि वह प्राय: मेरे साधारण घर आया करता था। यह उसके लिए कितना अच्छा था कि हम-जैसों का ध्यान रखता था!

''गोनजागा हैरान और प्रसन्न प्रतीत हुआ जब मैं उसे बुलाने के लिए बाहर दौड़ा। वह मेरे साथ जौहरी की दुकान में आ गया। फिर मैंने बताया कि मैं क्या खरीदना चाहता हूँ। उसने गुलाबी मोतियों को सराहा और कहा कि समाज में उसकी जानी-पहचानी धनी औरतें इनको बुंदों की तरह पहनने के लिए कोई भी कीमत दे सकती हैं; ये इसी आशय से छोटे चमकदार चौखटों में जड़े गए हैं। वह मुझे एक तरफ ले गया और कहने लगा कि मोतियों की अद्‌भुत सुंदरता को देखते हुए जौहरी द्वारा माँगी हुई कीमत अधिक नहीं है। मैं उसके शब्दों से आश्वस्त हो गया और आगे मोल-तोल करने से इस लज्जा से पीछे हट गया कि मेरे पास पर्याप्त रकम नहीं थी। अंत में मैंने गोनजागा के सम्मुख स्वीकार किया कि अपनी पत्नी को उपहार देने के लिए, इन बुंदों को खरीदने के लिए कितना इच्छुक था, परंतु मैं उनका मूल्य नहीं चुका सकता था। गोनजागा ने वही किया जो ऐसी स्थिति में एक मित्र करता है; उसने अपना बटुआ खोला और कुछ बैंक नोट मुझे दे दिए तथा उसी समय हँसा और कसम खाई कि यदि मैं उसकी यह छोटी सी सेवा स्वीकार नहीं करता तो भविष्य में जब भी मुझे मिलेगा तो मेरे टुकड़े करके मार डालेगा। मुझे कितना कष्ट हुआ। मुझे उधार लेने का साहस नहीं हुआ, क्योंकि मैं डरता था कि उधार उतार भी सकूँगा या नहीं और फिर इतने कीमती बुंदे घर

भी नहीं ले जा सकता था जब तक पूरी रकम न चुका देता। अंत में पत्नी को खुश करने की इच्छा जीत गई और मैं इतना प्रसन्न हुआ कि उसके सामने घुटनों के बल झुककर उस हाथ को चूमा, जिसने यह अवसर देने योग्य मुझे बनाया था। मैंने गोनजागा को अगले दिन अपने साथ खाने और पत्नी को उपहार देते हुए देखने के लिए आमंत्रित किया और इस समझौते के साथ हम जुदा हो गए। अपनी जेब में डिबिया डाले मैं घर गया और ऐसा महसूस किया कि मेरे कंधों पर पंख लग गए हों।

''लूसीला साफ-सफाई कर रही थी और बैठक को ठीक-ठाक कर रही थी जब मैं घर लौटा। उसने मेरी ओर देखा और जब मैंने कहा—'मेरी जेबों को टटोलो, देखो, उनमें क्या है,' तो वह उछली और खुश होकर बच्चों की तरह ताली बजाकर चिल्लाई—ओह, मेरे लिए उपहार! मैं देखती हूँ। उसने मेरी जेबें उलट-पलट कर दीं और सारा समय मुझे गुदगुदाती रही, जब तक उसका हाथ डिबिया पर नहीं गया। मोतियों को देखकर जिस प्रसन्नता से परिपूर्ण चीख उसने मारी, मैं उसे भूल नहीं सकूँगा। फिर उसने मेरे चेहरे को नीचे खींचा और चुंबनों से यह कहते हुए ढक दिया कि मैं वह सर्वश्रेष्ठ दयालु पति था, जिसको किसी भाग्यशाली औरत ने पाया था। मैं सोचे बिना नहीं रह सका कि उसने उस क्षण मुझसे वस्तुत: प्यार किया। मैंने उसे सोचने दिया कि गुलाबी मोतियों को खरीदना मेरे लिए संभव नहीं था और वह छोटी सी हैरानी आकस्मिक थी। उसकी प्रसन्नता के अपने आनंद में, उसे बुंदों को पहनने के लिए अगले दिन की प्रतीक्षा नहीं कर सका। मैंने उसे सोने के छोटे बुंदों को कान से उतारने के लिए कहा, क्योंकि इस रहस्य को जो गुलाबी मोतियों से बाँध रखा था, बताना नहीं चाहता था—गुलाबी मोती, जिनको उसने इतना चाहा था और जिन्होंने खुशी से उसके कानों को इतना लाल कर दिया था कि लाली उसके सारे शरीर से फूट पड़ी थी। अब मैं उन प्यारी गलतियों के बारे में सोचकर बुरी तरह दु:खी होता हूँ—उफ! मैं उन्हें याद रखना कभी बंद नहीं कर सकूँगा।

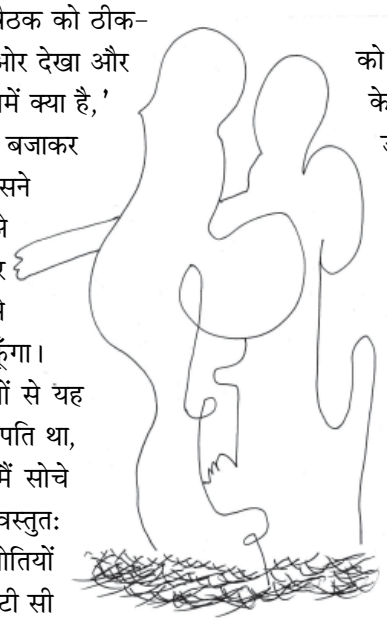

''अगले दिन रविवार था और गोनजागा ने मिलने और खाना खाने का अपना वचन निभाया। हम सभी प्रसन्न थे और यहाँ तक कि अपने आनंद में शोर मचाते थे। लूसीला ने अपनी सबसे अच्छी पोशाक पहनी थी—भूरी सिल्क, जो उसपर फबती थी और उसने अपनी अँगिया में गुलाबी गुलाब लगा रखा था, बिल्कुल उसी रंग का, जिस रंग के उसके कानों में गुलाबी मोती थे। गोनजागा हमारे लिए थिएटर के टिकट लेकर आया था; हमने शाम आनंदपूर्वक गुजारी। अगले दिन मुझे काम पर जाना था और अपने मित्र का उधार, जो उसने मोती खरीदते समय दिया था, चुकाने के लिए, समय से अधिक काम करना था। जब मैं घर लौटा और लूसीला के साथ रात के खाने पर बैठा तो मेरी पहली दृष्टि उसके छोटे बुंदोंवाले कानों पर गई। जब मैंने देखा कि हीरों का एक बुंदा खाली था—गुलाबी मोती वहाँ नहीं था तो मैं उछला और चीख मारी।

''क्या तुमने मोती गँवा दिया है?'' मैंने पुकारा।

''क्या कह रहे हो तुम!'' पत्नी ने उत्तर दिया और कानों को अंगुली से छुआ और रत्नों को महसूस किया। जब उसने देखा कि मोती वास्तव में गुम था तो इतनी भयभीत हुई कि मैं भी चौकन्ना हो गया, मोती के कारण नहीं बल्कि लूसीला की मानसिक वेदना को देखकर!

''इतनी चिंता मत करो,'' मैंने अंतत: कहा, ''वह यहीं कहीं होगा। आओ, उसे देखते हैं, वह जरूर मिल जाएगा।''

''हमने हर जगह तलाश किया; कालीन झाड़ा, दरियों को उलटा-पलटा, परदों की तहों का परीक्षण किया, लकड़ी के सामान को हिलाया-डुलाया, यहाँ तक कि लूसीला के उन बक्सों तक को देखा, जिनको उसने महीनों से हाथ नहीं लगाया था। जब हमारी सारी तलाश व्यर्थ गई तो लूसीला बैठकर रोने लगी; मैंने पूछा—

'' 'क्या तुम आज कहीं बाहर गई थी?'

'' 'हाँ, ओह हाँ, मैं गई थी,' उसने सोचकर उत्तर दिया।

'' 'गई कहाँ थी, प्यारी?'

'' 'मैं कई जगह गई थी···मैं···मैं चीजें खरीदने गई थी।'

'' 'किन-किन दुकानों पर गई थी?'

'' 'मैं अब भूल गई हूँ। ओह, हाँ, मैं डाकखाने गई थी और उसी सड़क पर दूसरी जगहों पर भी—मैं स्क्वेयर में कपड़ेवाले और पेरेड पर···और···'

'' 'तुम पैदल गई थी या किसी गाड़ी या फिर बस में?'

'' 'मैं पहले पैदल गई। फिर मैंने गाड़ी ली।'

'' 'गाड़ी कहाँ की? क्या तुमने उसका नंबर नोट किया था?'

'' 'नहीं, मेरा खयाल है, नहीं किया। ओह, मुझे उसका ध्यान कैसे आता? वह गाड़ी पास से गुजर रही थी और मैं थक गई थी।' लूसीला ने पुन: रोते हुए कहा।

'' 'ठीक है, मेरी प्यारी, जरा बुद्धि से काम लो।' वह वस्तुत: मूर्च्छा की स्थिति में थी। 'तुम्हें याद होना चाहिए कि तुम किस-किस दुकान पर गई थी। मैं उन दुकानों पर जाऊँगा और प्रत्येक से पूछताछ करूँगा, यदि तुम उनकी सूची दे दो तो। मैं विज्ञापन भी छपवा दूँगा।'

'' 'ओह, मैं याद नहीं कर सकती, मुझे शांति से रहने दो।' वह कर्कशता से रोई। और मेरे उपहार के खो जाने के कारण उसके वास्तविक दु:ख पर दया करके मैंने आगे पूछना बंद कर दिया।

''हमने अत्यंत अप्रसन्नता से रात गुजारी। मैं सो नहीं सका और मैंने लूसीला की भी चौकसी की, करवटें लेकर और चोरी-चोरी रोकर तथा नींद का बहाना करके, ताकि मैं व्याकुल न हो जाऊँ। वह चुप रहने में सफल नहीं हुई और इधर मैं सोचे जा रहा था कि मोती का पता कैसे लगाया जाए। मैं जल्दी जाग गया और लूसीला को सोते रहने का इशारा करके, क्योंकि वह अशांत महसूस कर रही थी, मैं अपने अच्छे और

बुद्धिमान मित्र गोनजागा ललोरेंटे से परामर्श लेने के लिए गया। मेरा खयाल था कि गुमशुदा चीज के बारे में संभवत: पुलिस कुछ पता लगा सके कि अब वह कहाँ है और मुझे आशा थी कि गोनजागा अपने प्रभाव और अनुभव के कारण इस अत्यंत गंभीर और महत्त्वपूर्ण पूछताछ में संभवत: मेरी सहायता कर सके।

'' 'मेरे मालिक सो रहे हैं,' नौकर ने कहा, 'परंतु आप अंदर आ जाएँ, श्रीमान्; यदि आप उसके कमरे में थोड़ी देर प्रतीक्षा करें तो मैं आपको बता दूँगा कि वह आपसे कब मिल सकते हैं। दस मिनट में मैं उसके लिए चाय लेकर जाऊँगा और उसे बता दूँगा कि आप आए हुए हैं।' वह मेरी चिंता और अधीरता को देखे बिना नहीं रह सका।

''मुझे प्रतीक्षा करने के लिए निर्णय लेना पड़ा। अत: नौकर ने कमरे की झिलमिलियाँ खोल दीं और मुझे अंदर आने को कहा। वहाँ सिगरेट के धुएँ और सुगंधियों की बू थी। मैंने खयाल किया कि प्रतीक्षा करने की बजाय यदि मैं सीधा अपने मित्र के कमरे में चला जाता तो क्या होता?

''जो हुआ वह यह था कि ज्यों ही रोशनी की पहली किरण ने झिलमिली से प्रवेश किया, जिसको नौकर ने खोला था और पूर्व इसके कि वह मुझे बैठने के लिए कहता, मैंने विलासी टरकिश काऊच के अधोभाग पर नीले कपड़े के ऊपर बिछाई गई सफेद रीछ की खाल के महीन रोवों में कोई चमकदार वस्तु देखी। यह वही खोया हुआ गुलाबी मोती था!

''उस समय उसे देखकर जो मेरे मन पर गुजरी, यदि तुम्हारे मन पर गुजरती और यदि तुम मुझसे पूछते कि ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए तो मैं वास्तव में अत्यंत निष्कपटता से कहता—तुम्हें काऊच के ऊपर प्रदर्शित विजय-चिह्न से तलवार लेकर और विश्वासघाती के कमरे में घुसकर आश्वस्त हो लेना चाहिए कि वह कभी न जागे—सो जाए हमेशा के लिए!

''परंतु क्या तुम जानते हो कि मैंने क्या किया। मैंने झुककर मोती को उठा लिया और अपनी जेब में डाल लिया; उसके घर को चुपके से छोड़कर मैं अपने घर आ गया। मेरी पत्नी जाग चुकी थी और कपड़े पहन रही थी, परंतु बहुत अधीर प्रतीत हो रही थी। मैं खड़ा उसको देखता रहा और मैंने उसका गला नहीं दबाया, बल्कि शांत भाव से उसे बुंदे पहनने के लिए कहा। फिर मैंने अपनी जेब से मोती निकालकर अपनी अंगुलियों में थामा और कहा, 'यह यही है, जिसको तुमने गँवा दिया था और इसको ढूँढ़ने में मुझे देर नहीं लगी।'

''फिर एकाएक मुझे अंधे तीव्र क्रोध ने दबोच लिया और मैं चला गया जैसे बदले की भावना से पागल हो गया था। मैं उसकी ओर झपटा, कानों के बुंदों को झटका दिया और अपने पाँव के नीचे कुचल डाला; मैंने उसकी हत्या नहीं की; मैं नहीं जानता कि क्यों; परंतु मैं सीढ़ियाँ उतरकर पासवाले शराबखाने में गया और एक गिलास ब्रांडी के लिए कहा।

''क्या मैं पुन: कभी लूसीला को मिला? हाँ, एक बार। वह एक आदमी के बाजू पर झुकी हुई थी जो गोनजागा नहीं था और मैंने देखा कि उसके बाएँ कान का लटका हुआ भाग घाव के निशान से कुरूप हो गया था जैसे उसको बीच में से झटका दिया गया हो। इसमें संदेह नहीं कि यह मेरा ही काम था, भले ही अब मुझे याद नहीं कि यह मैंने ही किया था!''

चपाती की संवेदना

लघुकथा

● सत्य शुचि

''...आंटी!'' भिखारी उसके घर के बाहर खड़ा था, ''एक चपाती दे दो, कल से भूखा हूँ!''

''क्या... चपाती!'' क्षणों में ही उसके कदम आगे बढ़े और फुरती से उसके गालों पर एक चपत रसीद कर दी।

एकाएक उसकी चेतना झनझना उठी। भिखारी-वारदात से उसे एक गहरा आघात सा महसूस हुआ और वह अंदर-ही-अंदर पिसती चली गई।

'भूलवश या आवेश में उससे भिखारी के साथ बड़ा अन्याय-अत्याचार हो गया है!' वह मायूसी से बुदबुदाई।

मगर चंद मिनटों में ही उसकी सूझ ने उसे समझाया-सुझाया कि तुरंत उसे भिखारी के पास चलना चाहिए। सो वह रसोईघर से एक चपाती हाथों में झुलाती दरवाजे तक आई, किंतु चहुँओर सन्नाटे में दूर-दूर तक वह भिखारी नदारद था।

''अब भिखारी को वह कहाँ ढूँढ़ती फिरे!'' वह खिन्न सी हो चली।

फिलहाल, वह उसे चपाती के संग किसी भिखारी के इंतजार में रुआँसी सी ड्राइंग-रूम की खिड़की खोलकर आ बैठी, ''कोई-न-कोई माई का लाल इधर से गुजरेगा ही!'' और वह निश्चिंत थी।

साकेत नगर, ब्यावर-३०५९०१ (राज.)
दूरभाष : ०९४१३६८५८२०

व्यंग्य

पर उपदेश कुशल बहुतेरे

● सुनीता शानू

नसीहतबाज कहें या पर-उपदेशक, इन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। आजकल ये सारे-के-सारे उपदेशानंद व्हाट्स ऐप और फेसबुक बाबा के घर बैठे नजर आते हैं। सुबह जैसे ही मोबाइल ओपन किया, तपाक से एक नसीहत दे मारी। रात को भी इनकी बत्ती जलती ही रहती है, ये न सूरज निकलने का इंतजार करते हैं, न ही डूबने का। बस अपनी नसीहतों की टोकरी लादकर बैठे दिखाई देते हैं। कभी-कभी लगता है, शायद चैन से सो भी नहीं पाते होंगे कि कैसे जनमानस की दिनचर्या में घुसपैठ मचाएँ। सोने के बिस्तर से लेकर खाने की टेबल तक इनका प्रभुत्व रहता है। कुछ तो लंबी-लंबी नसीहत भरी पोस्ट ग्रुप बनाकर या टैग करके ऐसे ठेलते हैं कि लगता है, सत्संग के लिए भीड़ जुटा रहे हों। इनकी पोस्ट को सभी अनुयायी फॉरवर्ड करते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं, जैसे उपदेश सुनते-सुनते सुननेवाले भी उपदेशक बन जाते हैं, दवा बेचनेवाले धीरे-धीरे झोला छाप डॉक्टर बन जाते हैं और छोटी-छोटी टिप्पणी करते-करते महान् व्यंग्यकार और कहानीकार बन जाते हैं।

एक समय था जब ये नसीहतबाज हर घर, गली, मुहल्ले, पान की दुकान, मंचों तथा टी.वी. चैनलों पर उपदेश देते दिखाई देते थे, लेकिन आज फेसबुक और व्हाट्स ऐप के जरिए सिर पर सवार रहते हैं।

इन सब बातों से इतर वे लोग भी हैं, जो इंटरनेट की दुनिया से जुड़े नहीं हैं, आजकल इनके चेहरे लुटे-पिटे दिखाई देते हैं। इनके अंदर का विदूषक बहुत बेचैन है, बाहर आने को छटपटा रहा है, परेशानी बस इतनी सी है कि मुफ्त में उपदेश कोई भी सुनना नहीं चाहता, या तो उपदेशक चाय-नाश्ते का इंतजाम करके भीड़ इकट्ठी करे और अपनी भड़ास निकाले या चुपचाप अपने ज्ञान की गंगा में आत्ममुग्ध हुआ पड़ा रहे। ये उपदेशक बहुत इमोशनल होते हैं, यदि कोई सुनना नहीं चाहता तो भैया उसकी मरजी है, लेकिन इनके दिल पर तो ऐसा घाव हो जाता है, जैसे इस दुनिया में इनकी जरूरत नहीं या 'ये दुनिया, ये महफिल इनके काम की ही नहीं।' अब ये दुःख की चादर ओढ़, दुनिया भर में कभी अपनी किस्मत को, तो कभी उपदेश न सुननेवाले को कोसते फिरते हैं कि आजकल की औलादें तो भैया बड़ों की बातें सुनती ही नहीं है…वगैरह-वगैरह।

कभी-कभी उपदेशक को मुँह की खानी पड़ती है, जब लोग सीधा तमाचा जड़ देते हैं कि भैया, नसीहत देने से पहले अपने गिरेबान में भी झाँक लिया करो। यह बात तो सारे उपदेशक जानते हैं कि उपदेश देना सबसे खतरनाक काम है और तब जब कोई लेना ही नहीं चाहता हो, ऐसे

सुपरिचित रचनाकार। काव्य-संग्रह 'मन पखेरु उड़ चला फिर' तथा पत्र-पत्रिकाओं में व्यंग्य, कविता, कहानियाँ आदि प्रकाशित। अनेक कवि सम्मेलनों में काव्य-पाठ। साधना टी.वी. चैनल पर काव्य-पाठ एवं संचालन।

में औरों को नसीहत खुद मियाँ फजीहत वाली बात हो जाती है, लेकिन जिसे भी उपदेश देने का भूत सवार हो जाता है, वह उपदेश दिए बिना रहता नहीं है, 'मान-न-मान मैं तेरा मेहमान' बनकर वह दूसरों की जिंदगी में ऐसे घुसपैठ मचा देता है, जैसे कि इनसे बड़ा शुभचिंतक कोई दूसरा होगा ही नहीं और जब कभी उपदेशक मियाँ को सुननेवाले सच्चे भक्त मिल जाते हैं तो अपने ज्ञान की गंगा में दो-चार लोगों को डुबकी लगवाकर ही चैन से बैठ पाते हैं।

आप इन्हें समझाने की कोशिश भी करेंगे तो कहेंगे, 'हम तो भैया 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना रखते हैं, हमारे पास जो कुछ है, सब दूसरों का है', इतने त्यागवान उपदेशक देते भी हैं तो सिर्फ उपदेश। ये संख्या में असंख्य हैं, इनके रूप कई हैं—नेता, अभिनेता, साधु-संत, अध्यापक, दादी-नानी, ताई-चाची, सच्चा हितैषी आपका पड़ोसी; ले-देकर आपके चारों तरफ आठ-दस उपदेशक तो हर वक्त मँडराते ही रहते हैं, जो आपके तन और मन को पकाने की पूरी कोशिश में लगे रहते हैं।

कुछ ऐसे भी हैं, जिन्हें मालूम होता है कि किसका लड़का किसके साथ भाग गया है, कौन पढ़ाई में फेल हो गया, कौन बैंगन खरीदकर लाया, लेकिन घर में गोभी पकी, कभी-कभी तो इनके दिमाग का कीड़ा इस कदर कुलबुलाता है कि ये अपने बच्चे के फेल हो जाने का ठीकरा पड़ोसी के बच्चे के सिर पर फोड़ देने से भी नहीं चूकते हैं। कुछ यहाँ तक कह देते हैं, 'मैं तो इसके पूरे खानदान को जानता हूँ, सारे-के-सारे पढ़ने में चोर हैं', अब भला उसके बेटे के फेल हो जाने का पड़ोस के खानदान से क्या ताल्लुक! इससे यह भी लगता है कि उपदेशक ज्योतिष विधा में भी पारंगत होता है।

एक उपदेशक महोदय कहते हैं कि देखिए, मैं आपको अपने अनुभव की बात बताता हूँ। आप मानें या न मानें, आपकी मरजी, अरे भई जब मानने-न-मानने की शंका हो तो जरूरत ही क्या है बताने की। एक महाशय तो इतने परोपकारी निकले कि कहने लगे, 'उपदेश देने में मेरा

क्या फायदा है, आप समझें तो आपका ही भला होगा।' एक चिल्लाते हुए बोले, 'देखिए, मैंने ये बाल धूप में सफेद नहीं किए हैं, जैसे कि बाकी लोगों ने धूप में सफेद किए होंगे। जैसे-तैसे हम जनाब के उपदेश सुन भी लेते हैं तो तुर्रा यह कि मेरा तो फर्ज था समझाना, तुम्हारी मरजी सुनो या न सुनो। सचमुच कुछ लोग तो पैदा ही उपदेशक के रूप में हुए थे, जब तक दूसरों को उपदेश न दे दें, तब तक इनके पेट का खाना हजम नहीं होता। आज उपदेशक को उपदेश सुनाने के लिए पापड़ बेलने पड़ते हैं, क्योंकि किसी के पास समय नहीं है उपदेश सुनने का, लोग मुफ्त में कुछ लेना नहीं चाहते, मुफ्त और सस्ती चीजों पर कोई विश्वास नहीं करता। बेचारे उपदेशक को चाय-नाश्ते का लालच देकर लोगों को बुलाना पड़ता है। इसके बाद भी आए हुए लोग उपदेश सुनाएँगे या खुद ही देकर चले जाएँगे, कोई नहीं जानता।

कई बार उपदेशक को उल्टी मार खानी पड़ जाती है, मेरे मोहल्ले की झन्नो चाची ने जब सविता को कहा कि थोड़ा कम खाया कर, चावल खाना बंद कर दे, तो सविता ने तुनककर कहा, 'भैंस को अपना रूप-रंग तो दिखता नहीं, छाते को देखकर बिदकती है।' अब झन्नो चाची को समझ आई, दूसरों के फटे में टाँग अड़ाने का नतीजा क्या होता है, सविता की माँ ने भी मोहल्ले भर में बदनाम कर दिया सो अलग, 'ये मुँह मसूर की दाल, चली है मेरी बेटी को नसीहत देने, खुद तो पतली हो जाए।'

आज उपदेशक ज्यादा हो गए हैं और सुननेवाले बहुत कम, क्योंकि बच्चे हर उपदेश को पहले तर्क के तराजू पर तौलने लगते हैं, सबसे गहरा और कटु सवाल तो यही होता है—जब बच्चों को पढ़ने की, अच्छे नंबर लाने की नसीहत दी जाती है। बच्चे पूछने लगते हैं—अच्छा मम्मी, यह बताओ, पापा के कितने नंबर आया करते थे? अगर कहीं गलती से मम्मी-पापा की मार्कशीट उनके हाथ लग जाती तो उपदेश शुरू हो जाते, इतने कम नंबर! अरे दादाजी कुछ नहीं कहते थे क्या···हम्म! आप कहना नहीं मानते होंगे।

एक बार नानी का घर आना हुआ। बच्चों के पौ बारह। नानी बताओ, मम्मी आपको कितना परेशान करती थी, नानी मम्मी सुबह उठती थीं क्या? पढ़ती थीं क्या? हर सवाल ऐसा होता था, जो उन्हें समझाई गई बातों को तर्क के तराजू पर तौलता-परखता सा प्रतीत होता, ताकि गलत साबित होने पर मम्मी के उपदेशों का खंडन किया जा सके। वैसे भी नानी घर आ जाए तो बच्चों को पूरा सपोर्ट मिल जाता है मम्मी की खिंचाई करने का।

अकसर हम बच्चों को 'बच्चा' कहकर बड़ों की बातें सुनने की मनाही कर देते हैं, लेकिन कोई भी काम देते वक्त डाँट देते हैं कि इतने बड़े हो गए हो, कर नहीं सकते, बच्चे परेशान हो जाते हैं कि वो किस गिनती में हैं, बड़े हैं कि छोटे? ऐसे में हमारी कही बातों पर उन्हें संदेह बना रहता है।

एक बार नानी का घर आना हुआ। बच्चों के पौ बारह। नानी बताओ, मम्मी आपको कितना परेशान करती थी, नानी मम्मी सुबह उठती थीं क्या? पढ़ती थीं क्या? हर सवाल ऐसा होता था, जो उन्हें समझाई गई बातों को तर्क के तराजू पर तौलता-परखता सा प्रतीत होता, ताकि गलत साबित होने पर मम्मी के उपदेशों का खंडन किया जा सके। वैसे भी नानी घर आ जाए तो बच्चों को पूरा सपोर्ट मिल जाता है मम्मी की खिंचाई करने का।

इंटरनेट आने से बच्चा-बच्चा उपदेशक बन गया है, कुछ भी कहने से पहले चार बार सोचना पड़ता है कि इन्हें कहा जाए या नहीं, वरना खुद मियाँ फजीहत करवाओ। आज बच्चे भी यही कहते हैं कि प्लीज मम्मी, अब उपदेश मत देने लग जाना, आपको उपदेश देने की बहुत आदत है, जरा-जरा सी बात का इश्यू बना लेती हो। यानी माँ की सारी नसीहतें बच्चों के लिए एक टेंशन बन जाती है।

जैसे-तैसे बच्चों को दूध पीने की आदत डाली, हरी पत्तेदार सब्जियाँ कच्ची या पकी खाने को कहा, घर का खाना खाओ, खूब पानी पियो, सुबह गार्डन में घूमकर आओ; न जाने कितनी मुश्किल से समझा-समझाकर बचपन में ही बच्चों को स्वास्थ्य संबंधी उपदेश दे डाले, लेकिन आज सब उल्टा हो गया। जब डॉक्टर ने कहा, 'दूध से बीमारियाँ होती हैं, न आप पीएँ न बच्चों को दें। आटा कम खाएँ, वातारण में प्रदूषण बहुत है, कोशिश करें बचने की, गार्डन जाना बंद करें, आजकल पोलेन नामक बीमारी सबको हो गई है, आए दिन अखबारों में सब्जियों से होनेवाली इतनी बीमारियाँ बता दी जाती हैं कि सोचना पड़ रहा है, बच्चों को कौन सी बात कहें, ताकि वजनदार हो और उसके बाद उनके पास कोई तर्क न हो। अन्यथा तो उपदेश देना छोड़कर, आज की जनरेशन का अनुयायी ही बनना पड़ जाएगा कि बेटा, जरा नेट पर देखकर बुजुर्गों का डाइट प्लान बता देना और तब सातवीं क्लास का बच्चा बताएगा, 'माँ ये खाओ, ये नहीं, ऐसा करो ऐसा नहीं', और मुझे चुपचाप सुनना पड़ेगा, वरना उसे दो मिनट नहीं लगेंगे, यह कहते हुए कि आप तो कुछ नहीं जानतीं, आपका जमाना चला गया है, बड़े अब बच्चों को मूर्ख नहीं बना सकते। 'शेर आया, भूत आया' कहकर डरा नहीं सकते, क्योंकि उन्हें पता है, शेर या तो जंगल में मिलेगा या चिड़ियाघर में। भूत-भविष्य-वर्तमान के उपदेशक अपने पास सारा लेखा-जोखा रखते हैं, ये सुनना पसंद नहीं करते, क्योंकि इनकी तार्किक शक्ति गूगल रिसर्च में बस एक क्लिक की दूरी तक है। आपके हर सवाल का जवाब है इनके पास। वैसे भी टी.वी. और इंटेरनेट ने तमाम उपदेशकों को नाकों चने चबवा दिए हैं, किसी भी चैनल को खोलकर देखिए, ढेरों उपदेशक मिल जाएँगे, लेकिन सुनना कौन चाहता है? उपदेशक दूसरे का उपदेश कभी सहन नहीं कर पाते, तभी तो किसी भी साधू-संत को उपदेश देते देखकर दादी कहतीं, 'ये पाखंडी साधू हैं, बादाम का शरबत पीते हैं और नीति उपदेश देते हैं।' अब भला नीति उपदेश के साथ बादाम के शरबत का क्या कुसूर? खैर, घर-घर में कहानी घर-घर की चलती नजर आएगी, कोई भी उपदेश

सुनता नजर नहीं आता। वैसे सच कहूँ तो हम भी कहाँ सुनना चाहते थे? वो तो अम्माँजी लड्डू का लालच देकर अपनी भड़ास निकाल लिया करती थीं और हम बस लड्डू के लालच में गोल-मोल हो जाते थे।

कुछ समझदार टाइप के उपदेशकों ने इनसान की नब्ज को पकड़ लिया है और काउंसलिंग की दुकान खोलकर बैठ गए हैं। अब तो उपदेशक के दोनों हाथों में लड्डू हैं या यों कहिए कि चारों उँगलियाँ घी में, मुँह शक्कर में, क्योंकि अब उपदेशक प्रति घंटा-मिनट के हिसाब से मोटी-मोटी फीस लेकर आपको नसीहत का पाठ पढ़ाते हैं और आपको इनकी नसीहतें ध्यान से सुननी पड़ती हैं, अमल में लानी भी पड़ती हैं।

माँ भी यही कहती हैं कि पैसा खर्च करके उपदेश सुन आते हो। हम मुफ्त में बताएँ तो भी दिक्कत।

कल एक डॉक्टर से मैंने काउंसलिंग ली, ज्यादा नहीं, बस तीन हजार रुपए लगे। डॉक्टर ने कहा कि तनाव से दूर रहो, खाओ-पियो, खुश रहो। घर आकर पति महोदय को बताया तो भड़क गए कि जो बात मैं तुम्हें मुफ्त में कहता-रहता हूँ, उसने तीन हजार लेकर कहीं तो समझ में आ गईं।

तर्क के लिए कोई मुद्दा नहीं बचा था। इतना ही कहा गया—जब तक चीज अटेस्टेड नहीं होती, खरी नहीं मानी जाती, मुफ्त में सलाह भी मत दिया कीजिए। शायद अब उपदेशकों को अपनी नसीहत की कीमत समझ आ जाए और वे मुफ्त बाँटना बंद कर दें।

२०६/३, भूतल, गली नं. ५, पद्म नगर
किसनगंज, दिल्ली-११०००७
दूरभाष : ०८८६०५९५९३७

कविता

फिर एक महाभारत रच दो

● लक्ष्मी रूपल

हे युग द्रष्टा! हे युग स्रष्टा
हे युग संस्थापक! युगाधार!
तेरी महिमामय प्रभुता को
युग-युग तक युग का नमस्कार।

तुम कर्म बने तुम धर्म बने
युग के संरक्षक मर्म बने,
करके संस्कृति का पोषण तुम
युगवीर बने, युगधीर बने।

कितने दुर्योधन दुःशासन
घूमने निरंतर सड़कों पर,
कितनी द्रौपदियाँ नग्न हुईं
कितनी मर मिटीं जलीं अब तक।

तांडव फैला बंदूकों का
अपहरण रोज होता रहता,
रक्षक ही आज बने भक्षक
यह कैसा आर्यावर्त बना?

साक्षी है कुरुक्षेत्र अब भी
कंसों का शासन चलता है,
पापों की नित बहती नदियाँ
दुष्टों की झोली भरती है।

देवों की देव मंदिरों की
धज्जियाँ उड़ाई जाती हैं,
पुतले जलते आदर्शों के
ठहरा सा लगता है जीवन।

रथ तो अब भी चलते रहते
पथ राजनीति के होते हैं,
गुमराह हुई जनता सारी
हम सब विवेक खो बैठे हैं।

अपराधों की भरमार यहाँ
व्यवहार हुआ व्यापार सभी,
जिसका सिक्का चल जाता है
बस कृष्ण वही बन जाता है।

रोती है मानवता पल-पल
सभ्यता भटकती है दर-दर,
आँसू भी सूख गए बहकर
पुरुषत्व चढ़ा बलिवेदी पर।

हे वासुदेव! हे जगवंदन
है कहाँ सुदर्शन चक्र आज?
दुष्टों का, घोर शत्रुओं का
है कहाँ छिपा विध्वंस आज?

क्या कोई अर्जुन नहीं रहा
गांडीव उठाए कंधे पर,

सारथी कृष्ण सा नहीं बचा
रथ का संचालन करने को?

हे कर्णधार! हे ब्रह्मरूप
हे परमपिता! हे परमेश्वर,
ले रहे परीक्षा क्यों अब तक
धीरज की कठिन प्रहारों में।

लुट रहा राष्ट्र घुटती साँसें
अन्यायों अत्याचारों से,
धरती पर हा-हाकार मचा
भूखे, नंगे, बेचारों से।

हे कृष्ण! चले आओ अब तो
फिर एक महाभारत रच दो,
भूली-भटकी मानवता को
फिर कर्म भूमि दिखला जाओ।

हे सत्स्वरूप! हे वंदनीय
पथ बतला दो चलने भर को,
निस्स्वार्थ रहें सेवा पथ पर
जीवन को सार्थक बना सकें।

बी-३/२०१, निर्मल छाया टॉवर्स
वी.आई.पी.रोड, जीरकपुर-१४०६०३ (पंजाब)
दूरभाष : ०९८७६२६९३६४

क्षितिज के उस पार

● क्षमा चतुर्वेदी

फ्लैट तो पसंद आ गया था सुनीता को, पर किराया अभी भी अधिक लग रहा था, क्या करे? पसोपेश में थी वह।

इस फ्लैट को हाथ से जाने भी नहीं देना चाह रही थी, इतनी मुश्किल से तो ऑफिस के पास एक अच्छी लोकेलिटी में घर मिल रहा है। वह रोज बस के लंबे सफर से थक चुकी है, महानगर की यह जिंदगी वैसे भी रास नहीं आ रही है, पर अब नौकरी करनी है तो रहना ही है, क्या करे।

उधर मैनेजर महेशजी ने भी शायद उसकी उधेड़बुन को भाँपा था।

''ऐसा है मैडम, सुबह एक और मैडम इसी फ्लैट को देखकर गई हैं और कल आने को कह गई हैं, उन्हें भी शायद किराया अधिक लग रहा है, आप चाहें तो उनसे कमरे शेयर कर सकती हैं, क्योंकि वे भी अकेली हैं और उनका ऑफिस भी इसी एरिया में है, इसलिए लेने की इच्छुक हैं, आप चाहें तो उनसे बात कर लें, अंकिता नाम है उनका और मोबाइल नंबर यह··· ।''

सुनीता ने मोबाइल नंबर लेकर उस समय अंकिता से बात की थी और तय हुआ कि कल सुबह यहीं दोनों मिलेंगी, तब बात होगी।

दूसरे दिन सुनीता समय पर पहुँच गई थी। अंकिता भी तब तक आ चुकी थी और मैनेजर से बात कर रही थी। ''हाँ मैडम, यह हैं अंकिताजी, अब आप दोनों यहीं बैठकर बात करें, चाहें तो एक बार और फ्लैट का मुआयना कर लें, यह रही चाभी, मैं तब तक कुछ और जरूरी काम देख लूँ।''

अंकिता कुछ चुप रहनेवाली गंभीर सी लड़की लगी थी सुनीता को। फिर दोनों ने एक साथ फिर से फ्लैट को देखा। जैसा कि मैनेजर ने पहले ही बता दिया था, दोनों कमरे अलग-अलग थे, बीच हॉल में ही डाइनिंग स्पेस और ड्राईंगरूम की जगह थी, साथ में एक छोटी सी किचन थी।

''हम दोनों ही किचन का इस्तेमाल कर सकती हैं।'' कहते हुए सुनीता ने चुप्पी तोड़नी चाही थी।

''नहीं, मुझे तो किचन की जरूरत है नहीं, खाना मैं बाहर से ही मँगवाती हूँ और वैसे भी घर में रहना ही कितनी देर होता है, बस सोना ही तो है या फिर छुट्टी के दिन रहना होता है।''

''ठीक है, फिर हम शेयर कर लें।''

''हाँ, ऑफकोर्स।'' अंकिता ने हामी भर दी थी।

'यह लड़की बहुत कम बोलती है, पर मुझे क्या। और फिर साथ रहेंगे तो दोस्ती हो ही जाएगी।' सुनीता ने सोचा था। फिर भी कुछ दिनों बाद ही उसे महसूस हुआ कि अंकिता का स्वभाव बहुत अलग है, छुट्टी के दिन भी अपने कमरे में अकेली म्यूजिक सुनती है या फिर किताब पढ़ेगी या कंप्यूटर में उलझी रहेगी। सुनीता तो अपना छोटा टी.वी. ले आई थी, पर अंकिता ने साफ कह दिया कि उसे टी.वी. देखने का शौक है ही नहीं।

वैसे भी सप्ताह के पाँच दिन तो दोनों के अपने-अपने ऑफिस में ही गुजरते थे।

सुनीता ने तो किचन में भी कुछ सामान रख लिया था और कुछ-न-कुछ बनाती रहती, पर अंकिता तो शायद चाय भी अपने कमरे में ही बनाती होगी, क्योंकि कभी किचन में जाती ही नहीं थी। दोनों का आपसी वार्त्तालाप भी इस वजह से सीमित ही था।

एक बार जब सुनीता के घर से मिठाई व नमकीन के पैकेट आए तब जरूर वह अंकिता के कमरे में गई थी।

''लो, टेस्ट करो, माँ के हाथ के बने हैं।''

पर आशा के विपरीत अंकिता का रूखा सा जवाब था—

''पर, मैं मिठाई खाती ही नहीं हूँ।''

''क्यों?'' चौंक गई थी सुनीता।

''ऐसे ही, और मिठाई क्या, कुछ भी किसी के भी पेरेंट्स की भेजी हुई चीज मैं नहीं लेती हूँ।''

सुनीता को अपमान सा लगा था, पर वह कुछ बोली नहीं।

''देखो, कुछ बातें मेरी बहुत ही निजी हैं, और उन्हें मैं किसी के साथ शेयर भी नहीं करती हूँ तो प्लीज तुम बुरा मत मानना और ये प्लेट भी ले जाओ।''

सुनीता ने तभी सोच लिया था कि इस घमंडी लड़की से तो आगे वह कभी बात भी नहीं करेगी, पता नहीं क्या समझती है वह अपने आपको, आज मेरा नहीं, मेरी माँ का अपमान किया है इसने, मैंने ही गलती की जो इसके साथ फ्लैट शेयर कर लिया।

इसके बाद कुछ दिनों तक तो दोनों की आपस में बात भी नहीं हुई थी। पर जब सुनीता को बुखार आ गया और वह कमरा बंद करके बिस्तर पर पड़ी रही तो खिड़की से ही अंकिता ने देख लिया था।

''क्या हुआ? तबीयत खराब है क्या? दो दिन से दिखी भी नहीं, मैं अंदर आ जाऊँ?''

''हाँ, आ जाओ।'' किसी तरह उठकर दरवाजा खोला था सुनीता ने।

''तुम्हें तो तेज बुखार है, चेहरा तप रहा है, लेट जाओ।'' अंकिता ने धीरे से उसका माथा छुआ था।

''कुछ दवाई ली या नहीं, वैसे मेरे पास टेबलेट है, अभी देती हूँ, बाद में डॉक्टर को दिखा देना।''

सुनीता आज पहली बार उसका यह बदला रूप देख रही थी।

फिर अंकिता ने गोली के साथ ही चाय भी बनाकर दी, बिस्कुट भी लाई।

''मुझे कुछ खास बनाना तो आता नहीं है, पर तुम कहो तो खिचड़ी बना दूँ तुम्हारे किचन में।''

सुनीता को अब हँसी आ गई थी।

''नहीं, उसकी जरूरत नहीं है, मैंने नीचे मैसवाले को बोल दिया है, कुछ ले आएगा।''

पर अंकिता जिद करके उसे डॉक्टर के पास ले गई और दवाई दिलवाई।

सुनीता को उसका यह व्यवहार चकित कर रहा था। पर दोनों में एक मित्रता का आपसी भाव आ गया था। सुनीता अपने घर-परिवार की बातें करती रही। माँ-पिताजी को याद किया, फिर अचानक ही पूछ बैठी, ''अंकिता, तुम्हारे पेरेंट्स कहाँ हैं? कभी जिक्र नहीं किया तुमने।''

''पेरेंट्स···'' एकदम अंकिता का स्वर रूखा हो गया।

''आई हेट माइ पेरेंट्स···तुम कभी उनके बारे में पूछना भी मत। वैसे तुम्हें बता दूँ कि अब वे इस दुनिया में नहीं हैं, एक दुर्घटना में मम्मी-पापा का निधन हो गया था।''

''ओह! पर तुम्हें इतनी नाराजगी क्यों है?''

''कहा न, आई हैट माइ पेरेंट्स। तुम बार-बार वही बात क्यों कुरेदती हो?''

सुनीता की अब समझ में आया था कि अंकिता का स्वभाव अचानक ही कभी-कभी क्यों रूखा हो जाता है, शायद अपने पेरेंट्स की वजह से।

पर क्या वजह हो सकती है, अपने माता-पिता के लिए तो कोई भी बेटी कभी यह नहीं कह सकती कि वह उनसे घृणा करती है।

सुनीता ने फिर कुछ नहीं पूछा था। अंकिता भी कुछ देर बाद उठकर अपने कमरे में चली गई थी।

फिर एक छुट्टी के दिन जब बाहर बारिश हो रही थी तो सुनीता ने अंकिता को आवाज दी—

''चलो, किचन में चलते हैं, मैं गरम पकौड़े बना रही हूँ चाय के साथ, मेरे हाथ के पकौड़े तो खा सकती हो न।''

''हाँ···हाँ चलो।'' अंकिता उसकी बात पूरी होने के पहले ही उठ खड़ी हुई थी।

''मैं तुम्हारी हेल्प करूँ, आलू-प्याज तो काट सकती हूँ। मुझे पता है कि उस दिन जब मैंने तुम्हारे हाथ से मिठाई की प्लेट नहीं ली थी तो तुम्हें बहुत बुरा लगा था, आई एम वैरी सॉरी फोर इट, पर क्या करूँ।''

''एक बात पूछूँ, तुम्हें अपने पैरेंट्स से इतनी नाराजगी क्यों है और अब जबकि वे इस दुनिया में भी नहीं हैं?''

''नाराजगी···'' अंकिता का स्वर फिर से कड़वा होने लगा था।

''उन्होंने जो कुछ मेरे साथ किया, उससे मेरी पूरी लाइफ तबाह हो गई है और तुम पूछती हो, नाराज क्यों हो।'' फिर अंकिता ने जो कुछ कहा, उसका आशय यही निकलता था कि माँ-पापा के एक मित्र थे, जो कहीं पढ़ाते भी थे, तब अंकिता नौ वर्ष की थी, तब उसे उनके पास पढ़ने भेज दिया जाता था, क्योंकि माँ-पिता तो कामकाजी थे, उनके पास समय नहीं था। फिर उन्हीं अंकल ने उसके साथ दुष्कर्म किया, अंकिता तो बच्ची थी, समझ नहीं पाई, पर उसने शिकायत जरूर की कि यह अंकल अच्छे नहीं है, मैं इनके पास नहीं जाऊँगी, पर तब भी माँ ने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया और उसे भेजती रही।

कुछ दिनों के बाद एक कार एक्सीडेंट में माँ-पिताजी का निधन हो गया। अंकिता मामा के पास आ गई और उन्होंने उसे एक हॉस्टल में डाल दिया, तब से वह बाहर रहकर ही पढ़ती रही। कहानी बस इतनी सी थी, पर अंकिता के मन पर जो गहरा घाव था, उसे वह अब तक भूल नहीं पाई है।

''तुम ही कहो, क्या कोई माँ ऐसा कर सकती है, जब मैंने कह दिया कि अंकल अच्छे नहीं हैं तो उन्हें मेरी बात को समझना था न, क्यों? फिर भी मुझे वहाँ भेजती रहीं। आज देखती हूँ कि माँ कितना बेटी का ध्यान रखती है। अकेले ड्राइवर के साथ भी बेटी को गाड़ी में नहीं भेजती है, पर मेरी माँ···''

अंकिता सुबक उठी थी। सुनीता ने घबराकर उसे किसी प्रकार चुप कराया।

''जो भी हो अंकिता, अब तुम इस सदमे से बाहर आओ। बुरा स्वप्न मानकर भूल जाओ उन अंकल को।''

''अरे उन अंकल की तो मुझे शक्ल तक याद नहीं, अनजान दुष्कर्मी से क्या लेना-देना मुझे। पर मेरे माँ-बाप, उन्हें कैसे माफ कर दूँ, जिनकी वजह से आज मेरी पूरी लाइफ बरबाद हो गई, तुम्हें पता है, बस नौकरी करनी है तो कर रही हूँ, पर मेरा कोई परिचित नहीं, काई दोस्त नहीं। यहाँ तक कि रिश्तेदारों से भी कोई नाता नहीं रखा मैंने। अपने पुरुष सहकर्मी से भी नफरत है मुझे। क्या करूँ मैं?''

वह फिर फफक पड़ी थी।

''ठीक है, चलो अब हम किसी और टॉपिक पर बात करते हैं और कोई न हो, पर मैं हूँ न तुम्हारी सहेली, तो चलो चाय पियो।''

किसी तरह ऊपरी तौर पर बात तो समाप्त कर दी थी सुनीता ने,

पर अब वह समझ चुकी थी कि अंकिता के इस असंगत व्यवहार का कारण क्या है, पर अब वह कभी उसके माता-पिता का जिक्र भी नहीं करती थी।

अंकिता भी अब काफी घनिष्ठ हो गई थी। छुट्टी के दिन दोनों बाहर घूम जातीं या साथ रहकर किचन में कुछ नए व्यंजन बनातीं।

इधर सुनीता का रिश्ता कहीं पक्का हो गया था। सुनीता ने जब मिठाई के साथ अंकिता को यह बताया तो वह चौंक गई थी।

''कौन है यह कुणाल···तुम जानती हो उसे, मिली हो उससे?''

''हाँ भई, मेरे बचपन का दोस्त है, बात तो काफी दिनों से चल रही थी, पर वह ट्रेनिंग के लिए बाहर गया हुआ था तो उसी का इंतजार था।''

''तो इसका मतलब तुम अब जल्दी ही यहाँ से चली जाओगी, मुझे अकेला छोड़कर।''

''हाँ, जाना तो होगा, माँ तो कह रही है कि नौकरी छोड़कर जल्दी ही आ जाओ, ताकि कुछ समय घर पर भी रह सको।''

सुनीता कहे जा रही थी, तभी उसकी दृष्टि अंकिता के म्लान होते चेहरे पर पड़ी थी और वह चुप हो गई।

''तुम्हें अच्छा नहीं लगा।'' उसने थोड़ी देर बाद पूछा।

''अच्छा···हाँ-हाँ क्यों नहीं, तुम नई जिंदगी शुरू करने जा रही हो तो खुशी की बात है, बस मैं तो यही सोच रही हूँ कि मेरी जिंदगी में कोई खुशी क्यों नहीं आती, अब देखो न, अभी-अभी तुमसे दोस्ती हुई तो शहर भी अच्छा लगने लगा। अब तुम भी छोड़कर जा रही हो, फिर वही सूनापन, वही वीरानगी।''

सुनीता चुपचाप अंकिता के चेहरे के भाव पढ़ने का प्रयास कर रही थी। ''देखो अंकिता, बुरा मत मानो तो एक बात कहूँ, तुम भी अब इस दिशा में प्रयास करो। तुम्हारे तो ऑफिस में ही कई अच्छे पुरुष सहकर्मी हैं, अविवाहित भी हैं और एक बार तुमने जिक्र भी किया था किसी का, जिसने तुमसे मित्रता करनी चाही थी।''

अंकिता का चेहरा अब भी सपाट ही था।

''हाँ, करनी चाही थी, पर मैं बता तो चुकी हूँ न तुम्हें कि मुझे अब समस्त पुरुष वर्ग से ही नफरत हो गई है, जहाँ भी कोई अधिक पास आने का प्रयास करता है, मैं विरक्त सी हो जाती हूँ और पता है, मेरी इस बैरंग सी जिंदगी का जिम्मेदार कौन है?''

''हाँ, पता है, तुम्हारे पैरेंट्स, यही कहना चाहती हो न तुम।'' कहकर सुनीता ने उसे टोका था—

''और यह भी कह चुकी हो कि तुम उन्हें आजन्म माफ नहीं कर सकती, है न। पर अंकिता, तुम अपने आपको तो माफ कर सकती हो न।''

''क्यों तुमने अपने आपको कितना दर्द दिया है, पीड़ा पहुँचाई है, सारी खुशियों से अपने आपको दूर कर लिया है तो अब उसके लिए माफी माँग लो और पुरानी बातों को भूलकर नई जिंदगी के बारे में सोचो। तुम्हारा भी तो हक है न तुम्हारी खुशियों पर।''

और अंकिता अवाक् थी। आज पहली बार किसी ने उससे इस तरह बात की थी। क्या यह संभव था? वह तो कभी यह सब सोच ही नहीं सकती थी। पर क्षितिज के उस पार एक हल्की सी रोशनी वह भी देख पा रही थी।

१ ल १, दादाबाड़ी अतिरिक्त
कोटा (राजस्थान)

वन-महोत्सव दिवस

हाइकू

● इंद्रा रानी

पेड़ लगाओ
हटाओ प्रदूषण
प्रकृति कहे

रेशमी घास
जैसे हरा कालीन
सुकून भरा

मादक गंध
आनंदित बसंत
सरसों खेत

जंगल राजा
फिरता मारा-मारा
उजड़े वन

धरती कहे
मत काटो जंगल
रूठे बादल

थका पथिक
बैठे नीम की छाँव
कुढ़े सूरज

नई पत्तियाँ
गुलाबी हास लिए
झूमें डालियाँ

कड़वा नीम
निबौरी मीठी हुई
सावन लगा

धरती कभी
बीजों का नहीं खाती
सौ गुना देती

हरित वन
स्वच्छ वातावरण
स्वस्थ जीवन

५२४ पॉकेट-५
मयूर विहार फेस-१
दिल्ली-११००९१

बिताएँ वीरभूमि पर चंद दिन

● रुक्मणी संगल

दिसंबर का महीना, जहाँ उत्तर भारतीयों के लिए शीतकाल है, वहीं मध्य भारत, विशेष रूप से राजस्थान के लिए वसंत। जब यहाँ गुलाबी ठंड की अनुभूति होती है, ऐसे में पर्यटन के शौकीनों को वहाँ जाने का अवसर मिल जाए तो बात ही क्या! यह भी संयोग कहिए कि एक गाड़ी (कालका-जोधपुर) पटियाला होकर जाती है। यों भी लौहपथगामिनी की यात्रा हम जैसे अधेड़ उम्र के लोगों के लिए सुकून भरी होती है, बस आरक्षण करा लिया। २० दिसंबर, २००९ का वह दिन भी आ पहुँचा, जब हम बालू के चमकते पहाड़ों पर पहुँचेंगे। यद्यपि पटियाला में गाड़ी के पहुँचने का समय मध्य रात्रि १२:४५ है, फिर भी हमें न रात्रि की चिंता थी और न शीत की। स्टेशन तक पहुँचाने का शुभ कार्य अपने पुत्र आयुष्मान प्रभात ने संपन्न किया।

सवा बारह बजे हम स्टेशन पहुँच गए। १५ मिनट के विलंब से गाड़ी ठीक एक बजे स्टेशन पर आकर रुकी और हम अपने निर्धारित डिब्बे एस-२ की निर्धारित बर्थों पर पहुँच गए। पहले से लेटे हुए यात्रियों को उठाना चूँकि अच्छा नहीं लगता, इसलिए उनसे क्षमा-याचना करते हुए हमने उनसे अपने लिए स्थान माँगा। थोड़ी ना-नुकुर के बाद उन्होंने हमें स्थान दे दिया। गाड़ी भी सरकने लगी। कुछ देर बाद जाने कैसे जब उन्हें विदित हुआ कि वे हमारी बर्थ पर हैं तो आत्मग्लानि की अनुभूति करते हुए चुपचाप कहीं खिसक गए। हमारे आसपास जो सहयात्री थे, सौभाग्य से केंद्रीय विद्यालयों के अध्यापक थे, जो चंडीगढ़ से प्राचार्य व उपप्राचार्य की लिखित परीक्षा देकर जा रहे थे। इससे यह तो स्पष्ट हो ही रहा था कि वे सब पी.जी.टी. थे, उनकी वार्त्ता यह भी बता रही थी कि वे सभी राजस्थान के जैसलमेर व बाड़मेर जैसे नगरों में स्थापित केंद्रीय विद्यालयों में कार्यरत हैं। हमारी रुचि व जिज्ञासा दोनों ही उनकी वार्त्ता की ओर आकृष्ट हो जाने से निद्रा कहीं पलायन कर गई।

गाड़ी अपनी गति से बढ़ रही थी। भटिंडा, हनुमानगढ़, लालगढ़ व बीकानेर होते हुए नागौर पहुँची, जहाँ बाड़मेर व हरिद्वार को मार्ग देने के लिए लगभग पचास मिनट ठहरी रही। मध्याह्न हो चला था। यहाँ से मेड़ता पहुँचे तो लगा, फिर से पंजाब के आसपास आ गए हैं, क्योंकि कुछ खेत, हरियाली व पशुधन भी दृष्टिगोचर होने लगा था। सायं काल होते-होते अपना गंतव्य स्टेशन 'जोधपुर' आ गया। हमें गाड़ी में सहयात्रियों से विदाई लेनी थी, ली और उतर गए।

आज का हमारा पड़ाव 'जोधपुर' था, यों भी सायंकाल हो चुका

सुपरिचित रचनाकार। धार्मिक, सामाजिक एवं साक्षरता गतिविधियों में सहभागिता। भारत के कोने-कोने में भ्रमण। पत्र-पत्रिकाओं में अनेक लेख, यात्रा-वृत्त, कहानियाँ आदि प्रकाशित।

था। स्टेशन के समीप 'अग्रवाल होटल' में कमरा मिल गया। सामान वहाँ रखकर थोड़ा तरोताजा हुए।

'जोधपुर', लगा कि कहीं यह जोधाबाई के नाम पर विकसित तो नहीं हुआ? पर नहीं, यह शहर तो राजा जोधासिंह के जोरावर की गाथा है। रात्रि दस्तक दे रही थी, पूर्व रात्रि भी जागरण सा रहा, इसलिए कुछ पेटपूजा, कुछ अगले दिन की आवश्यक जानकारी जुटा, विश्राम करना ही उचित लगा।

२२ दिसंबर की प्रात: उठकर नित्य कर्मों से निवृत्ति के बाद कमरे से निकल पड़े। अल्प जल्याहार कर एक ऑटो रिक्शा लेकर अपनी पहली मंजिल 'उमेद भवन' की ओर चल पड़े, जो 'राई का बाग' क्षेत्र में स्थित है। 'उम्मेद भवन' विश्व का विशालतम भवन। महाराजा उम्मेद सिंह द्वारा निर्मित होने से 'उम्मेद भवन' कहलाता है। छीतर झील के पास होने से इसे 'छीतर भवन' भी कहते हैं। इसके निर्माण में बीस वर्ष का समय लगा। यह भवन अपनी भव्य एवं उत्कृष्ट सज्जा से सज्जित है। इसमें ऐश्वर्य, विलास व आमोद-प्रमोद के सभी साधन उपलब्ध हैं। महल में प्रवेश द्वार के बाहर ही ४०,००० वर्ग फीट में फैला घास का मैदान, उसमें भी गुलाब की विभिन्न प्रजातियों के पुष्पों की फैली गंध सारे वातावरण को सुगंधित बना देती है।

महल के प्रवेश द्वार पर नियुक्त द्वारपाल ने बताया कि महल के तीन सौ तैंतालीस कमरों को 'होटल' के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है। एक भाग में शाही परिवार रहता है। होटल में प्रवेश व वहाँ बैठकर चाय या कॉफी का एक कप, एक व्यक्ति (पर्यटक) के लिए कम-से-कम एक हजार रुपया खर्च, कोई आश्चर्य वाली बात नहीं। भूतल पर एक म्यूजियम बनाया गया है, जिसमें वहाँ के राजाओं की, उनके क्रियाकलापों की, युद्ध-कौशल की अनेकानेक जानकारी चित्रों के माध्यम से प्रस्तुत की गई है। 'भवन' का मॉडल भी प्रदर्शित किया गया है। चित्र व मॉडल, सभी कुछ यहाँ के कलाकारों की कलाभिज्ञता को भी बताता

है। सबकुछ इतना सुंदर, सजीव, भव्य व मनमोहक था कि दृष्टि किसी भी चित्र पर चिपक सी जाती थी, जिसे वहाँ से जबरन हटाना पड़ता था, क्योंकि अभी हमें अपने दूसरे गंतव्य की ओर बढ़ना था। गंतव्य था—मंडोर गार्डन।

यह शहर से ९-१० कि.मी. दूर उत्तर में स्थित है। यह उद्यान मारवाड़ की पुरानी राजधानी मांडव्यपुर के समीप जोधपुर नरेशों के द्वारा बनाया गया था। 'मांडव्यपुर' का ही उपभ्रंश रूप 'मंडोर' है। यहाँ उन नरेशों की समाधियाँ भी बनाई गई हैं तथा जिनके पुनरुद्धार का कार्य प्रगति पर था। रख-रखाव की दृष्टि से उद्यान सामान्य लगा, लेकिन शिल्पकला व स्थापत्य कला की दृष्टि से उत्कृष्ट है। यहाँ बनाया गया भगवान् कृष्ण का मंदिर कला की उत्कृष्टता का प्रमाण है। चट्टानों को काट-काटकर निर्मित सीढ़ीनुमा उद्यान दर्शनीय है। 'रानी उद्यान' के आगे तीन तलों वाली एक इमारत, इसकी प्रहरी जान पड़ती है। मार्ग के दोनों ओर जलाशय बने हैं, जो स्वच्छता व निर्मलता की प्रतीक्षा में चिंतित से जान पड़ते हैं। उद्यान में प्रवेश करते ही वहाँ के लोकगीत गायक अपने-अपने वाद्यों पर किसी-न-किसी हिंदी या राजस्थानी गीत की धुन छेड़कर, पर्यटकों को प्रसन्न कर उनसे कुछ दक्षिणा की आकांक्षा करते जान पड़ते थे, क्योंकि उनके बालक पर्यटकों के समीप आकर हाथ फैला रहे थे, जो उनकी विपन्न स्थिति बयाँ कर रहा था।

जोधपुर में स्थित 'उम्मेद भवन'

रानी उद्यान के बाईं ओर पहाड़ी की एक चट्टान पर वहाँ के वीरों व देवताओं की विशाल मूर्तियाँ बनाई गईं। चट्टान को काटकर मूर्तियों को दरशाया गया है, वह दृश्य अनुपम है। मंडोर गार्डन के दृश्यों से अभिभूत हम मेहरान गढ़ किले की ओर बढ़ने लगे, जो शहर के मध्य में ४०० फुट ऊँची पहाड़ी पर २० फीट से १२० फीट ऊँची दीवार के परकोटे से घिरा है। इसका निर्माण कार्य १४५९ में जोधाजी राव द्वारा कराया गया था। उसके परकोटे में जगह-जगह बुर्जियाँ बनाई गई हैं।

इस किले में भव्य प्रवेश द्वार जयपोल, लोहपोल व फतहपोल बने हैं। जयपोल तक आते-आते ही शहर नीचे रह जाता है और हम काफी ऊपर आ जाते हैं। दोपहर की रेगिस्तानी धूप व शाम की चमकती चाँदनी में शहर का भव्य व मनोरम दृश्य यहाँ से बड़ा ही मनभावन दिखाई देता है। ये प्रवेश द्वार जोधाजी राव के विभिन्न वंशजों द्वारा विजय के प्रतीक रूप में बनवाए गए हैं। द्वारों की दीवारों पर जौहर करनेवाली वीरांगनाओं के हस्तचिह्न भी बने हैं। दुर्ग के अंदर कई भव्य व विशाल भवन हैं, जैसे—मोतीमहल, फूलमहल, शीशमहल, दौलतखाना, फतहमहल व रानी सागर आदि। कहीं बैठकखाना तो कहीं दीवानेखास; दीवानेआम है तो होली चौक भी। होली चौक में 'होली' जैसे पर्व का भव्य आयोजन होता था, जिसमें सभी महिलाएँ सम्मिलित होकर उसका आनंद उठाती थीं। दीवाने खास की खासियत यह थी कि जब राजा किन्हीं विशिष्ट लोगों के साथ किसी विशेष विषय पर वार्त्ता करता था तो ऊपर की ओर दीवारों में निर्मित झरोखों में बैठकर रानियाँ भी उस विचार-विमर्श से अवगत होती थीं।

यहाँ की कला की प्रदर्शनी हेतु पेंटिंग्स व दरिया भी प्रदर्शित की गई हैं। पेंटिंग्स वृक्षों की छालों व चावल पीसकर बनाए गए पेपर (कागज) पर तैयार की गई है, जिनमें प्रकृति के अवयवों से तैयार रंगों का प्रयोग किया गया है। एक कक्ष में दरियाँ बनाने की प्रक्रिया भी वास्तविक रूप में दिखाई गई है। सजावटी सामान माला, चूड़ियाँ व दरियाँ आदि उस प्रदर्शनी से क्रय भी की जा सकती हैं। यहीं चंडिका देवी का विशाल व भव्य मंदिर भी है, जो भारत के प्रमुख मंदिरों में गिना जाता है और प्रदेश का सर्वोत्तम मंदिर माना जाता है।

इसके बाद हम दूसरी पहाड़ी पर स्थित 'जसवंत थड़ा' नाम से विख्यात जसवंत स्मारक देखने चल पड़े। आज का यह हमारा अंतिम दर्शनीय स्थल था, थक भी गए थे। सौभाग्य या दुर्भाग्य से उस दिन वह बंद था, किंतु प्रवेश-द्वार के एक ओर महादेव का मंदिर तो दूसरी ओर देव सरोवर। सरोवर में तो यों भी पर्यटकों का जाना निषेध था, हाँ यहाँ अनेक पक्षी भाँति-भाँति की चिड़ियाँ चहचहाकर अपनी प्रसन्नता की सकारात्मक ऊर्जा पर्यटकों को प्रदान कर रही थीं। यह स्मारक १९०३ में महाराजा जसवंतसिंह की स्मृति में बनाया गया था। चार अन्य समाधियाँ भी बनाई गई हैं। सभी श्वेत चमचमाते संगमरमर पत्थर से बने हैं। जोधपुर के इन सभी स्थलों की चित्रकला, स्थापत्य कला व मूर्तिकला को देखकर भारतीय कलाकारों को नमन करने का मन करता है। अब सूर्यदेव भी अपनी किरणों को समेट अस्ताचलगामी हो रहा था। फलत: हमने भी अपने विश्राम स्थल की ओर बढ़ना था, किंतु ऑटोवाला राजस्थानी हैंडीकाफ्ट समिति के शोरूम पर पहुँच गया, विवशत: हम भी वहाँ की वस्तुएँ देखने लगे और इच्छा न होने पर भी कुछ खरीदारी कर ली।

जोधपुर से जैसलमेर रात्रि की गाड़ी जोधपुर-जैसलमेर एक्सप्रेस से तत्काल का आरक्षण कराया और चल पड़े। अगली प्रात: २३.१२.२००९ को हम जैसलमेर स्टेशन पर उतरे ही थे, कई लोगों ने अपने होटल ले जाने के लिए हमें उसी प्रकार से घेर लिया जैसे प्रयागराज के पंडे यात्रियों को घेर लेते हैं। समय व्यर्थ न गँवाते हुए हम शीघ्र ही स्वागतम् होटल की वैन में बैठ गए और थोड़ी ही देर में हम होटल के स्वागत-

कक्ष में आसीन थे।

एक कक्ष में हमारा सामान पहुँचाकर दिनभर का कार्यक्रम होटल के मालिक ने ऐसे निर्धारित कर दिया, जैसे किसी पूर्व परिचित अतिथि का। थोड़ी देर के बाद ही नगर-भ्रमण की व्यवस्था हो गई। हमारे साथ तीन परिवार और भी थे। सबसे पहले यहाँ का सबसे बड़ा आश्चर्य देखने गए—पटवा की हवेलियाँ। १८वीं सदी में शहर के प्रसिद्ध व्यापारी सेठ पटवा ने अपने पाँच पुत्रों के लिए इन हवेलियों का निर्माण कराया था। एक के निर्माण में १२ वर्ष का समय लगा। शहर के मध्य में खड़ी ये पाँच हवेलियाँ कलात्मक वास्तुशिल्प का अद्‌भुत नमूना हैं। इनकी छतें बहुत ही खूबसूरत पत्थर के खंभों (स्तंभों) पर खड़ी हैं। हवेलियों में पत्थर से बनी जालियों का काम, कई पारदर्शक झरोखे, सोने की कलम से की गई चित्रकारी, सीपी व काँच का कार्य पर्यटकों को आश्चर्यचकित कर देता है। इतना ही नहीं, एक तल से दूसरे तल पर पत्थर के 'इंटरलॉक' से ऐसे मिला दिया गया है कि पता ही नहीं लगता कि एक ही पत्थर से बना है या पत्थरों को जोड़कर बनाया गया है। धन्य हैं वे शिल्पकार, जिनके हाथ और मस्तिष्क ने यह करिश्मा किया है।

पटुआ की हवेली

वर्तमान में तीन हवेलियाँ बिक चुकी हैं, एक हवेली में पटवा का कोई वंशज रहता है। एक हवेली पर्यटकों के दर्शनार्थ है। कहते हैं कि साल में एक बार राजा की सवारी इन हवेलियों के नीचे से जाती थी, क्योंकि हवेलियाँ रास्ते के दोनों ओर बनी हैं, ऊपर से पुल (छत) बनाकर उन्हें जोड़ दिया गया है। हवेलियों के झरोखे व छत से आम जन भी दर्शन करते थे। पर्यटकों के दर्शनार्थ हवेली में आज भी पाकशाला में प्रयुक्त होनेवाले बड़े-बड़े पात्र, पानी रखने के लिए विशालकाय घट, जिनमें भीषण गरमी में भी जल ऊष्ण नहीं होता था, महिलाओं के तैयार होने के लिए शृंगार कक्ष आदि उपलब्ध हैं। व्यापारियों से बातचीत के लिए अलग से बैठकखाना निर्मित है। धार्मिक अनुष्ठान के लिए हवन कुंड भी बना है।

इनके अतिरिक्त भी वहाँ नाथामलजी की हवेली व सलीम सिंहजी की हवेली 'पटुआ की हवेलियों' जैसी खूबसूरत है। इनकी भी जालियाँ, झरोखे और दीवारों पर की गई चित्रकारी दर्शनीय है। द्वार पर बलुई पत्थर से बनी 'हस्त-प्रतिमाएँ' प्रहरी की भाँति खड़ी हैं।

यह सब देखने के बाद दुर्ग व राजमहल की ओर जीप बढ़ चली। भूतल से २५० फीट ऊँची, १५०० फीट लंबी व ७५० फीट चौड़ी तीन शिखरों वाली त्रिकुट पहाड़ी पर स्थित दुर्ग अति विशाल व ऊँचा है। इसके परकोटे में ९९ बुर्जियाँ थीं, जिनमें बड़ी-बड़ी तोपें रखी गई थीं तथा चबूतरों पर बड़े-बड़े पत्थर, जो युद्ध के समय प्रयुक्त होते थे। सबसे ऊपर पहुँचकर नीचे बसा शहर, भवन आदि खिलौने जैसे प्रतीत होते थे। ऊपर जाने के लिए लिफ्ट का प्रबंध है। एक विशेष उद्यान भी है, जिसको संगीत, प्रकाश और छाया से अधिक आकर्षक बनाने का प्रयास किया गया है।

मुख्य द्वार से किले की सीढ़ियों तक जाने के लिए लंबा घुमावदार रैंपनुमा मार्ग, जिसे हमने ऑटो से तय किया, तत्पश्चात् सीढ़ियाँ चढ़नी आरंभ कीं। किले की दीवारें बहुत मोटी, ऊँची व ठोस मोटे पत्थरों से बनाई गई थीं। जोधपुर के किले की तरह इसमें भी अंदर कई मंदिर व महल बने हुए हैं, जिनकी कलात्मकता पर्यटकों को मंत्रमुग्ध कर देती है। चित्तौड़गढ़ के बाद राजस्थान का सबसे भव्य व दुर्गम दुर्ग यही है। यहाँ से रत्नाकुमारी ने अलाउद्‌दीन की भारी-भरकम सेना का बारह वर्ष मुकाबला किया है।

आज ही 'सम' का कार्यक्रम भी था। 'सम' एक ग्राम है, जो होटल से ११-१२ कि.मी. दूर रेत की चादर पर बसा है। इस 'सम' ग्राम से डेढ़-दो कि.मी. पहले ही जीप ने हमें उतार दिया, जहाँ कई सारे रेगिस्तानी जहाज (ऊँट) अपनी सवारियों की प्रतीक्षा कर रहे थे। हम भी एक जहाज में सवार हो गए। डर भी लग रहा था, प्रसन्नता भी हो रही थी, उत्सुकता भी। हमारी मंजिल थी—सूर्यास्त केंद्र-बिंदु। ऊँट की सवारी का यह पहला अनुभव था। ऊँटों की कतारें ही कतारें, सभी पर नर-नारी और बाल-वृद्ध सवार थे, शायद सभी की हृदयगति वैसे ही धड़क रही थी, जैसी हमारी। फिर भी रोमांचकारी व मनोरंजक। कुछ ऊँट अपनी सवारियों को गंतव्य तक पहुँचाकर वापस आ रहे थे। एक ओर रोहतांग में बर्फ का पहाड़ देखा था, अमरनाथ में हिम का शिवलिंग ही नहीं, हिम की धरती, हिम का फर्श देखा था। यहाँ रेत के मखमली गद्‌दे, जिन पर आपके पग पाँच-सात अंगुल नीचे धँसते जाते हैं। पंक्तिबद्ध ऊँटों की कतारें, उन पर रंग-बिरंगी पोशाकों में आसीन पर्यटक शायद अपने गिरने के भय में खोए दम साधे बैठे थे। देखते-ही-देखते हम सब अपने गंतव्य पर पहुँच गए। क्या अद्‌भुत दृश्य था। बच्चों के खिलौने, दूरबीन, चिप्स, कुरकुरे, खाकड़ा, चाट-पकौड़े जैसी अनेक वस्तुएँ लिये विक्रेता चलती-फिरती दुकानों की तरह घूम रहे थे। कुछ राजस्थानी कन्याएँ व स्त्रियाँ लोकगीत सुनाकर पर्यटकों को प्रसन्न करने में निमग्न थीं। अनेक पर्यटक अपने कैमरे के बटन ऑन कर अस्ताचलगामी भास्कर को कैमरे में बंद करने के लिए सन्नद्ध थे। देखते-ही-देखते चमकता सूर्य ताम्रवर्णी होकर जल्दी-जल्दी दूर क्षितिज में लय होता जा रहा था, साथ ही पर्यटकों के कैमरों में कैद भी। कुल मिलाकर वह जन सैलाब किसी महाकुंभ की याद ताजा करा रहा था।

अब सब गाड़ियों की ओर चल पड़े, जो लगभग आधे फर्लांग पहले खड़ी थीं, उस मार्ग में चलते हुए उस मखमली फोम के गद्दों की अनुभूति हो रही थी। जीप पर सवार हुए और आ गए सांस्कृतिक आयोजन स्थल पर, जहाँ पर्यटकों के स्वागतार्थ रंगारंग सांस्कृतिक कार्यक्रम व रात्रि-भोज का प्रबंध था। मध्य में अग्नि प्रज्वलित की गई थी। तीन ओर दर्शकों के बैठने की व्यवस्था थी तो एक ओर प्रस्तुति देनेवाले कलाकारों का मंच बनाया गया था। उसमें राजस्थान के जाने-माने कलाकारों ने वहाँ की लोक संस्कृति को नृत्य-नाटिका व गायन के माध्यम से जो प्रस्तुति दी, वह अद्‌भुत थी। देश-विदेश में प्रस्तुति देने वालों का यह संगम दर्शकों को भाव विभोर किए था, एक तो मध्य में प्रज्वलित अग्नि, दूसरी ओर मंत्र-मुग्ध करता कार्यक्रम, न किसी को ठंड की अनुभूति होने दे रहा था और न ही समय का ज्ञान, फिर भी आयोजकों को तो ध्यान रखना था। रात्रि-भोज की तैयारी संपन्न हो चुकी थी। इसलिए भोज की ओर प्रस्थान करने के बार-बार संकेत मिल रहे थे। सभी ने उधर प्रस्थान किया। भोजन में राजस्थानी व्यंजनों का वैविध्य था। बड़ी-बड़ी मेजों पर बड़े-बड़े बरतनों में भोजन रख दिया गया था। सेल्फ सर्विस—जैसा रुचे, जितना रुचे, लीजिए, खाइए, आनंद उठाइए की तर्ज पर सब भोजन कर रहे थे। 'स्वागतम् होटल' के मालिक ने होटल के नाम को सार्थक करते हुए वास्तव में हम सब पर्यटकों का हार्दिक स्वागत किया, जो हमारे लिए अविस्मरणीय बन गया।

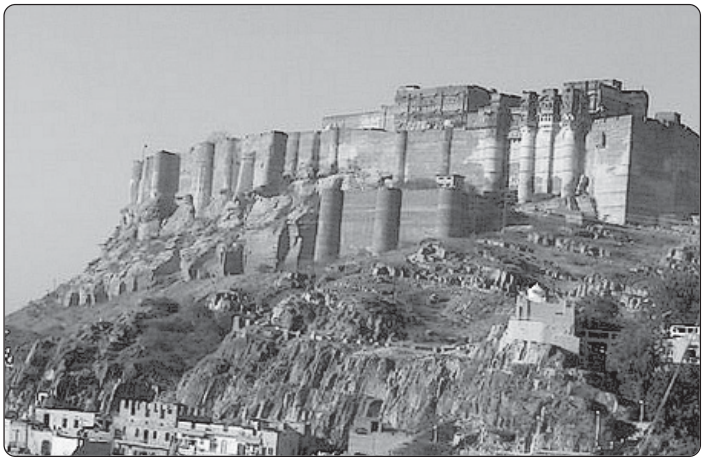

जोधपुर का विहंगम दृश्य

इन सब स्मृतियों के साथ होटल वापस, वहाँ से भी सामान उठा पुनः स्टेशन, वही रात्रि यात्रा और पहुँच गए 'जोधपुर'। जैसलमेर से 'चित्तौड़' जाने के लिए 'जोधपुर' आना ही एकमात्र विकल्प था। यहाँ से दिनभर की यात्रा कर हम २४ दिसंबर के सायंकाल तक 'चित्तौड़गढ़' पहुँच गए। यहाँ हमने जैन-धर्मशाला में रात्रि-विश्राम किया और २५ दिसंबर की प्रातः शहर भ्रमण के लिए चल पड़े।

चित्तौड़गढ़ का नाम आए या चेतक का, तुरंत एक वीर, साहसी और स्वाभिमानी देशभक्त का चित्र मानसपटल पर सजीव हो उठता है। महाराणा प्रताप, जिन्होंने चित्तौड़ की रक्षा में अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया, लेकिन आत्म-समर्पण नहीं किया। भले ही महलों को त्यागकर जंगल में शरण लेनी, बच्चों व परिवार को भूखा रखना पड़ा, विशाल धरती शैया व खुला नीलगगन रहा, पर हार नहीं मानी। ऐसे ही एक और देशभक्त व स्वामिभक्त की याद ताजा हो जाती है—भामाशाह। जिसने अपनी सारी पूँजी अपने स्वामी सम्राट् राणा प्रताप के चरणों में अति विनम्र भाव से रख दी। इसी शहर से मीरा जैसी कृष्ण भक्तिन की यादें भी जुड़ी हैं।

यों यह छोटा सा शहर है, लेकिन इसके कण-कण में वीरता, त्याग और भक्तिभाव भरा दिखता है। यहाँ के बशिंदों की सहजता, सरलता व भाईचारा देखकर सहज ही यहाँ के महापुरुषों के गुणों की अभिव्यक्ति हो जाती है, जो इन्हें विरासत में मिले प्रतीत होते हैं।

दर्शनीय स्थलों में एक विशाल दुर्ग है, जिसके विषय में कहा जाता है कि दुर्गों में दुर्ग चित्तौड़गढ़, बाकी सब गढ़ैया। यह किला समुद्रतल से १३५० फीट ऊँची पहाड़ी पर ७०० एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है। इस गढ़ के अंदर मीरा मंदिर, विजय स्तंभ, गौमुखी कुंड, कालिका मंदिर, पद्‌मिनी महल, जौहरकुंड, कुंभा महल, जैन मंदिर व श्री महाराणा म्यूजियम जैसे अनेक दर्शनीय स्थल हैं। जैन मंदिर में सभी २४ तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ स्थापित की गई हैं। सभी प्रतिमाएँ श्वेत संगमरमर के आकर्षक पत्थर से निर्मित हैं, कई प्रतिमाओं में समानता प्रतीत होती है, जबकि वे अलग-अलग जैन मुनियों की हैं। किले से पहाड़ी तक सर्पाकार मार्ग से जाना पड़ता है, जिसमें बीच-बीच में अनेक पोल (द्वार), जैसे—पांडव पोल, भैरों पोल, हनुमान पोल, गणेश पोल, रामपोल व लक्ष्मण पोल आदि। पश्चिम की ओर बना रामपोल ही किले का मुख्य प्रवेशद्वार है।

जैन मंदिर के सामने ही बड़े से गेट में विजय स्तंभ है, जो महाराणा कुंभा द्वारा मालवा के सुल्तान व गुजरात के सुल्तान के संयुक्त आक्रमण की साहसिक विजय के रूप में बनाया गया। जौहर कुंड और रानी पद्‌मिनी जैसी वीरांगनाओं के जौहर की कहानी का प्रतिबिंब है।

यहाँ के पार्क में भी महाराणा प्रताप की एक आकर्षक प्रतिमा 'चेतक' पर स्थापित है। राजस्थान के इन तीन शहरों की यात्रा ने एक गीत की कुछ पंक्तियाँ याद दिला दी—

'यह देश है वीर जवानों का, अलबेलों का, मस्तानों का,
इस देश का यारों क्या कहना, यह देश है धरती का गहना।'

संक्षेप में यदि मैं कहूँ कि यह वीरभूमि है, जहाँ त्याग भी है, बलिदान भी, शत्रु को परास्त करने का जज्बा भी है तो कला की परख भी, देशभक्ति भी है, ईश-भक्ति भी। यहाँ जौहर है तो अपने स्वत्व व सतीत्व की रक्षा का आदर्श भी तो रंच मात्र भी अत्युक्ति न होगी। भारतीय संस्कृति की धनी इस भूमि को हमारा शत-शत नमन!

२८-बी, प्रेमनगर, भादसो रोड
पटियाला-१४७००१ (पंजाब)
दूरभाष : ९४१७०८८४६६

भोजपुरी के भारतेंदु : भिखारी ठाकुर

● भगवती प्रसाद द्विवेदी

साहित्य की दो धाराएँ साथ-साथ बहती रहती हैं—'लोक' और 'शिष्ट'। लोक साहित्य लोक अथवा जन, यानी धरती से रचे-बसे मेहनतकशों, कृषकों व मजदूरों को केंद्र में रखकर रचा जाता रहा और दूसरे किस्म का साहित्य प्रबुद्ध वर्ग के लिए। मगर 'लोक' से उपजे लोग ही जब अपनी जड़ों को भूलने लगें और स्वयं को 'शिष्ट-विशिष्ट' के विभूषणों से अलंकृत करने लगें, तब से क्रमशः 'लोक' का लोप होता चला गया। फलतः अधिकांश लोक साहित्य के रचयिताओं ने अपना नाम गुप्त रखा और यह परंपरा चल निकली। मगर लोकभाषा के अमर कवियों—कबीर और तुलसी—के काव्य की जन-जन में व्यापकता व अमरत्व को निरखकर तथाकथित बुद्धिजीवियों की बोलती बंद हो गई। भिखारी ठाकुर भी उसी परंपरा के रचनाकार थे, जिन्होंने खुद को छिपाया नहीं बल्कि कबीर की तरह ही डंके की चोट पर कहा कि वह अक्षर ज्ञान से अधिक कुछ भी लिखना-पढ़ना नहीं जानते। मगर आज उनकी कृतियों की गूँज न सिर्फ भोजपुरी भाषी क्षेत्र में, वरन् पूरे उत्तर भारत और विदेशों में भी जन-जन की जुबान पर है।

स्व. श्री भिखारी ठाकुर

जिन दिनों भिखारी का अभ्युदय हुआ, इस क्षेत्र में लोकनाटक के बजाय जोगीड़ा, नेटुआ के नाच आदि का प्रचलन था। जिस प्रकार भारतेंदु ने बँगला लोकनाटकों से प्रभाव ग्रहण कर हिंदी में 'सत्य हरिश्चंद्र', 'भारत-दुर्दशा' आदि नाटकों की प्रभावोत्पादक प्रस्तुति की, ठीक उसी प्रकार भिखारी ठाकुर ने बँगला के लोकनाटकों, यात्रा, रामलीला और पूर्व प्रचलित नेटुआ के नाच, जोगीड़ा आदि से प्रेरित होकर भोजपुरी की प्रवृत्ति, प्रकृति, संस्कृति व सामाजिक दशा-दिशा के मद्देनजर लोकनाटकों की सार्थक सर्जना की।

कहा जाता है कि चारों वेद जब अनार्यों के लिए वर्जित हो गए तो देवताओं ने ब्रह्मा से सर्वसाधारण के लिए पंचम वेद की रचना हेतु अनुरोध किया और वह पाँचवाँ वेद 'नाटक' के रूप में सृजित हुआ। भरतमुनि ने उसका साधारणीकरण कर नाटक की परंपरा की शुरुआत की। भिखारी ठाकुर ने एक तरफ अपने लोकनाटकों में भरतमुनि की परंपरा के अनुरूप सूत्रधार, मंगलाचरण, विदूषक, गीत-संगीत, नृत्य आदि का सफल समायोजन किया, वहीं नाटक के कथानक को आधुनिक समस्याओं से जोड़कर परंपरा तथा आधुनिकता के बीच सेतुबद्धता करते हुए एक सार्थक व सफल प्रयोग किया। तभी तो १९४४ में अंग्रेजों ने उन्हें 'राय बहादुर' का खिताब दिया था और बिहार सरकार ने राज्यपाल के हाथों ताम्रपत्र प्रदान कर सम्मानित किया था; पर उनका वास्तविक सम्मान था—जन-जन में व्याप्त उनकी प्रचंड लोकप्रियता।

निरक्षर होने के बावजूद भिखारी ठाकुर एक तरफ जहाँ लोक-नाटककार, जनकवि, संतकवि, गायक और नर्तक के रूप में सुप्रसिद्ध थे, वहीं दूसरी तरफ एक कुशल नाट्य निर्देशक और व्यवस्थापक के रूप में भी बहुचर्चित थे। अभिनय कला में तो उन्हें जैसे माँ भारती का वरदान प्राप्त था। यही वजह थी कि उनकी नृत्य-मंडली जहाँ भी जाती थी, दर्शकों की इतनी अधिक भीड़ इकट्ठी हो जाती थी कि प्रशासन के लिए पुलिस की तैनाती अनिवार्यता बन जाती थी। सच तो यह है कि भिखारी भोजपुरी के एक ऐसे प्रकाश-पुंज हैं, जिन्हें अलग कर देने पर भोजपुरी की अस्मिता ही खतरे में पड़ सकती है या यों कहें कि सूर्य सी भोजपुरी को ग्रहण लग सकता है।

मगर प्रबुद्ध वर्ग से भिखारी ठाकुर को जीवन भर 'नचनिया' की उपाधि और उपेक्षा ही मिलती रही। भिखारी को यदि किसी ने सही मायने में सम्मान दिया था, तो वे थे—महापंडित राहुल सांकृत्यायन। उन्होंने भिखारी ठाकुर को 'भोजपुरी का शेक्सपियर' और 'अनगढ़ हीरा' कहा था। दरअसल, शेक्सपियर व भिखारी के सृजन में काफी हद तक समानताएँ हैं। शेक्सपियर के नाटकों में भी गीतों की प्रधानता है और भिखारी के नाटकों में भी। आम आदमी के दुःख-दर्द, हास्य की थिरकन और व्यंग्य की पैनी मार दोनों ही सर्जनात्मकता की विशेषताएँ हैं। तभी तो संवत् २००५ में महापंडित राहुलजी ने 'भोजपुरी' में लिखा था—'हमनी के बोली में केतना जोर हवे, केतना तेज बा, ई अपने सब भिखारी ठाकुर के नाटक में देखींले। लोग के काहे नीमन लागेला भिखारी ठाकुर के नाटक? काहे दस-दस, पनरह-पनरह हजार के भीड़ होला ई नाटक देखे के खातिर? मालूम होता कि एही नाटक में पब्लिक के रस आवेला। जवन चीज में रस आवे, उहे कविताई। केहू के लमहर नाक होखे आ ऊ खाली दोसे सूँघत फिरे त ओकरा खातिर का कहल जाय! हम ई ना कहतानी जे भिखारी ठाकुर के नाटकन में दोस नइखे। दोस बा त ओकर कारन भिखारी ठाकुर नइखन, ओकर कारन हवे पढ़ुवा लोग। भिखारी ठाकुर हमनी के एगो अनगढ़ हीरा हवे। उनकरा में कुल्हि गुन बा।'

अर्थात् हमारी बोली में कितना जोर है, कितना तेज है, यह आप सभी भिखारी ठाकुर के नाटकों में देखते हैं। लोगों को क्यों भाते हैं भिखारी ठाकुर के नाटक ? क्यों दस-दस, पंद्रह-पंद्रह हजार की भीड़ होती है इन नाटकों को देखने की खातिर ? मालूम होता है, इन्हीं नाटकों में आम जनता को रसानुभूति होती है। जिन चीजों में रस मिले, वही काव्य। (यदि) किसी की लंबी नाक हो और वह सिर्फ दोष ही सूँघती फिरे तो उसके लिए क्या कहा जाए! मैं यह नहीं कहता कि भिखारी ठाकुर के नाटकों में दोष है ही नहीं। दोष है तो उसकी वजह भिखारी ठाकुर नहीं हैं, वजह हैं प्रबुद्ध लोग, भिखारी ठाकुर (तो) हमारे एक अनगढ़ हीरा हैं। उनमें सभी गुण हैं।

तभी तो भिखारी साहित्य के समालोचक महेश्वराचार्य का कथन है, 'निर्विवाद है कि उत्तर भारत में भिखारी का अपना एक विशिष्ट स्थान है। मध्य भारत, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल तथा असम तक विरले कोई होगा जो भिखारी को न जानता हो। यह सही है कि तुलसी के मानस ने जनमानस पर पूर्णत: अधिकार प्राप्त किया है, लेकिन आज यदि उत्तरी भारत के अधिकांश लोगों के हृदय पर हाथ रखकर पूछा जाए कि ऐसा कौन सा जनकवि अथवा लोक कलाकार था, जो एक साथ ही हँसाने-रुलाने की क्षमता रखता था तो उसका एकमात्र यही सही और सटीक उत्तर हो सकता है कि नृत्य-संगीत तथा काव्य-कला विशारद—भक्त भिखारी।'

बिहार के सारण जिले में छपरा शहर के पूर्वी छोर पर नृत्यमंडली के साथ भिखारी ठाकुर की आदमकद प्रतिमा लगी है। यहाँ से लगभग दस किलोमीटर पूर्व में चिरांध (चिरान) नामक स्थान के पास 'भिखारी ठाकुर पथ' का सरकारी बोर्ड लगा है। दक्षिण दिशा में सड़क पर थोड़ी दूर आगे बढ़ते ही तिवारी घाट (पूर्व का नाम 'वनरा घाट') से गंगा नदी पार करनी पड़ती है। उस पार तकरीबन चार किलोमीटर की दियारे क्षेत्र की पदयात्रा करने के बाद कुतुबपुर गाँव के दर्शन होते हैं। आज भी अपनी दीन-हीन दशा पर आँसू बहाता खड़ा है कुतुबपुर गाँव, जो कभी भोजपुर (शाहाबाद) जिले में था, पर अब गंगा की कटान को झेलता सारण (छपरा) जिले में आ गया है। इसी गाँव के पूर्वी छोर पर स्थित है भिखारी ठाकुर का पुश्तैनी, कच्चा, पुराना और खपरैल का मकान। बगैर झुके बरामदे में झुका भी नहीं जा सकता। इसी गाँव में १३ अप्रैल, १९८६ को उनकी प्रतिमा की आधारशिला 'लोक कलाकार भिखारी ठाकुर आश्रम' के तत्त्वावधान में रखी गई थी।

कुतुबपुर के अपने मिट्टी के मकान में ही मिट्टी से गहरे जुड़े कवि-नाटककार भिखारी ठाकुर पौष मास, शुक्ल पंचमी संवत् १९४४ तदनुसार १८ दिसंबर, १८८७ (सोमवार) को दोपहर बारह बजे शिवकली देवी के गर्भ से दलसिंगार ठाकुर के नाई परिवार में पैदा हुए थे। जन्मस्थान मूलत: आरा (भोजपुर) जिले में ही था, जो उनकी ३९ वर्ष की आयु में दहकर सारण जिले में आ गया था। उन्होंने लिखा भी है कि पटना, आरा, छपरा और बलिया के चौमुहाने पर अवस्थित है उनका कुतुबपुर गाँव। बचपन में वह कुछ दिनों तक गायों की चरवाही ही करते रहे थे। माँ-बाप उनसे नाई का दाढ़ी-हजामत बनाने और चिट्ठी न्योतने का पुश्तैनी धंधा करवाना चाहते थे। कुछ वर्षों तक वे इस पेशे से जुड़े भी रहे, पर साथ-ही-साथ

सुप्रसिद्ध साहित्यकार। बाल साहित्य में 'हक की लड़ाई', 'रसीले नीबू' *(कहानी)*, 'अक्षर गीत', 'नन्हे गीत' *(कविता)* तथा 'शिकारी की सूझबूझ' *(उपन्यास)* चर्चित। 'विशिष्ट साहित्य-सेवा सम्मान', 'भारतेंदु हरिश्चंद्र सम्मान' तथा 'शकुंतला सिरोठिया बाल-साहित्य पुरस्कार' सहित अनेक पुरस्कार-सम्मान।

तुकबंदी भी किया करते थे। कहते हैं कि एक रोज किसी बाबू साहब की दाढ़ी बनाने के बीच ही उन्होंने गुनगुनाना शुरू कर दिया और उनके गाल पर ही ताली ठोंकने लगे थे। फिर तो बाबू साहब आग-बबूला हो गए और उन्होंने भिखारी को काफी डाँटा-फटकारा। उसी वक्त भिखारी ने इस धंधे को आखिरी प्रणाम कर जीवन में फिर कभी किसी की दाढ़ी-हजामत न बनाने की कसम खा ली।

छुरा छूटल, कैंची छूटल, छूटल नोहरनिया।
बाबू लोग के हजामत छूटल नाच के करनिया॥

बहुत दिनों से भिखारी उद्विग्न रहा करते थे। क्या करें, क्या न करें ? लुक-छिपकर वह नाच देखने चले जाते थे और नृत्य मंडलियों में छोटी-मोटी भूमिकाएँ भी अदा करने लगे थे। पर माँ-बाप को यह कतई पसंद न था। वह रोज ही मंदिर जाते और भगवान् के सम्मुख माथा टेककर घंटों सोच के अथाह सागर में डूबते-उतराते कि क्या उनका जीवन व्यर्थ नष्ट हो जाएगा।

कहते हैं, एक दिन ज्यों ही वे मंदिर से होकर बाहर निकले, एक महात्मा एकाएक प्रकट हुए और उनकी बड़ी-बड़ी आँखें और चौड़े मस्तक को देखकर कहा, 'बेटा, घबरा मत! तुझे तेरी राह अवश्य मिलेगी और तुम अपनी राह की एक अलग ही लीक बनाओगे। आयुष्मान भव: !' और ज्यों ही उन्होंने हाथ जोड़कर कुछ कहना चाहा, साधु नदारद!

अपने माँ-बाप की ज्येष्ठ संतान भिखारी ने नौ वर्ष की अवस्था में पढ़ाई शुरू की। एक वर्ष तक तो कुछ भी न सीख सके। साथ में छोटे भाई थे बहोर ठाकुर, बाद में गुरु भगवान से उन्होंने ककहरा सीखा और स्कूली शिक्षा अक्षर-ज्ञान तक ही सीमित रही। बस किसी तरह टो-टाकर वह रामचरितमानस पढ़ लेते थे। वह कैथी लिपी में ही लिखते थे, जिसे दूसरों के लिए पढ़ पाना मुश्किल होता था। पर लेखन की मौलिक प्रतिभा तो उनमें जन्मजात थी। इस प्रकार शिक्षा में वे कबीर की श्रेणी में आते हैं।

किशोरावस्था में ही उनका विवाह मतुरना के साथ हो गया। फिर तो एक रोज गाँव से भागकर वह खड्गपुर जा पहुँचे। मेदिनीपुर जिले की रामलीला और जगन्नाथपुरी की रथयात्रा देख उनके भीतर का सोया हुआ कलाकार पुन: जाग उठा और गाँव लौटे तो कलात्मक प्रतिभा और धार्मिक भावनाओं से पूरी तरह लबरेज होकर। तीस वर्ष की उम्र में उन्होंने 'विदेसिया' की रचना की। फिर तो पीछे मुड़कर नहीं देखा। परिवार के विरोध के बावजूद नृत्य मंडली का गठन कर वे शोहरत की बुलंदियों को छूने लगे। जन-जन की जुबान पर बस एक ही नाम—भिखारी ठाकुर! डॉ. रामनाथ पाठक 'प्रणयी' के शब्दों में—''बिहार के 'विदेसिया' नाटक के प्रवर्तक और

लोकवीणा के तारों की झंकार के साथ स्वयं थिरकनेवाले भिखारी ठाकुर अपने युग के सर्वश्रेष्ठ लोक कलाकार थे। भिखारी ने हिंदी के अनेक संत-कवियों की तरह कहीं शिक्षा नहीं पाई थी, किंतु उन्हें दैवी प्रतिभा का अपूर्व सौभाग्य प्राप्त था। भिखारी के कंठ में अपूर्व माधुर्य था एवं स्वर में अद्‌भुत आकर्षण। अभिनय-कला तो उन्हें वरदान रूप में प्राप्त थी। यही कारण है कि उनका 'विदेसिया' रूपक उन्हें अल्पकाल में ही अक्षय यश दे गया।''

वर्ष १९३८ से १९६२ के मध्य भिखारी ठाकुर की लगभग तीन दर्जन पुस्तिकाएँ छपीं, जिन्हें फुटपाथों से खरीदकर लोग चाव से पढ़ा करते थे। अधिकांश पुस्तिकाएँ दूधनाथ प्रेस, सकलियाँ (हावड़ा) और कचौड़ी गली (वाराणसी) से प्रकाशित हुई थीं। नाटकों व रूपकों में 'बहरा बहरा' (विदेसिया), 'कलियुग प्रेम' (पियवा नसइल), 'गंगा-स्नान', 'बेटी वियोग' (बेटी बेचवा), 'भाई-विरोध', 'पुत्र-वध', 'विधवा विलाप', 'राधेश्याम बहार', 'ननद-भउजाई', 'गबर घिचोर' आदि मुख्य हैं। उनकी प्रसिद्धि भुनाने के लिए कई जाली किताबें भी भिखारी ठाकुर के नाम से छपने-बिकने लगी थीं।

भोजपुरी के सिरमौर लोक कलाकार भक्त भिखारी की समस्त रचनाओं के सांगोपांग विवेचन-विश्लेषण का पहला श्रेय समालोचक महेश्वराचार्य को जाता है, जिनकी पुस्तक 'भिखारी' लोक कलाकार भिखारी ठाकुर आश्रम, कुतुबपुर के तत्त्वावधान में १३ जनवरी, १९७८ को प्रकाशित हुई। इसके पूर्व भी उन्होंने महेश्वर प्रसाद के नाम से वही पुस्तक 'जनकवि भिखारी ठाकुर' शीर्षक से कवि के जीवनकाल में ही लिखी थी, जिसका प्रकाशन भोजपुरी परिवार, पटना ने १९६४ में किया था। भिखारी ठाकुर के व्यक्तित्व-कृतित्व पर शोध कर तैयब हुसैन ने पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की थी तथा प्रख्यात कथाकार संजीव ने उपन्यास 'सूत्रधार' का सृजन किया था। इन पंक्तियों के लेखक ने 'भिखारी ठाकुर : भोजपुरी के भारतेंदु' शीर्षक से मोनोग्राफ लिखा था, जो सन् २००० में आशु प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था।

लोक कलाकार भिखारी ठाकुर आश्रम ने 'भिखारी ठाकुर ग्रंथावली' के दो खंड प्रकाशित किए थे। पहले खंड में 'विदेसिया', 'भाई विरोध', 'बेटी वियोग', 'कलियुग प्रेम' और 'राधेश्याम बहार'—कुल पाँच नाटक संकलित हैं। दूसरे खंड में 'गंगा-स्नान', 'विधवा-विलाप', 'पुत्र-वध', 'गबर घिचोर', 'ननद-भउजाई'—पाँच नाटकों को संकलित किया गया है। प्रथम खंड १९७९ में छपा था और द्वितीय खंड १९८६ में। ठाकुरजी की रचनाओं की संपूर्ण रचनावली बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने २००७ में प्रकाशित की।

भिखारी ठाकुर ने अपेक्षाकृत सस्ती के जमाने में लाखों रुपए कमाए, पर उनका मिट्‌टी का खपरैल का मकान और परिवार की दीन-हीन दशा आज भी लोगों को हैरत में डाल देती है। उस वक्त वे ५००-६०० रुपए प्रति रात का मेहनताना लेते थे, जबकि सोना मात्र १५० रुपए प्रति भरी (१० ग्राम) था। फिर भी उनका जीवन निर्धनता में ही कटा। दयालुता और सहृदयता ऐसी कि जिस जरूरतमंद को जैसी जरूरत होती थी, वे अपनी आवश्यकता को नजरअंदाज करते हुए आर्थिक सहायता कर दिया करते थे।

जब मैं भिखारी ठाकुर के इकलौते पुत्र वयोवृद्ध शिलानाथ ठाकुर (अब दिवंगत) से मिला तो वे सहजता, दीनता और अभावग्रस्तता की प्रतिमूर्ति लगे थे। अपने पिता की रचना-प्रक्रिया की बाबत उन्होंने बताया था—''बाबूजी स्वयं लिख तो लेते थे, पर वह दूसरी ही लिपि में लिखते थे, जिसे दूसरा कोई पढ़ नहीं पाता था। पांडुलिपि तैयार करते वक्त वे अपना लिखा हुआ पढ़ते जाते और एक आदमी लिखता जाता। उनके लिखने का कोई निर्धारित वक्त नहीं था। राह चलते भी गुनगुनाते रहते और कहीं ठहरकर कागज पर नोट कर लेते थे। द्वार पर या चारपाई पर कभी नहीं बैठते। बस जमीन पर चटाई बिछाकर बैठे रहते। अपने आपको सबसे छोटा आदमी मानकर चलते और उम्र में छोटा या बड़ा, सबका हाथ जोड़कर ही अभिवादन किया करते थे।''

अलबत्ता सादा जीवन, उच्च विचार की जीवंत प्रतिमूर्ति थे, कलाकारों के कलाकार मल्लिकजी। रोटी, भात, सत्तू—जो भी मिल जाता, ईश्वर का प्रसाद मानकर प्रेमपूर्वक खाते थे। भोजन के बाद वे कोई मिठाई जरूर खाते थे। मिष्टान्न उपलब्ध न हो तो गुड़ ही सही। बिना किनारी की धोती, छह गज की मिरजई, सिर पर साफा और पैरों में चमरौंधा जूता उनका पहनावा था।

जीवहिंसा के तो वे प्रबल विरोधी थे। भिखारी लोकनृत्य परिषद् से जुड़े शत्रुघ्न ठाकुर ने एक घटना का जिक्र करते हुए कहा था—''एक बार मेरे अजिया ससुर भिखारी ठाकुर ने ढेर सारे कछुओं को एक कमरे में बंद देखा, सबके पैरों में धागे बँधे हुए थे। दरअसल, वह कोई व्यवसायी था, जो कछुओं की आपूर्ति का व्यवसाय किया करता था। भिखारी ठाकुर ने कीमत पूछकर पैंसठ रुपए अदा किए और सभी कछुओं के बदन पर अबीर पोतकर उन्हें गंगा नदी में छोड़ दिया। अपनी तमाम उपलब्धियों के बावजूद उनके मन में जरा भी अहं भाव नहीं था। दिखावा तो उन्हें तनिक भी पसंद नहीं था। एक दफा छपरा कचहरी रेलवे स्टेशन पर उनके पहुँचते ही हजारों लोग-बाग उनके दर्शन के लिए उमड़ पड़े। वहाँ के स्टेशन मास्टर ने उनसे मिलकर पूछा, 'ठाकुरजी, आपको देखने की खातिर फर्स्ट और सेकंड क्लास के तो कम, मगर थर्ड क्लास के लगभग सभी पैसेंजर ट्रेन से उतरकर यहाँ आ पहुँचे हैं।' उन्होंने मुसकराते हुए कहा था, 'इसकी भी वजह है। मैं भी तो थर्ड क्लास का ही आदमी हूँ न!''

भिखारी ठाकुर के साथ नृत्यमंडली में चालीस वर्षों तक हारमोनियम वादन का कार्य कर चुके भदई राम (अब स्वर्गीय) से जब चर्चा हुई तो उन्होंने भाव-विह्वल होकर कहा था, ''मल्लिकजी सदा प्रतिभावान कलाकारों की तलाश में रहते थे तथा कला की कद्र किया करते थे। उनके जैसी शोहरत लोकभाषा के किसी भी कवि-कलाकार को शायद ही मिली हो। वे आम जनता के दिलों के कुशल चितेरे थे। राष्ट्रीयता तो उनमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। देश पर जब भी संकट के बादल मँडराते थे, वे आर्थिक सहयोग किया करते थे। जब भी लड़ाइयाँ छिड़ीं, नृत्य का आयोजन करके उन्होंने 'वार फंड' में राशि दी। बेतियाराज के यहाँ जपला, गोपालगंज, दिघवारा आदि अनेक शहरों में टिकट लगाकर नृत्य के कार्यक्रम पेश किए। रोज ही पंद्रह-बीस हजार की भीड़ टूट पड़ती थी। सारे रुपए भारत सरकार

को दे दिए गए।''

१० जुलाई, १९७१ (पुण्य तिथि) की याद आते ही भदई राम ने फिर कहा था, ''चौरासी वर्ष की अवस्था में उनका निधन हुआ था। एकाएक लगा था, जैसे सूर्यास्त के बाद अचानक गहन अंधकार से सामना करना पड़ रहा हो। नृत्यमंडली तो आज भी है, कई सितारे भी हैं, मगर जब चाँद ही न हो तो इन तारों का क्या अस्तित्व! राय बहादुर का खिताब, बिहार सरकार से ताम्रपत्र, जिलाधिकारी (भोजपुर) से शील्ड, 'विदेसिया' फिल्म से प्रसिद्धि और जनता में अभूतपूर्व लोकप्रियता मिलने के बाद जब मैंने यह जानना चाहा कि उन्हें कैसा लगता है तो उन्होंने मुसकान बिखेरते हुए कहा था, 'मैं तो जैसे पहले था, वैसे ही आज भी हूँ। सम्मान आदमी को नहीं, उसकी कला को मिलता है और जब कला सम्मानित होती है तो आदमी को अहं के नशे में फूलना नहीं चाहिए। तब उस सम्मान की रक्षा करने की जिम्मेदारी भी कलाकार पर आ जाती है।''

एक बार भिखारी ठाकुर ने प्रो. ब्रज किशोर से पूछा था, 'बबुआजी, अभिनंदन-ग्रंथ क्या होता है?'

उन्होंने बताया कि किसी के मान-सम्मान में प्रकाशित उस व्यक्ति के व्यक्तित्व-कृतित्व पर लिखित रचनाओं का संकलन ही अभिनंदन-ग्रंथ कहलाता है। सुनते ही भिखारी ने कहा था, 'मुझसे कई लोगों ने कहा कि आप अपना एक अभिनंदन-ग्रंथ लिखवाकर छपवाएँ। बताइए तो भला, मुझे क्या जरूरत है इसकी?'

तथाकथित बौद्धिक और प्रशस्ति के भुक्खड़ों के गाल पर कैसा करारा तमाचा है यह! भिखारी को न तो ऐसे अभिनंदन-सम्मान की भूख थी, न सुख-समृद्धि की। वे ख्याति के शिखर पर तो पहुँचे, पर पारिवारिक व आर्थिक उत्थान नहीं कर पाए। पारिवारिक निर्धनता, निरक्षरता और सामाजिक स्तर आज भी उनके भिखारी होने का ही सबूत प्रस्तुत करते हैं। उनकी दिली तमन्ना भी तो यही थी—'सदा भिखारी रहसु भिखार!'

'विदेसिया' की प्रस्तुति में भिखारी ने जो शैली अपनाई, वह आगे चलकर इतनी प्रसिद्ध हुई कि उस लोकशैली का नामकरण हो गया 'विदेसिया शैली'। लोरिकायन, जतसारी, सोरठी, बिरहा, बारहमासा, पूर्वी, आल्हा, पचरा, कुँवर विजई, निर्गुन, चौपाई, कवित्त, चौबोला आदि विभिन्न तर्जों पर रचित 'विदेसिया' के गीत कभी दिल की गहराई को छूने में तो कभी हँसाने और रुलाने में पूरी तरह से सक्षम हैं।

विदेसिया शैली में सूत्रधार नाटक के कथानक तथा उद्देश्य की सार्थकता की ओर बीच-बीच में नृत्य तथा काव्यमय शैली में इशारा करता चलता है। सभी कलाकार मंच पर ही बैठे रहते हैं और ज्योंही किसी कलाकार की भूमिका आती है, वह एकाएक खड़ा होकर अभिनय करने लगता है। बगैर किसी ताम-झाम के पात्र सामान्य ढंग का मैकअप भी वहीं कर लेते हैं। कभी-कभी तो दर्शकों के बीच से होकर भी कोई पात्र मंच पर आ पहुँचता है और आरंभ से अंत तक दर्शकों से पात्रों का जुड़ाव बना रहता है। शुरुआत मंगलाचरण से होती है, जिसमें ईश्वर की वंदना की जाती है। भिखारी ने भोजपुरी क्षेत्र को और वहाँ के समाज को बहुत नजदीक से देखा तथा यह बात उनके अंदर घर कर गई थी कि बगैर धर्म-अध्यात्म और भक्तिभाव से दर्शकों को जोड़े, समाज-सुधार की बात नहीं की जा सकती। अत: मंगलाचरण के साथ ही वे नाटक के मकसद और आदर्शवादी वक्तव्य को प्रस्तुत कर देते थे—बिल्कुल इतने सहज ढंग से कि दर्शक उसमें डूब जाते थे। यह विदेसिया की नहीं, भिखारी की रमणीयता है।

आज भी विदेसिया शैली में धूम मची हुई है। बिहार और देश की कई चर्चित नाट्य संस्थाओं ने विदेसिया शैली को अपनाकर भिखारी ठाकुर के नाटकों—विदेसिया, गबर घिचोर आदि की प्रभावोत्पादक प्रस्तुति कर अभूतपूर्व सफलता अर्जित की है। दरअसल, भिखारी ठाकुर के 'विदेसिया' की ऐतिहासिक कामयाबी और जन-जन में पैठ के बाद नृत्य मंडलियों का नाम ही 'विदेसिया' चल पड़ा था। उसी प्रसिद्धि को भुनाने के लिए 'विदेसिया' फिल्म का निर्माण हुआ था और वहाँ भी भिखारी ठाकुर ने शोषण के सिवा कुछ नहीं पाया। कविगुरु रवींद्रनाथ ठाकुर का संगीत 'रवींद्र संगीत' के रूप में ख्यात है, विद्यापति की स्मृति को 'विद्यापति संगीत' के रूप में जाना जाता है, मगर भिखारी ठाकुर की शैली विदेसिया शैली के रूप में अपनाई जा रही है। आज जरूरत है, भिखारी संगीत की मौलिकता को पहचानने, परखने और सहृदयतापूर्ण अपनाने की। यदि भिखारी की नाट्य शैली विदेसिया को हम 'भिखारी ठाकुर शैली' के नामकरण के साथ अपनाएँ तो यह उस लोकनाटककार और विदेसिया शैली के प्रवर्तक के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। काश, हमारे रंगकर्मी इस दिशा में सार्थक पहल करते।

लोकनाटकों के माध्यम से भिखारी ने भोजपुरी क्षेत्र की जड़ता को जड़ से खत्म करने की दिशा में जो अविस्मरणीय भूमिका निभाई, उसके लिए वे सदा याद किए जाते रहेंगे। उन्होंने औरतों को परदे से बाहर आने के लिए प्रेरित किया और खुली आँखों से समाज को देखने की दृष्टि दी। महिलाओं पर होनेवाले अत्याचार, अंधेरगर्दी के विरुद्ध उन्होंने जेहाद छेड़ रखा था। छोटी उम्र में बच्ची की शादी, बूढ़े के साथ युवती का पाणिग्रहण, विधवा के साथ अमानुषिक व्यवहार जैसे ज्वलंत मुद्दों पर ही नहीं, रूढ़ियों, कुरीतियों और अंधविश्वासों पर भी उन्होंने सार्थक ढंग से जमकर चोट की तथा लोकनाटकों की एक नई लीक बनाई। इस महत्त्वपूर्ण अवदान के कारण ही उन्हें 'भोजपुरी का शेक्सपियर', 'अनगढ़ हीरा' और 'भरतमुनि की परंपरा का लोकनाटककार' कहा गया। मगर उनकी यादगार भूमिकाएँ ठीक वैसी ही थीं, जैसी हिंदी पट्टी में भारतेंदु की, अत: उन्हें भारतेंदु कहना सर्वाधिक न्यायसंगत होगा। समालोचक रामनिहाल गुंजन का भी मानना है—''भिखारी ठाकुर को भोजपुरी का शेक्सपियर कहा जाता है, लेकिन मैं समझता हूँ कि भिखारी अपने रूढ़िमुक्त और प्रगतिशील सामाजिक दृष्टिकोण के चलते भारतेंदु के ज्यादा करीब थे, इसलिए उन्हें 'भोजपुरी का भारतेंदु हरिश्चंद्र' कहना ज्यादा उपयुक्त होगा। इसी अर्थ में उनका उचित मूल्यांकन करना संभव होगा।''

कमरा नं. २०४, टेलीफोन भवन, आर ब्लॉक,
पोस्ट बॉक्स ११५, पटना-८००००१ (बिहार)
दूरभाष : ०९४३०६००९५८

बाल-कविता

आई खुशियों वाली रुत

● फहीम अहमद

सुपरिचित बाल-रचनाकार। 'हाथी की बारात' (बाल काव्य संग्रह); 'अनोखी दावत' (बाल कथा संग्रह) एवं पत्र-पत्रिकाओं में ६०० से अधिक रचनाएँ प्रकाशित। १२ से अधिक राष्ट्रीय स्तर के संकलनों में रचनाएँ सम्मिलित। बाल साहित्य का 'सूर पुरस्कार', 'राष्ट्रीय युवा कवि अवार्ड' कई संस्थाओं से बाल-साहित्य सेवा के लिए सम्मानित। संप्रति असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, मुमताज पी.जी. कॉलेज, लखनऊ।

कबूतर

सुबह-सवेरे छत पे आए
मेहमान ये बिना बुलाए,
संगी-साथी को भी लाए।

एक झुंड में साठ कबूतर
छत पे पड़े हुए हैं दाने,
बिखराए मेरी अम्माँ ने
आए सारे साथी खाने।

खाते हैं मिल-बाँट कबूतर
बिन टीचर स्कूल चला है,
नया जमाना नई कला है
प्यारा सा परिवार भला है।

करते सारे ठाठ कबूतर
लाए अपने-अपने बस्ते,
आपस में ही करें नमस्ते
पढ़ें गुटर-गूँ हँसते-हँसते।

रटते अपने पाठ कबूतर
इनको मुर्गा कौन बनाए,
और प्यार से जो समझाए
या गालों पे चपत लगाए,
खाएँ किससे डाँट कबूतर?

रानी बिटिया हँसी बहुत

रानी बिटिया हँसी बहुत।

बरगद की दाढ़ी का झूला
झूल रहा बंदर सब भूला,
गिरा फिसलकर नीचे वह तो
बना अचानक जैसे बुत।
रानी बिटिया हँसी बहुत॥

शहद बाँटते भालू चाचा
खाकर उसे हिरन जब नाचा,
भालू चाचा हँसे जोर से
आई खुशियों वाली रुत।
रानी बिटिया हँसी बहुत।

चूल्हे पर है चढ़ी पतीली
लेकिन उसकी लकड़ी गीली,
बड़ी देर से पकते चावल
बोल रहे खुदबुद-खुदबुद।
रानी बिटिया हँसी बहुत
चाचा लाए गरम जलेबी॥

खाने दौड़ी नटखट बेबी,
टपका रस उसके कपड़ों पर
भूल गई सारी सुधबुध।
रानी बिटिया हँसी बहुत॥

चलो प्रकृति की ओर

हरदम घर में कंप्यूटर पर
करते रहते काम।
चैटिंग, सर्फिंग और टाइपिंग
वही सुबह से शाम।

निकलो घर से खुली हवा में
करो बाग की सैर।
मत खिलवाड़ करो सेहत से
तभी रहेगी खैर।

ज्यादा देर अगर बैठे तो
है केवल नुकसान।
मेरी इन बातों पर भैया
क्यों न देते ध्यान।

होगा सिर में दर्द तुम्हारे
आँखें भी कमजोर।
छोड़ो भी अपना कंप्यूटर
चलो प्रकृति की ओर।

खुली फिजा में मिलती ठंडक
आओ इसके पास।
तुम्हें बुलाते फूल-तितलियाँ
और हरियाली घास।

नन्ही गौरैया

तिनका लिये चोंच में अपनी
सोच रही नन्ही गौरैया।

कहाँ बनाऊँ नीड़ सलोना
दिखे न कोई खाली कोना,
बिना घोंसला रहूँ कहाँ मैं
होगा कैसे जगना-सोना।

सोच रही हूँ छत पे बैठी
जाने क्या होगा अब दैया?

चीं-चीं,चूँ-चूँ सुनोगे कैसे
हँसो नहीं तुम मुझ पे ऐसे,
माँग रही हूँ दाना-पानी
नहीं चाहिए रुपए-पैसे।

बढ़ते मोबाइल-टावर से,
मुझे बचाओ मेरे भैया।

मुझ पर आई आफत भारी
समझो तुम मेरी लाचारी,
आज मुसीबत झेल रही हूँ
मैं तो इस दुनिया से हारी।

थोड़ी दया चाहिए मुझको,
पार लगाओ मेरी नैया।

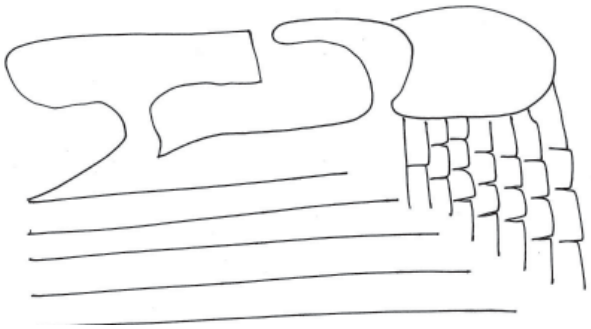

४८५/३०१, जेलर्स बिल्डिंग,
बब्बूवाली गली,
लकड़मंडी, डालीगंज,
लखनऊ-२२६०२० (उ.प्र.)
दूरभाष : ०८८९६३४०८२४

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

'साहित्य अमृत' का मई अंक प्राप्त हुआ। इस बार की लंबी संपादकीय टिप्पणी एक मुकम्मल लेख का आनंद दे गई। लंबी बीमारी के बाद पुन: आप-हम पाठकों के बीच पूर्व की भाँति पूरी ऊर्जा के साथ उपस्थित हुए, इसके लिए बधाई। ईश्वर आपको स्वस्थ रखे, दीर्घायु करे। इस अंक में पद्य रचनाओं से गद्य रचनाएँ ज्यादा अच्छी हैं। 'साहित्य अमृत युवा हिंदी कहानी प्रतियोगिता' के पुरस्कार-समारोह की झलकियाँ आकर्षक हैं। प्रकाशित अन्य रचनाएँ भी सराहनीय हैं। ***—श्रीकांत व्यास, पटना***

'साहित्य अमृत' के जून अंक में श्री राकेश कुमार भ्रमर की 'कर्ज का मूल्य' कहानी पढ़ी। पता ही नहीं चला कि कब मेरी आँखें अनायास ही नम हो गईं। कहानी ने इतना मन को छुआ कि इनसान की भलाई पर और अधिक भरोसा हो चला। आज भी इनसानियत बची हुई है। शायद इसलिए तो भारत 'भारत' है। ***—कमला सिंघवी, नई दिल्ली***

'साहित्य अमृत' का मई अंक प्राप्त हुआ। कविता, कहानी, गजल, लघुकथा, व्यंग्य तथा संस्मरणात्मक यात्रा-वृत्तांत व आलेख—सभी कुछ पढ़े। मुझे संपादकीय सर्वाधिक सामयिक व सटीक लगा। वर्तमान में क्या हो रहा है और देश में क्या चल रहा है, पत्रिका में इन विषयों पर बात होनी चाहिए; और ऐसे ही सामयिक विषय विभिन्न विधाओं में छपने चाहिए। साहित्यिक समारोहों, सम्मानों व गतिविधियों की जानकारी अच्छी लगी।

—गोपीनाथ कालभोर, खंडवा

'साहित्य अमृत' का मई अंक प्राप्त हुआ, पत्रिका पहले की तरह ही गागर में सागर बटोरकर ले आई है। हर अंक साहित्य की कई विधाओं पर कुछ-न-कुछ नई जानकारी प्राप्त करवाता है। इस बार भी आवरण से लेकर अंतिम पृष्ठ तक सबकुछ मन को आनंदित करनेवाला है। संपादकीय में तत्कालीन मुद्दों पर बेबाकी से अपने विचार प्रेषित करते हैं संपादकजी। इसके अतिरिक्त श्री महेश शर्मा का 'विद्यालयों में नैतिक शिक्षा', श्रद्धा पांडेय की कहानी 'एक चिट्ठी ऐसी भी', लघुकथाओं में 'गुड बाय डार्लिंग' चाय और चीनी के वार्त्तालाप के माध्यम से बहुत कुछ ऐसा कह जाती है, जो सोचने को विवश करता है। नई कविताएँ भी प्रश्न और प्रश्नों के उत्तर देती हैं। एक बात और, पत्रिका में कभी-कभार ही गीत और नवगीत प्रकाशित होते हैं। कृपया उन्हें भी नियमित स्थान देने की कृपा करें।

—बी.एल. गौड़, दिल्ली

'साहित्य अमृत' का जून अंक शिप्रा सलिला की 'सिंहस्थ' उत्सव से अमृत विभोर शीतल जल-फुहारों से आत्मतृप्त करता मेरे पाठक मन-उपवन में आनंद का अवर्णननीय सागर उड़ेल गया। संपादकीय की गरिमा को पुन: ऊँचाइयों पर पहुँचाने के लिए प्रबुद्ध त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदीजी ने स्वस्थता प्राप्त कर 'साहित्य अमृत' को अपने बहुमूल्य सकारात्मक दिशा-निर्देशों से सँवारने में अहम भूमिका निभाई, उन्हें शुभकामनाएँ प्रेषित हैं। आलेख, कहानी, कविताओं से सुसज्जित अंक में स्व. गोपालराम गहमरी की प्रतिस्मृति 'आँखों देखी घटना' के रोमांचक वर्णन से लेकर श्री रामदरश मिश्र, श्री राजशेखर व्यास और राहुलजी के आलेख शुचित और सरल भाषा में पठनीय रहे। लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला द्वारा अनूदित कहानी 'पागल' हृदय की गहराइयों को छू गई। श्री मनोहर पुरी का व्यंग्य मजा बाँध गया।

—रजनी सिंह, डिबाई (उ.प्र.)

'साहित्य अमृत' का मई अंक लाजवाब लगा। श्री त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी का संपादकीय बहुत दिनों बाद पढ़ने को मिला, ईश्वर से प्रार्थना है कि उनका स्वास्थ्य ठीक रखे। पाठकों को सटीक संपादकीय मिलते रहना एक नियामत है। प्रतिस्मृति में आर.के. नारायण की रचना 'बीवी की छुट्टियाँ' उम्दा लगी। शशिभूषण सिंहल की कहानी 'उधार का सुख' भी अच्छी लगी। 'सौराष्ट्र की तीर्थ-परिक्रमा' भी रोमांचक तथा जानकारीपूर्ण लगी। लघुकथाएँ अच्छी लगीं। कुल मिलाकर यह अंक पठनीय एवं ज्ञानवर्धक लगा तथा ग्रीष्म ऋतु में पावस की फुहार सा लगा।

—विजयपाल सेहलंगिया, महेंद्रगढ़ (हरि.)

'साहित्य अमृत' के संपादक श्री चतुर्वेदीजी स्वस्थ हो गए और उनके द्वारा संपादकीय में विस्तार से देश की राजनीति व साहित्य की गतिविधियों के समाचार मिलने शुरू हो गए, अच्छा लगा। मई अंक में 'बीवी की छुट्टियाँ', 'फैसला', 'एक चिट्ठी ऐसी भी' और 'उधार का सुख' आदि कहानियाँ अच्छी लगीं। छंदा बैनर्जी के 'पाश्चात्य समीक्षकों की दृष्टि में गीतांजलि' लेख में बहुत सी नई जानकारियाँ मिलीं। व्यंग्य कथा में श्री डी.एन. श्रीनाथ की रचना 'भूतपूर्व मंत्री से' बहुत अच्छी लगी। ऐसे ही छोटे-छोटे व्यंग्य पढ़ने में अच्छे लगते हैं। 'यमपुरी में हडकंप' भी व्यंग्य अच्छा लगा।

जून अंक की प्रतिस्मृति में गोपालराम गहमरी की 'आँखों देखी घटना' पढ़कर अच्छा लगा। श्री रामदरश मिश्र का डायरी-अंश 'अखबार में दिखनेवाला पूरा सच नहीं होता है' पढ़ा। 'कथा साहित्य में नारी' आलेख में श्री राहुल ने नारी की समाज में क्या स्थिति है व कहानियों में उन्हें साहित्यकारों ने किन-किन परिस्थितियों में दिखाया है, सब विस्तार से दिया है। श्री रमेशचंद्र शाह का लेख 'श्रीलाल शुक्ल पत्रों में' पढ़ा। कहानियाँ 'पापा कब लौटेंगे', 'कर्ज का मूल्य' अच्छी लगी।

—विनोद शंकर गुप्त, हिसार

'साहित्य अमृत' के जून अंक में वरिष्ठ साहित्यकार रामदरश मिश्र का डायरी अंश पठनीय, प्रेरणाप्रद है। प्रखर संपादक सूर्यनारायण व्यास पर संस्मरण काफी रोचक, ज्ञानवर्धक एवं स्थायी महत्त्व का है। 'पुश्ते में मकान नंबर' नीरजा माधव की कहानी अपने कथ्य-कथन-क्राफ्ट में कसी हुई है। इसी दृष्टि से श्रीलाल शुक्ल के पत्रों में लिखित मंतव्यों को प्रस्तुत करके रमेशचंद्र शाह ने पत्र-साहित्य में एक नई कड़ी जोड़ दी है। चर्चित कथाशिल्पी मंजु मधुकर की कहानी 'चौपाल' में यातनाबोध नारी-विमर्श के एक पक्ष के रूप में अभिचित्रित हुआ है। बदरीनाथ कपूर का लेख 'हिंदी क्रियाओं का ढाँचा कालों या लकारों पर नहीं, रूप-रचना पर आधारित है' नवीन व्याकरण विधान पर प्रकाश डालता है। राकेश भ्रमर की कहानी 'कर्ज का मूल्य' में समकालीन जन-जीवन के तमाम दबाव, विवशताएँ, परिवेश स्वयमेव उभरे हैं। मनोहर पुरी की व्यंग्यपरक रचना में नश्तरी चुभन है। 'अज्ञेय काव्य में पर्यावरण' में विदुषी लेखिका ने काव्यगत नए पक्ष की प्रभावी प्रस्तुति करके लेख को काफी रुचिकर, सामयिक नवोन्मेषपूर्ण बना दिया है। अन्य रचनाएँ भी पठनीय तथा गुण वैशिष्ट्य संपन्न हैं। शाश्वत मूल्य-महत्त्व के दस्तावेजी श्रेष्ठ संपादन के लिए बधाई। ***—डॉ. राहुल, नई दिल्ली***

वर्ग पहेली (१३०)

अगस्त २००५ अंक से हमने **'वर्ग पहेली'** प्रारंभ की, जिसे सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं ज्ञान–विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३१ जुलाई, २०१६ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें दो सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम–पते सितंबर २०१६ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर **'वर्ग पहेली', साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (१२८) का शुद्ध हल

१ब	द	२ह	वा	३स	■	४द	५म	६क	
द	■	ठ	■	७र	८स	ही	न	ता	
९च	क्षु	■	१०च	क	मा	■	११मो	र	
ल	■	१२द	■	१३ना	प	१४सं	द	■	
१५नी	१६हा	रि	१७का	■	१८न	क	क	१९टा	
■	२०नि	या	म	२१त	■	रा	■	ल	
२२आ	का	■	२३का	ज	ल	■	२४हा	ट	
२५द	र	२६गु	ज	र	■	२७छ	■	ला	
२८म	क	र	■	२९बा	हु	ल	ग्री	व	

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **श्री विजयपाल सेहलंगिया**
सुपुत्र श्री बाल मुकुंद
गाँव + पो.–सेहलंग
जिला–महेंद्रगढ़ (हरियाणा)

२. **श्री रामकिशन पंवार**
गाँव–बीबीपुर, पो.–शेरडात भादरा
जिला–हनुमानगढ़–३३५५०३
(राजस्थान)

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई !

वर्ग-पहेली १२८ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं—सर्वश्री फकीरचंद ढुल (कैथल), ब्रह्मानंद 'खिच्ची' (महेंद्रगढ़), सुभाष शर्मा, भगवानदास गुप्ता, विनय कौशिक, राकेश गिरि (दिल्ली), मोहन उपाध्याय (अजमेर), कृपाशंकर शर्मा 'अचूक' (जयपुर), संजय पारीक (बीकानेर), शिवशरण दुबे (कटनी), मंगलसिंह (उज्जैन), विवेक उप्रेती (हरिद्वार), हेमराज 'चंड' (रुड़की)।

बाएँ से दाएँ—

१. बाधा (४)
४. बीवी-समेत (४)
७. पहिए के समान घूमना (३,२)
९. पाठ (३)
११. वध करनेवाला (३)
१३. सौ खरब की संख्या (२)
१४. सौ का समूह (३)
१६. अचानक (४)
१७. रसिक होने का भाव (४)
१९. पक्षाघात (३)
२१. धूल (२)
२२. गिनती करनेवाला (३)
२४. पुरस्कार (३)
२५. शपथपत्र (५)
२८. नशे में मस्त (४)
२९. आग बुझाने का पंप (४)

ऊपर से नीचे—

१. तारीफ के काबिल (५)
२. रुचिकारक (३)
३. भय के कारण हृदयगति तीव्र होने का भाव (२)
४. मित्र (२)
५. शरण (३)
६. कक्ष (३)
८. प्रजा (३)
१०. ताकत देनेवाला (५)
१२. छोड़ना (२,३)
१४. स्वरूप (३)
१५. टोंटीदार लोटा (३)
१८. आगरा का विश्वप्रसिद्ध मकबरा (५)
२०. चावल की लेई, जो कड़ापन लाने के लिए कपड़ों पर लगाई जाती है (३)
२२. परिणाम (३)
२३. चाय के सामान एक पेय (३)
२४. शिया संप्रदाय के अगुआ (३)
२६. दुलारा लड़का (२)
२७. ध्वनि (२)

वर्ग पहेली (१२९) का हल अगले अंक में।

वर्ग पहेली (१३०)

१		२	३	■	४	५		६
	■	७		८			■	
९	१०		■		■	११	१२	
१३		■	१४		१५	■		■
१६				■	१७			१८
■		■	१९	२०		■	२१	
२२		२३	■		■	२४		
	■	२५	२६		२७		■	
२८				■	२९			

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

'सुपर ३० आनंद' कृति लोकार्पित

६ जून को पटना के रवींद्र भवन, बीरचंद पटेल पथ में प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित विश्वप्रसिद्ध सामाजिक संस्था सुपर ३० के संस्थापक श्री आनंद कुमार के संघर्ष की कहानी 'सुपर ३० आनंद' का लोकार्पण बिहार के मुख्यमंत्री माननीय श्री नीतीश कुमार के करकमलों से संपन्न हुआ। पुस्तक सर्वश्री बीजू मैथ्यू, रॉबर्ट प्रिंस तथा अरुण कुमार द्वारा लिखित है। अंग्रेजी में भी यह पुस्तक पेंगुइन द्वारा 'सुपर ३० आनंद कुमार' नाम से प्रकाशित हुई है। यह पुस्तक श्री आनंद कुमार द्वारा निर्धन व विभक्त वर्ग के मेधावी छात्रों को नि:शुल्क शिक्षा देकर उन्हें आईआईटी में सफल होने की प्रेरक गाथा है।

८ जून को लखनऊ में भी इस पुस्तक का लोकार्पण किया गया। १० जून को इस पुस्तक की प्रति राष्ट्रपति मान. श्री प्रणब मुखर्जी को भेंट की गई। मान. राष्ट्रपतिजी ने श्री आनंद कुमार को शुभकामनाएँ देते हुए कहा कि वे सचमुच एक आदर्श शिक्षक हैं और अन्यों के लिए प्रेरणा का स्रोत हैं। ☐

झारखंड पर ५४ पुस्तकें लोकार्पित

७ जून को राँची के कॉन्फ्रेंस हॉल, प्रोजेक्ट भवन, धुर्वा में प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित झारखंड से संबंधित विविध विषयी ५४ पुस्तकों का लोकार्पण झारखंड के मुख्यमंत्री माननीय श्री रघुवर दास के करकमलों से संपन्न हुआ। मुख्य अतिथि झारखंड की समाज कल्याण, महिला एवं बाल विकास मंत्री माननीय डॉ. लुइस मरांडी एवं झारखंड की मानव संसाधन विकास मंत्री माननीय श्रीमती नीरा यादव थीं। श्री रघुवर दास ने कहा कि ये पुस्तकें झारखंड की कला-संस्कृति-साहित्य का संवर्धन करनेवाली हैं और इनसे आम जन को प्रदेश की समृद्ध संस्कृति का परिचय मिलेगा। ☐

'स्वच्छता संस्कार' व 'स्वच्छ भारत' कृतियाँ लोकार्पित

१५ जून को नई दिल्ली में गोवा की राज्यपाल माननीय श्रीमती मृदुला सिन्हा द्वारा प्रणीत प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित स्वच्छ भारत अभियान को विस्तार देनेवाली पुस्तकों 'स्वच्छता संस्कार' एवं 'स्वच्छ भारत' (अंग्रेजी में, सह संपादक : डॉ. रामकृपाल सिन्हा) का लोकार्पण केंद्रीय शहरी विकास, आवास और शहरी गरीबी उपशमन तथा संसदीय मामले मंत्री माननीय श्री एम. वेंकैया नायुडु के करकमलों से संपन्न हुआ। उन्होंने कहा कि ये पुस्तकें स्वच्छ भारत अभियान के प्रचार-प्रसार में प्रभावी भूमिका निभाएँगी तथा यह अभियान एक जनांदोलन बनकर स्वच्छ, स्वस्थ भारत के स्वप्न को साकार करेगा। ये पुस्तक इस हेतु एक सशक्त माध्यम बनेंगी। अध्यक्षता कर रहे दिल्ली के उपराज्यपाल माननीय श्री नजीब जंग ने कहा कि ये पुस्तकें इस अभियान को घर-घर तक पहुँचाने में और सबको इससे जुड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएँगी। श्रीमती मृदुला सिन्हा ने कहा कि स्वच्छता एक संस्कार है, जो बचपन से ही व्यक्ति के जीवन-व्यवहार में सहज अभ्यास बन जाते हैं। भारत में स्वच्छता अभियान अवश्य सफल होगा। इस पुस्तक में स्वच्छता के भारतीय इतिहास और वर्तमान के साथ व्यक्तिगत व्यवहार में शामिल करवाने के उपाय संकलित किए गए हैं। ☐

'पाकिस्तान वॉच' लोकार्पित

१३ जून को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह-सरकार्यवाह मान. श्री दत्तात्रेय होसबोले ने भारत नीति प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित 'पाकिस्तान वॉच' नामक त्रैमासिक का लोकार्पण किया। यह पत्रिका भारत के प्रति पाकिस्तान के दृष्टिकोण, उसकी परमाणु नीतियाँ, वहाँ के शासन में सैन्य भूमिका आदि अनेक सामरिक-नीतिगत विषयों पर विमर्श करने का प्रभावी माध्यम बनेगी। दत्ताजी ने कहा कि पाकिस्तान निरंतर भारत-विरोधी गतिविधियाँ संचालित करता है, और उसका अस्तित्व घृणा और हिंसा पर टिका है। इस अवसर पर संघ के अखिल भारतीय प्रचार प्रमुख मान. डॉ. मनमोहन वैद्य, रक्षा-विशेषज्ञ मेजर जनरल (से.नि.) जी.डी. बख्शी, पूर्व राजनयिक श्री विवेक काटजू तथा 'न्यूज नेशन' चैनल के वरिष्ठ कार्यकारी अधिकारी श्री अजय कुमार ने चिंतनपूर्ण उद्‌बोधन दिए। कार्यक्रम के प्रारंभ में भारत नीति प्रतिष्ठान के मानद निदेशक डॉ. राकेश सिन्हा ने स्वागत वक्तव्य दिया और प्रतिष्ठान की गतिविधियों का परिचय दिया। ☐

जो भाया सो गाया' कृति लोकार्पित

१४ मई को नई दिल्ली के हिंदी भवन में राजधानी की प्रमुख साहित्यिक संस्था 'अक्षरम्' द्वारा डॉ. कुँअर बेचैन की अध्यक्षता में डॉ. पुष्पा राही के गीत-संग्रह 'जो भाया सो गाया' का लोकार्पण किया गया, जिसमें सर्वश्री मुरारीलाल त्यागी, शेरजंग गर्ग, गंगाप्रसाद विमल, लक्ष्मीशंकर वाजपेयी, बी.एल. गौड़, मधु गुप्ता शास्त्री, नरेश शांडिल्य, बालस्वरूप राही, गोविंद व्यास, प्रेम भाटिया, प्रदीप जैन, संजय प्रभाकर ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। संचालन श्रीमती अलका सिन्हा ने किया। ☐

लोकार्पण कार्यक्रम संपन्न

५ जून को साहित्यिक संस्था 'अक्षरा' एवं 'हिंदी साहित्य संगम' के संयुक्त तत्त्वावधान में श्री योगेंद्र वर्मा 'व्योम' के समकालीन गीत-संग्रह 'रिश्ते बने रहें' का लोकार्पण-समारोह मुरादाबाद में संपन्न हुआ। इस अवसर पर एक काव्य-गोष्ठी का भी आयोजन किया गया। श्री विरेंद्र सिंह 'बृजवासी' ने सरस्वती वंदना प्रस्तुत की। अध्यक्षता श्री माहेश्वर तिवारी ने की, मुख्य अतिथि श्री बृजभूषण सिंह गौतम 'अनुराग' थे तथा विशिष्ट अतिथि डॉ. अजय 'अनुपम' एवं श्री ओंकार सिंह थे। सर्वश्री अशोक विश्नोई, कृष्ण कुमार 'नाज' एवं अंकित गुप्ता 'अंक' ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री विवेक 'निर्मल' ने तथा आभार संस्था के अध्यक्ष श्री रामदत्त द्विवेदी ने व्यक्त किया। ☐

दो कृतियाँ लोकार्पित

विगत दिनों आसरा मुक्ताँगन और सार्थक नव्या के संयुक्त तत्त्वावधान में श्री रमेश यादव की दो कृतियों 'लोकरंग' एवं 'शाहिरीनामा' का लोकार्पण श्री विश्वनाथ सचदेव की अध्यक्षता में किया गया, मुख्य अतिथि श्री

रामदास फुटाणे थे। इस अवसर पर सुश्री सुधा अरोड़ा, मलकराज पंचभाई, वंदना शर्मा, वसुधा सहस्रबुद्धे, मोनिका ठक्कर, निर्मला डोशी ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन सुश्री रेखा बब्बल ने किया तथा आभार श्री रवि यादव ने व्यक्त किया। लोकार्पण के पश्चात् हिंदी-मराठी के प्रसिद्ध कलाकारों द्वारा 'महाराष्ट्र की लोक परंपरा' नाम से रंगारंग कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया, जिसका संचालन श्री रमेश यादव ने किया। □

विमोचन एवं कवि सम्मेलन संपन्न

२२ मई को खरसिया में वीर सावरकर सामुदायिक भवन में श्री मनमोहन सिंह ठाकुर द्वारा रचित काव्य संकलन 'तरुछाया' का विमोचन डॉ. राम विजय शर्मा के मुख्य आतिथ्य एवं श्री अर्जुन सिंह ठाकुर के विशिष्ट आतिथ्य में सर्वश्री हरिसिंह भुवाल, दिलीप गुप्ता, संजय बहिदार, रुक्मणी सिंह राजपूत द्वारा किया गया। द्वितीय सत्र में सर्वश्री संजय बहिदार, दिलीप गुप्ता, रुक्मणी सिंह राजपूत, उग्रसेन स्वर्णकार, मनिहार सिंह निराला, सत्यनारायण बरेठ, डिग्रीलाल जगत, गुलाब सिंह कँवर, खेलन प्रसाद कैवर्त्य, जे.आर. मनहरे, किरण शर्मा, लखन लाल राठौर, अर्जुन सिंह ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री गुलाब सिंह कँवर ने किया। □

जुगलकिशोर जैथलियाजी की स्मृतिसभा आयोजित

५ जून को कोलकाता में महानगर की १५० विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, शैक्षणिक, राजनीतिक एवं आध्यात्मिक संस्थाओं की ओर से महाजाति सदन में कर्मयोगी श्री जुगलकिशोर जैथलिया की स्मृति में सार्वजनिक श्रद्धांजलि सभा आयोजित की गई, जिसमें सांसद श्री तरुण विजय, त्रिपुरा के राज्यपाल श्री तथागत राय, गीतकार डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र, भाजपा के राष्ट्रीय सचिव श्री राहुल सिन्हा, सर्वश्री सज्जन तुल्स्यान, सरदारमलजी काँकरिया, वसुमति डागा, शंकर बक्स सिंह, नंदलाल शाह, सज्जन भजनका, शार्दूल सिंह जैन, विमल लाठ, विवेक गुप्ता ने अपने विचार रखे। संचालन किया कुमारसभा के अध्यक्ष डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी ने एवं शोक प्रस्ताव पढ़ा मंत्री श्री महावीर बजाज ने। साहित्य मंत्री श्रीमती दुर्गा व्यास ने विशिष्ट व्यक्तियों के शोक-संदेशों का वाचन किया। सर्वश्री लक्ष्मीकांत तिवारी, जयप्रकाश सिंह, गोविंदराम अग्रवाल, विट्ठलदास मूंधड़ा, महावीर प्रसाद मणकसिया एवं घनश्यामदास बेरीवाल ने भी श्रद्धासुमन अर्पित किए। □

हास्य-व्यंग्योत्सव का आयोजन

व्यंग्य ऋषि शरद जोशी के ८५वें जन्मदिवस के अवसर पर मुंबई में बैंक ऑफ बड़ौदा, कॉर्पोरेट कार्यालय एवं शरद जोशी मित्र मंडल के संयुक्त तत्त्वावधान में हास्य-व्यंग्य उत्सव का आयोजन किया गया। अध्यक्षता बैंक के कार्यपालक निदेशक श्री मयंक के. मेहता ने की। महाप्रबंधक श्री रवि कुमार अरोरा ने अतिथियों एवं प्रतिभागियों का स्वागत किया। इस कार्यक्रम में प्रख्यात व्यंग्यकार सर्वश्री सुरेंद्र शर्मा, ज्ञान चतुर्वेदी, सूर्यबाला, नेहा शरद, कैलाश सेंगर, दिनेश काबरा, संजीव निगम, अनंत श्रीमाली जैसे प्रसिद्ध रचनाकारों ने विनोदपूर्ण चर्चा एवं प्रस्तुति देकर हास्य-व्यंग्य की विधा को जीवंतता प्रदान की। डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी ने 'व्यंग्य, वर्तमान और शरद जोशी' विषय पर अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर शरद जोशी की चर्चित व्यंग्य रचनाओं का पाठ भी किया गया। संचालन एवं संयोजन बैंक ऑफ बड़ौदा के उप महाप्रबंधक (राजभाषा) डॉ. जवाहर कर्नावट ने किया। आभार प्रदर्शन मुख्य प्रबंधक श्री पुनीत कुमार मिश्र ने किया। □

बुंदेली समारोह-२०१६ संपन्न

९ जून को भोपाल में अखिल भारतीय बुंदेलखंड साहित्य एवं संस्कृति परिषद् के तत्त्वावधान में मध्य देश के स्वातंत्र्य प्रणेता छत्रसाल की ३६७वीं जयंती पर बुंदेली समारोह-२०१६ का उद्घाटन राजभवन में राज्यपाल श्री रामनरेश यादव ने किया। मुख्य अतिथि पूर्व केंद्रीय मंत्री श्री प्रदीप जैन आदित्य और विशिष्ट अतिथि बुंदेलखंड विकास प्राधिकरण के अध्यक्ष डॉ. रामकृष्ण कुसमरिया थे। इस अवसर पर सुप्रसिद्ध कवि श्री कैलाश मड़बैया के २४वें ग्रंथ 'सात समंदर पार' का लोकार्पण श्री रामनरेश यादव ने किया और कृति परिचय विदुषी डॉ. कामिनी ने दिया। राज्यपाल ने बुंदेलखंड परिषद् के राष्ट्रीय और प्रादेशिक पुरस्कारों से साहित्यकारों को अलंकृत भी किया। डॉ. कामिनी को वरिष्ठ साहित्यकार श्री कैलाश मड़बैया पर हुए शोध प्रबंध प्रकाशन के लिए दस हजार रुपयों का, अभिनंदन गोयल को 'पीर घनेरी' कृति पर पाँच हजार रुपयों का प्रकाशन पुरस्कार दिया गया। डॉ. शिरोमणि सिंह पथ भिंड को बुंदेली कहानी पुस्तक 'अर्गनी' पर जौहरी पुरस्कार प्रदान किया गया। श्री लक्ष्मी शर्मा की बुंदेली कृति 'मोय मायकौ बिसरत नइंयाँ' का लोकार्पण भी राज्यपाल ने किया। □

१४वाँ साहित्यिक पत्रकारिता दिवस आयोजित

१ जून को १४वें 'साहित्यिक पत्रकारिता दिवस समारोह' का आयोजन नई दिल्ली के गांधी शांति प्रतिष्ठान सभागार में आयोजित किया गया। अ.भा. साहित्यिक पत्रिका संपादक संघ एवं यू.एस.एम. पत्रिका के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित इस समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में वयोवृद्ध गांधीवादी चिंतक व पूर्व राज्यपाल डॉ. भीष्मनारायण सिंह की गरिमामयी उपस्थिति के साथ ही सर्वश्री सरोजिनी प्रीतम, महेश भार्गव, प्रेम जनमेजय, नारायण कुमार, आर.के. पाल, राजेंद्र मिलन, देवेंद्र शुक्ल ने मंच को सुशोभित किया। अनेक संपादकों ने 'साहित्यिक पत्रकारिता का स्वर्णिम अतीत, इसका वर्तमान और भविष्य' विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किए। गोष्ठी के पहले सत्र का संचालन समालोचक डॉ. हरिसिंह पाल ने व विषय प्रवर्तन श्री उमाशंकर मिश्र ने किया। दूसरे सत्र में यू.एस.एम. पत्रिका के ३२ वर्ष की यात्रा पर सर्वश्री बाबा कानपुरी, कैप्टन ब्रह्मानंद तिवारी, एन.एल. गोसाईं और डॉ. हरिसिंह पाल ने अपने विचार व्यक्त किए। डॉ. भावना शुक्ला ने अपने आलेख का वाचन किया। कार्यक्रम का सफल संचालन डॉ. हरिसिंह पाल व उमाशंकर मिश्र ने किया। श्री अशोक श्रीवास्तव ने आभार व्यक्त किया। □

स्मृति व्याख्यान आयोजित

२९ मई को कोलकाता के स्थानीय महाजाति सदन एनेक्सी में श्री असीम कुमार मित्र की अध्यक्षता में आयोजित आचार्य विष्णुकांत शास्त्री

स्मृति व्याख्यान के ग्याहरवें आयोजन में 'मीडिया और राष्ट्रवाद' विषय पर सर्वश्री हितेश शंकर, प्रेमशंकर त्रिपाठी, वसुधा दूगड़ ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री योगेशराज उपाध्याय ने किया तथा धन्यवाद श्रीमती दुर्गा व्यास ने ज्ञापित किया। समारोह के अंत में वरिष्ठ कवि श्री अगम शर्मा के आकस्मिक निधन पर मौन धारण कर श्रद्धांजलि दी गई। □

काव्य-संध्या संपन्न

विगत दिनों ग्वालियर के सनातन धर्म मंदिर में आयोजित साहित्य साधना संसद् की काव्य-संध्या का आयोजन डॉ. कृष्णमुरारी की अध्यक्षता में किया गया, जिसमें मुख्य अतिथि श्री बाबूराम माहौर 'प्रयासी' थे। सर्वश्री भारतेंदु शुक्ल, बी.एल. शर्मा, चिरंजीलाल भावुक, कमलेश बाबू मंगल, नरेंद्र कुमार शर्मा व अशोक राजपूत ने रचना पाठ किया। संचालन श्री अशोक राजपूत ने किया तथा आभार श्री शैवाल सत्यार्थी ने व्यक्त किया। □

विराट् कवि सम्मेलन संपन्न

विगत दिनों नई दिल्ली के हिंदी साहित्य सम्मेलन एवं फेडरेशन ऑफ ग्रेटर कैलाश पार्ट-२ के संयुक्त तत्त्वावधान में श्री महेश चंद्र शर्मा की अध्यक्षता में विराट् कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें सर्वश्री कीर्ति काले, प्रवीण शुक्ल, रमेश वासुरी, सुरेश उपाध्याय, प्रियंका 'ओम नंदिनी', सुनहरी लाल वर्मा 'तुरंत' ने काव्य पाठ किया। इस अवसर पर प्रो. रश्मि शर्मा की पुस्तक 'अक्स की परछाइयाँ' का लोकार्पण मंचस्थ अतिथियों द्वारा किया गया। संचालन श्रीमती इंदिरा मोहन ने किया। □

जयंती समारोह संपन्न

विगत दिनों आगरा के दयालबाग में देवनागरी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था के तत्त्वावधान में लोकमाता मातेश्वरी अहिल्याबाई होल्कर की २९१वीं जयंती के अवसर पर डॉ. राजेंद्र की अध्यक्षता में काव्यांजलि एवं सम्मान समारोह आयोजित किया गया। मुख्य अतिथि डॉ. सुशील गुरु को 'सरस्वती पुत्र' की उपाधि से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री सुशील सरित, अशोक बसंल, यशोयश, डिंपल शर्मा, दीक्षित मयंक, रति शर्मा, शुधांशु यादव शाहिल, ब्रजकिशोर शर्मा, बंटी भाई, स्वामीजी, सुरेंद्र वर्मा सजग, सत्या सक्सेना, ओम मिलन ने काव्यपाठ किया तथा अहिल्या चालीसा का विमोचन भी किया। संचालन डॉ. यशोयश ने किया तथा आभार डॉ. सत्या सक्सेना ने व्यक्त किया। □

त्रि-दिवसीय कार्यक्रम संपन्न

२७-२९ मई को शिलांग के राजस्थान विश्राम भवन में पूर्वोत्तर हिंदी अकादमी द्वारा त्रि-दिवसीय राष्ट्रीय हिंदी विकास सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसके उद्घाटन सत्र में मुख्य अतिथि श्री शंकरलाल गोयनका एवं विशिष्ट अतिथि श्री पवन बावरी थे। इस अवसर पर शुभ तारिका के 'डॉ. महाराज कृष्ण जैन विशेषांक', वैश्य परिवार पत्रिका, साहित्य समीर दस्तक मासिक, नव-निकष मासिक, गीत गुजन मासिक, अनंतिम मासिक, रण काफले के कहानी-संग्रह 'नानी की कहानियाँ', पठान रहीम खान की दो पुस्तकों 'भीष्म साहनी का कहानी : साहित्य-युग संदर्भ' और 'भीष्म साहनी का कहानी : साहित्य कथ्य एवं शिल्प', विशाल के.सी. की पुस्तक 'शहीद', अरुणा अग्रवाल की पुस्तक 'तकाजा है वक्त का' और कन्हैया लाल गुप्त सलिल की दो पुस्तकों 'चिंतन की चिनगारियाँ' और 'गौशाला' का लोकार्पण मंचस्थ अतिथियों द्वारा किया गया। सत्र का संचालन डॉ. अरुणा कुमार उपाध्याय ने किया। इस सत्र के दौरान श्री बिमल बजाज को पूर्वोत्तर भारत में हिंदी के विकास के लिए सराहनीय कार्य हेतु राजकुमार जैन राजन फाउंडेशन द्वारा अंबालाल हींगड़ स्मृति सम्मान से सम्मानित किया गया। धन्यवाद डॉ. अकेलाभाई ने ज्ञापित किया।

इसके बाद डॉ. अकेलाभाई की अध्यक्षता में ५ सत्रीय काव्य संध्या का आयोजन किया गया, जिसमें १५ राज्यों के कुल ४९ कवियों ने कविता पाठ किया। संचालन सर्वश्री श्रुति सिन्हा, सुरेंद्र गुप्त सीकर, कीर्ति श्रीवास्तव, जान मोहम्मद, राजकुमार जैन राजन और अकेलाभाई ने किया। इसके बाद डॉ. लक्ष्मीकांत पांडेय की अध्यक्षता में 'पूर्वोत्तर भारत में राष्ट्रीय भाषाओं और नागरी लिपि का प्रोन्नयन' विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की गई, जिसमें अनेक विद्वानों ने अपने आलेख प्रस्तुत किए। सर्वश्री जे.पी. शर्मा, अमी आधार निडर, देश सुब्बा, पुरुषोत्तम दास चोखानी मुख्य अतिथि थे। अनेक लेखकों को उनके लेखन और साहित्यधर्मिता के लिए सम्मानित किया गया। अंत में कवियों द्वारा गीत प्रस्तुत किए गए। □

सम्मान समारोह एवं गोष्ठी संपन्न

२९ मई को भोपाल में मध्य प्रदेश लेखक संघ के तत्त्वावधान में डॉ. रामवल्लभ आचार्य की अध्यक्षता एवं श्री बटुक चतुर्वेदी के मुख्य आतिथ्य में श्री अखिलेश प्रजापति को 'रामपूजन मलिक स्मृति नवोदित गीतकार सम्मान' से सम्मानित किया गया। सम्मान-स्वरूप उन्हें सम्मान निधि, प्रशस्ति-पत्र, स्मृति-चिह्न तथा शॉल-श्रीफल भेंट किए गए। द्वितीय सत्र में श्री भगवती प्रसाद 'कुलश्रेष्ठ' के विशिष्ट आतिथ्य में प्रादेशिक गोष्ठी आयोजित की गई, जिसमें सर्वश्री अखिलेश प्रजापति, शरद गुप्ता 'सार्थक', सुनील शर्मा चीनी, सुरेश माहेश्वरी 'शिवम्', कपिल दुबे, राजेश चौहान 'राज', शोभाराम दांगी 'इंदु', गोकुल प्रसाद गौर, वीरेंद्र निर्झर, राजेश सुमन, मनोज जैन 'मधुर' ने अपनी रचना प्रस्तुत की। संचालन श्री ऋषि श्रृंगारी ने किया। □

डॉ. संपत सिंह सम्मानित

२० मई को जोधपुर में साहित्यिक संस्था 'खुशदिलाने-जोधपुर' द्वारा चंद्रा इन होटल में श्री राधे मोहन राय को उनके हिंदी, उर्दू और अंग्रेजी में कृतित्व के लिए 'डॉ. संपत सिंह भंडावत स्मृति साहित्य सम्मान' से सम्मानित किया गया। सम्मान-स्वरूप उन्हें श्रीफल, स्मृति-चिह्न, प्रशस्ति-पत्र तथा ग्यारह हजार रुपए की राशि भेंट की गई। □

पुरस्कार समारोह संपन्न

१९ मई को लंदन के हाउस ऑफ लॉर्ड्स के सभागार में श्री जिया शकेब की अध्यक्षता में सर्वश्री बैरोनेस फ्लैदर, सी.बी. पटेल तथा तान्या वेल्स की उपस्थिति में डॉ. मधु चतुर्वेदी को 'वार्षिक-वातायन काव्य

पुरस्कार', श्री योगेश पटेल को अंग्रेजी, गुजराती और हिंदी साहित्य में उनके असाधारण योगदान के माध्यम से कविता को बढ़ावा देने एवं विश्व साहित्य को समृद्ध बनाने हेतु 'अंतरराष्ट्रीय कविता साधना सम्मान' द्वारा सम्मानित किया गया। डॉ. कुँअर बेचैन को 'वातायन लाइफटाइम अचीवमेंट अवॉर्ड' से सम्मानित किया गया। श्री बालूजी श्रीवास्तव व सुश्री दीप्ति संगानी ने अपने विचार व्यक्त किए। धन्यवाद सुश्री बैरोनेस फ्लैदर ने किया। ☐

श्री कपिल आर्य सम्मानित

विगत दिनों कोलकाता में भारतीय भाषा परिषद् के सभा कक्ष में राष्ट्रीय बिहारी समाज एवं हिंदी निगरानी संस्थान द्वारा आयोजित 'मित्र संवाद' में डॉ. श्रीनिवास शर्मा की अध्यक्षता में श्री कपिल आर्य को डॉ. शंभुनाथ द्वारा शॉल और स्मृति-चिह्न भेंट कर सम्मानित किया गया। संचालन डॉ. आशुतोष ने किया। ☐

सम्मान समारोह संपन्न

विगत दिनों खरसिया में अहिंदी प्रदेश सुदूर दक्षिणी राज्य कर्नाटक से २०१६ में प्रकाशित द्वितीय राष्ट्रीय काव्य संकलन 'अपनी कविता-सबकी व्यथा' में नवसृजन कला एवं साहित्य मंच के ६ कवियों सर्वश्री गुलाब सिंह कँवर 'गुलाब', डिग्रीलाल जगत निर्भीक, खेलन कैवर्त्य 'अभिनव', जयंतु राम मनहरे, लखनलाल राठौर, मोतीलाल राठौर को 'ज्ञानोदय साहित्य सेवा सम्मान-२०१६' से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर श्री गुलाब सिंह कँवर 'गुलाब' एवं श्री डिग्रीलाल जगत को जी.वी. प्रकाशन जालंधर पंजाब द्वारा 'आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री स्मृति सम्मान-२०१६', राज रचना कला एवं साहित्य समिति गुढ़ियारी रायपुर द्वारा 'रचना साहित्य सम्मान-२०१६' तथा समाचार-पत्र समूह-पत्रिका द्वारा शिक्षा, साहित्य, समाज-सेवा के लिए 'गर्व सम्मान-२०१६' से सम्मानित किया गया। ☐

प्रविष्टियाँ आमंत्रित

भाऊराव देवरस सेवा न्यास, लखनऊ द्वारा 'पं. प्रताप नारायण मिश्र युवा साहित्यकार सम्मान' हेतु युवा साहित्यकारों से प्रविष्टियाँ आमंत्रित हैं। रचनाकार की आयु १ अगस्त, २०१६ को ४० वर्ष से अधिक न हो। पुरस्कृत होनेवाली रचनाओं की विधा हिंदी में लिखित काव्य, कथा-साहित्य, बाल-साहित्य, पत्रकारिता एवं संस्कृत भाषा में लिखित ग्रंथ की समस्त विधाएँ हैं। चयनित प्रत्येक विधा में एक साहित्यकार को पुरस्कारस्वरूप सरस्वती प्रतिमा, अंग-वस्त्र एवं दस हजार रुपए की धनराशि प्रदान की जाएगी। कृपया साहित्यकार अपनी प्रकाशित मौलिक पुस्तक तथा आयु प्रमाण-पत्र के साथ २० अगस्त, २०१६ तक भाऊराव देवरस सेवा न्यास, सी-९१ निराला नगर, लखनऊ-२२६०२० (उ.प्र.) पर भेज सकते हैं। ☐

विचार विमर्श कार्यक्रम संपन्न

१८ जून को नई दिल्ली के पटेल चेस्ट इंस्टीट्यूट दिल्ली विश्वविद्यालय के सभागार में अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय द्वारा 'राष्ट्रीय आरक्षण नीति' पर विचार विमर्श का कार्यक्रम आयोजित किया गया, जिसमें संघ के सह-सरकार्यवाह मान. डॉ. कृष्ण गोपालजी ने अपने विचार व्यक्त किए। ☐

साहित्यिक क्षति

श्री आदित्य अवस्थी नहीं रहे

२४ मई को वरिष्ठ पत्रकार श्री आदित्य अवस्थी का निधन हो गया। वे ६२ वर्ष के थे। उनके परिवार में उनकी धर्मपत्नी, एक बेटा और एक बेटी है। १३ सितंबर, १९५४ को बिहार के भागलपुर में जनमे अवस्थी जी ने कानपुर विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में एम.ए. करने के बाद अपनी पत्रकारिता की शुरुआत राष्ट्रीय संवाद समिति 'समाचार' के माध्यम से की। उनकी लोकप्रिय पुस्तिकाओं में प्रौढ़ शिक्षा प्रचार-प्रसार के लिए 'कानून और हम', 'वोट का अधिकार', 'मास्टर प्लान' और 'दिल्ली के गरीब' आदि हैं। उन्हें १९९७ में सिनेमा पर सर्वश्रेष्ठ लेखन के लिए राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार 'स्वर्ण कमल' से सम्मानित किया गया। उनकी अन्य पुस्तकों में 'नीली दिल्ली प्यासी दिल्ली', 'दिल्ली क्रांति के १५० वर्ष', 'भारत की परमाणु यात्रा', 'कहानी दिल्ली मेट्रो की' तथा 'दास्तान-ए-दिल्ली' भी काफी लोकप्रिय हुईं। इसके अलावा उन्होंने 'लालकिले की प्राचीर से' नामक दो खंडों में प्रकाशित पुस्तक भी लिखी।

श्री जुगलकिशोर जैथलिया नहीं रहे

१ जून को निष्ठावान समाजसेवी, साहित्य सर्जक, विभिन्न संस्थाओं के प्रेरक एवं मार्गदर्शक, कर्मयोगी श्री जुगलकिशोर जैथलिया का हृदयगति रुकने से स्वर्गवास हो गया। वे ७९ वर्ष के थे। वे एक पुत्र, तीन पुत्री, पौत्र-पौत्रियों व दोहित्र-दोहित्रियों का भरा पूरा परिवार छोड़कर गए हैं।

श्री मुद्राराक्षस का निधन

१३ जून को हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यासकार, नाट्य लेखक और आलोचक मुद्राराक्षस का निधन हो गया। वे ८२ वर्ष के थे। वे पत्रिका 'ज्ञानोदय' के संपादक रहे। मुद्राराक्षस का मूल नाम सुभाष चंद्र था। उनका जन्म २१ जून, १९३३ लखनऊ में हुआ। उन्होंने उपन्यास, व्यंग्य, आलोचना, नाटक और बाल साहित्य लिखा। उन्होंने 'अनुवार्त्ता' नामक पत्रिका का भी संपादन किया। वह आकाशवाणी से भी जुड़े रहे। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं— 'आला अफसर', 'कालातीत', 'नारकीय', 'दंड विधान', 'हस्तक्षेप'। उन्हें साहित्य नाटक अकादेमी पुरस्कार भी मिला था।

साहित्य अमृत परिवार की ओर से दिवंगत आत्माओं को भावभीनी श्रद्धांजलि।